अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ सं.
1.	**खंड-1 स्त्री इतिहास : आवश्यकता और प्रारंभिक दृष्टिकोण**	
	इकाई-1 स्त्री इतिहास लेखन की जरूरत	2-11
	इकाई-2 इतिहास में महिलाओं की दृश्यता एवं अदृश्यता	12-26
	इकाई-3 19वीं सदी में महिला प्रश्नों का इतिहास	27-38
	इकाई-4 इतिहास में स्त्री – प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक काल	39-57
2.	**खंड-2 मध्यकालीन भारत और स्त्री**	
	इकाई-1 इस्लाम और स्त्री	58-64
	इकाई-2 हिंदू धर्म एवं स्त्री	65-73
	इकाई-3 भक्ति आंदोलन एवं स्त्री	74-85
	इकाई-4 विभिन्न धर्मों में स्त्री	86-96
3.	**खंड-3 आधुनिक काल और स्त्री**	
	इकाई-1 सामाजिक सुधार आंदोलन और स्त्री मुद्दे	97-103
	इकाई-2 राष्ट्रीय आंदोलन और स्त्री	104-113
	इकाई-3 स्त्री शिक्षा	114-123
	इकाई-4 विभाजन की त्रासदी और स्त्री	124-132
4.	**खंड-4 समकालीन इतिहास लेखन और स्त्री**	
	इकाई-1 स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्री	133-140
	इकाई-2 स्वायत्त महिला आंदोलन	141-152
	इकाई-3 वैश्वीकरण और स्त्री	153-161
	इकाई-4 जाति, सांप्रदायिकता और स्त्री	-

खंड -1 स्त्री इतिहास : आवश्यकता और प्रारंभिक दृष्टिकोण
ईकाइ - 1 : इतिहास लेखन में महिलाएं

ईकाइ की रूपरेखा

1.1. उद्देश्य
1.2. परिचय
1.3. इतिहास लेखन क्या है?
1.4. सैद्धांतिक आधार
1.5. इतिहास में महिलाओं का योगदान
1.6. नारीवादी इतिहास लेखन एवं प्रमुख इतिहासकार
1.7. सारांश
1.8. संदर्भ पुस्तकें

1.1. उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाइ के अंतर्गत विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयास किया जाएगा कि इतिहास लेखन क्या है तथा उसका महत्व क्या है? साथ ही,आप यह भी समझ पाएंगे कि इतिहास लेखन की परंपरा कैसी है, मुख्यधारा का इतिहास स्त्रियों के प्रति कैसा दृष्टीकोण अपनाता है एवं नारीवादी दृष्टी को अपनाकर किस प्रकार एक जेंडर संवेदनशील इतिहास लेखन किया जा सकता है। इस पाठ के अंत तक आप समझ पाएंगे कि :

इतिहास में महिलाओं की अनुपस्थिति के कारण क्या हैं?
महिला इतिहास की एक वैचारिक रूपरेखा कैसे तैयार की जा सकती है?
मानव के अतीत को जेंडर संवेदनशील तरीके से कैसे समझा जा सकता है?

1.2 प्रस्तावना

पहले कुछ भी नहीं था
बाद में विश्व का सर्जन हुआ
हरेक जीव को जीने का अधिकार प्रकृति ने दिया
बाद में कई युग बीत गए
कहते है कि वानर से बन गया मानव
मानव जंगली था
फिर सभ्य हुआ
पहले हिंसक था
फिर रचनात्मक बना
बाद में उस रचनात्मकता के शास्त्र बने
शास्त्रों को प्रचारित करने वाला पुरोहित अस्तित्व में आया
उसने मानव को दो हिस्सों में बाँट दिया
नर और नारी

नर का राज रहा
नारी ने नौकरी की
फारूक शाह

उपरोक्त पंक्तियां एक अनुशासन के रूप में इतिहास की एक अलग तस्वीर प्रस्तुत करती हैं जो मानव इतिहास में स्त्रियों को अदृश्य कर दिए जाने के प्रश्न को अत्यंत गंभीर रूप में उठाती हैं। इतिहास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रत्येक व्यक्ति, विषय,आंदोलन आदि का इतिहास होता है, यहाँ तक कि इतिहास का भी अपना इतिहास होता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि अन्य दृष्टिकोणों की तरह ऐतिहासिक दृष्टिकोण की अपनी निजी विशेषता है। वह एक विचारशैली है जो प्रारंभिक पुरातन काल से और विशेषत: 17वीं सदी से सभ्य संसार में व्याप्त हो गई थी। 19वीं सदी से प्राय: प्रत्येक विषय के अध्ययन के लिए उसके विकास का ऐतिहासिक ज्ञान आवश्यक समझा जाने लगा था। इतिहास के अध्ययन से मानव समाज के विविध क्षेत्रों का जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है उससे मनुष्य की परिस्थितियों को आँकने, व्यक्तियों के भावों और विचारों तथा जनसमूह की प्रवृत्तियों आदि को समझने के लिए और अच्छी खासी कसौटी मिल जाती है। स्त्री प्रश्न पर सबाल्टर्न इतिहासकारों का मत है कि राष्ट्र में स्त्रियों की अपनी एक स्वतंत्र सामुदायिक अस्मिता है। पार्थ चटर्जी 'राष्ट्र और उसकी महिलाएँ' में व्यक्त स्थापनाओं द्वारा घोषित करते हैं कि, राष्ट्र के इतिहास के अंतर्गत स्त्रियों का इतिहास लिखा जाना उनके साथ विश्वासघात है।

अब तक जितने भी समाजों का इतिहास हमें ज्ञात है, स्त्रियाँ उन सभी में परिवार और समाज दोनों में पुरुषों के मातहत ही रही हैं । पूरे सामाजिक ढाँचे में सर्वाधिक शोषित-उत्पीड़ित तबकों में ही उनका स्थान रहा है। जब वर्ग समाज का प्रादुर्भाव हो रहा था और निजी स्वामित्व के तत्व और मानसिकता पैदा हो रही थी उसी समय पितृसत्तात्मक व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी,और स्वाभाविक तौर पर,उसके प्रतिरोध की स्त्री-चेतना भी उत्पन्न हो चुकी थी जिसके साक्ष्य हमें अलग-अलग संस्कृतियों की पुराणकथाओं और लोकगाथाओं में आज भी देखने को मिल जाते हैं। परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि अब तक भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टी पुरुषवादी ही रही है। नतीजतन महिलाओं के शिशुपालन,कृषिकार्य जैसे क्रिया-कलाप और लोककला को महत्वहीन मानकर उनका सही मूल्यांकन नहीं किया गया। सभ्यता के शुरुआत से ही महिलाओं को इतिहास से अलग निकाल कर रखा गया है। इतिहास लेखन में उनकी उपलब्धियों को बौद्धिक रूप से पुरुषों की तुलना में कम आँका गया है। ऐसे में सवाल उठता है कि किन कारणों से उन्हे इतिहास में लगभग अदृश्य कर दिया गया है? यह एक सच्चाई है की इतिहास में महिलाओं ने बहुत लंबा सफर तय किया है लेकिन किन्हीं कारणों से उन्हें उनके इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान नहीं किया गया और ना ही नारीवादी इतिहास लेखन अबतक एक अनुशासन के रूप मे नहीं उभर पाया है। महिलाओं की स्थिति का एहसास इसी बात से हो जाता है अबतक दर्ज असंख्य इतिहासों में महिलाएं की अनुपस्थिति हैं । वो पूर्णतः पुरुषों परकेंद्रित हैं। अठारहवीं सदी के अंत एवं बीसवीं सदी की शुरुआत में अनेक महिला आंदोलन हुए। पर उन आंदोलनों का कोई ठोस इतिहास नहीं मिलता। सिर्फ छिट्पुट तरीके से उनका जिक्र भर मिलता है। यही वह क्षण है, जब स्त्री आंदोलन व देश में हुए आंदोलनों का पुर्नमूल्यांकन जरुरी है ताकि मुक्ति की सामाजिक परंपरा के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा जा सके। सिंधु घाटी सभ्यता, हडप्पा एवं मोहनजोदडो के ऐतिहासिक अध्ययन से यह पता चलता है कि वहां की सभ्यता, संस्कृति,आभूषण , पक्के मकान , मिट्टी के बर्तन इत्यादि वस्तुएं विकसित थीं परंतु वहाँ पर स्त्रियों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

सैद्धांतिक आधार

18 वीं और 19 वीं सदी में एक आधुनिक अकादमिक विषय के रूप में इतिहास लेखन को मान्यता मिलनी प्रारंभ हुई और पश्चिम के साथ-साथ पूर्वी देशों में भी विभिन्न धर्मो, संस्कृतियों और समुदायों के इतिहास पर शोध करने का काम शुरू हुआ। एक ओर राजनैतिक सामाजिक स्थितियां बदलने से इतिहास लेखन की आवश्यकता का अनुभव किया गया तो दूसरी ओर इतिहास के निर्माण और व्याख्या के विभिन्न दृष्टिकोणों के जरिए विभिन्न समुदायों की राजनैतिक, सामाजिक आकांक्षाओं को नया रूप मिलना आरंभ हुआ। सार्वजनिक जीवन में और इतिहास के दस्तावेज में स्त्रियाँ अदृश्य रही हैं, स्त्री आंदोलन का यह वास्तविक केंद्र बिंदु रहा है। कुछ राजघरानों की स्त्रियों तथा प्राचीन काल में प्रसिद्धि प्राप्त स्त्रियों एवं राजनैतिक आंदोलनों से जुड़ी कुछ गिनी-चुनी स्त्रियों को छोड़ दें तो अन्य स्त्रियों को शामिल करने का प्रयत्न इतिहास लेखन में दिखाई नहीं देता है। ज्यादातर परंपरागत इतिहासकारों ने, पुरुष सत्ता के वर्चस्व में कार्य करने वाले इतिहासकारों ने स्त्रियों के इतिहास की खोज करने की जरूरत महसूस नहीं की। समाज में पिछड़े, दलित, आदिवासी समुदाय के इतिहास को भी प्रमुखता नहीं मिली। कुछ वर्षों से इतिहास लेखन में कुछ अपवाद को छोड़कर इतिहास लेखन सत्ता और वर्चस्व के बीच बट गया। जो केंद्र में सत्तारूढ़ पक्ष है, उनका इतिहास रखा गया। इस कारण सत्ता के बाहर रहने वाली सभी स्त्रियों को इतिहास में अदृश्य कर दिया गया, अगर उनका समावेश होता तो इतिहास सर्व-समावेशी होता। आजादी के बाद देश में जो समाजिक, आर्थिक व राजनैतिक बदलाव हुए उस बदलाव में स्त्रियों की साझेदारी रही है। साझेदारी से ज्यादा उसने घर और बाहर के मोर्चे पर दोहरी लड़ाई लड़ी। पर ये लड़ाईयां इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं हुई। जो कुछ नाम दर्ज हैं वे इसलिए कि इन नामों के बिना इतिहास लिखा नहीं जा सकता था वर्जीनिया वुल्फ ने एक जगह लिखा है 'इतिहास में जो कुछ अनाम है वह औरतों के नाम है'। इतिहास में औरतों की भूमिका हमेशा से अदृश्य रही है। उसकी एक वजह है कि हम इतिहास चेतन नहीं रहे। इतिहासकारों ने प्रतीकों, लोक गाथाओं, गीतों व अन्य स्त्रोतों को कभी समेटने की कोशिश नहीं की। हम जानते हैं कि व्यवस्थित रुप से इतिहास रचने की मंजिल पर पहुंचने से पहले ऐसे सभी समुदाय पहले चरण में आत्मगत ब्योरों का इस्तेमाल करते हैं ताकि उनकी बुनियाद पर इतिहास लिखने की इमारत खड़ी की जा सके। आशा रानी वोरा ने जब महिलाएं और स्वराज किताब लिखना शुरु किया तो उन्हें तथ्य जुटाने में 12 वर्ष लगे। उन्होंने एक जगह लिखा है कि आजादी आंदोलन में स्त्रियों की भूमिका पर लिखने के लिए जब सामग्री जुटाने लगी तो गहरी निराशा हुई। "आधा आसमान हमारा, आधी धरती हमारी, आधा इतिहास हमारा" यह युक्ति आज भी प्रासंगिक लेकिन इतिहास में महिलाओं ने अनेक आंदोलन किये और लड़ाइयाँ लड़ीं लेकिन इतिहास के पन्नो में गिनी-चुनी महिलाओं को छोड़कर अन्य महिलाओं के योगदान पर प्रकाश नहीं डाला गया। देश का शायद ही कोई ऐसा कोना होगा जहां महिलाओं ने अपना योगदान,समर्पण,बलिदान न दिया हो।

पिछले कुछ सालों में इतिहासकारों ने एक स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में महिलाओं के इतिहास पर काम शुरू कर दिया है जो संक्षिप्त अवधि में एक वैचारिक रूपरेखा और वैज्ञानिक प्रणाली तैयार करने की मांग करता है। पहले स्तर पर पारंपरिक रूप से इतिहास लिखने मे महारत हासिल किए इतिहासकारों द्वारा महिलाओं की गाथा का वर्णन करते हुए महिलाओं की दृष्टिकोण से इतिहास लेखन का कार्य करवाया गया। वो कौन सी महिलाएं हैं जो इतिहास से नदारद हैं, उपलब्धियों से भरपूर महिलाएँ कौन हैं, उनकी उपलब्धि क्या है? और इसका नतीजा यह निकला की जो इतिहास सामने आया उसमे मुट्ठी भर ख्याति प्राप्त महिलाओं का ही इतिहास सामने आ पाया और उससे भी उनके उन कार्यों का पता नहीं चल पाया

जिनमें महिलाएँ ज़्यादातर खुद को व्यस्त रखती हैं और नहीं संपूर्ण समाज में महिलाओं के वे महत्वपूर्ण कार्य ही सामने आ पाए जिनमे महिलाओं का योगदान सबसे अधिक होता है। चुनिन्दा ख्यातिप्राप्त महिलाओं का इतिहास संपूर्ण महिलाओं का इतिहास नहीं हो सकता। इस दृष्टि ने इस बात पर बल दिया कि इतिहास में अलग अलग वर्ग के महिलाओं को अलग अलग तरीके से प्रस्तुत किया जाए। कारण था कि हर वर्ग की महिलाओं का अपना अलग अलग ऐतिहासिक अनुभव था। महिलाओं की चेतना के संबंध में भी एक अलग अनुभव रहा है। उनकी सारी चेतना या तो पुरुषों द्वारा तैयार की गई है या फिर महिलाओं के लिए विशेष रूप तैयार किए गए के इतिहास का नतीजा है जिसे वो सहज मान लेती हैं और उसको खुद मे अंगीकार करती हैं। जैसे जैसे महिलाओं में चेतना का विकास हुआ उन्होंने अपना ध्यान महिलाओं की जरूरतों की तरफ दिया। उन्होने उनके खुद के उत्थान के तरफ ध्यान देना शुरू किया। उन्होने खुद को वेश्यावृति से खुद को अलग किया तथा शिक्षा की तरफ रुख किया। लेकिन इससे केवल महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में ही सुधार हुआ। लेकिन उनकी एक अलग समूह के रूप मे पहचान बननी शुरू हुई।

बोधगम्य प्रश्न

कृपया 250 शब्दों में उत्तर दें:
दिये गये स्थान में ही अपने उत्तर दें.
इस ईकाइ के अंत में इन प्रश्नों के उत्तर दिये गये है ,कृपया अपने उत्तर का मिलान उनसे करें।
इतिहास लेखन पर अपनी राय व्यक्त करें।

---

2. 'इतिहास हमेशा पुरुषों की दृष्टी से लिखा गया' अपना मत स्पष्ट करें।

---

3. स्त्रियों के इतिहास से क्या तात्पर्य है?

इतिहास में महिलाओं का योगदान

अगला चरण था महिलाओं का इतिहास में योगदान। इसमें महिलाओं को उनके योगदान के लिए इतिहास में चिन्हित किया गया जिसको अब तक पितृसत्ता के द्वारा दबा कर रखा गया था या ऐसा कह सकते हैं की उनको पुरुषों के अनुसार व्याख्यायित किया गया। परंतु इस स्तर पर कई तरह के सवाल उठने लगे की सामाजिक उन्मूलन में, समाज सुधार में या किसी भी प्रगतिशील आंदोलन में, मजदूर आंदोलन में महिलाओं की क्या भूमिका रही है जो नया हो ? महिलाओं के योगदान को प्रश्न के कठघरे में रखा गया की उनका किसी भी आंदोलन में क्या योगदान रहा है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमेशा से समाज में योगदान का निर्णय प्रभाव से नापा जाता था या फिर पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की हिस्सेदारी से। ध्यान देने योग्य है कि भारत में अदृश्य महिलाओं के इतिहासलेखन की प्रक्रिया जटिल हो - गई क्योंकि19वीं शताब्दी में औरतों की दृश्यता सामने आई। यह इसलिये नहीं हुआ कि औरतों पर शोध कार्य स्वतंत्र स्तर पर हुआ बल्कि इसलिये कि उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति का मार्ग पट्ट या केंद्र बिंदू माना गया। यह राष्ट्रीय संस्कृति उपनिवेशिक शासकों द्वारा सभी भारतीयों पर आरोपित विचारधारा कि वह 'पिछड़े हुए' थे, उससे मुक्त होना चाहती थी।इस प्रकार की लेखन शैली 'लिंग' को एक विश्लेषणात्मक इकाई के रूप में देखने की प्रक्रिया में बाधा डालती थी।यही कारण था कि स्त्री पक्ष से इतिहास लिखने वालों ने सबसे पहले 19 वीं और 20 वीं शताब्दी में महिलाओं का जो खाका भारत के प्राचीन इतिहास के संदर्भ में बनाया था, उसका विरोध किया। उसकी वर्तमान समय में तथाकथित व्याप्त बुराईयों से तुलना की और इसके बाद 'लिंग' पर आधारित इतिहास को लिखने की शुरुआत की। जब भी हम इतिहास की बात करते है तो हमारे सामने राजा-महाराजाओं, बादशाहों के अपना साम्राज्य फैलाने के लिए आपसी मार-पीट के दृश्य सामने आते है। या फिर ब्रिटिशकाल के इतिहास को याद करेंगे तो हमारी पाठ्य-पुस्तकों में हमे 1857 का विद्रोह पढ़ाया जाता है, जिसमे कही थोड़ी जगह रानी लक्ष्मीबाई के लिए छोड़ दी गई होगी, उसके बाद हमे तिलक युग, महात्मा गांधी युग, भगत सिंह का समय, सुभाषचंद्र बोस के बारे में इतिहास पढ़ाया जाता है, हमे इसी तरह पढ़ाया जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आजादी इन महापुरुषों के कारण मिली। कुछ एक नारियों के बारे मे थोड़ा बहुत पढ़ाया जाता है जैसे- एनी बेसेंट, सरोजनी नायडू, भीकाजी कामा आदि। इनके बारे में उतना ही पढ़ाया जाता है जितना एक टिप्पणी के लिए आवश्यक हो। हमारे मानव समाज के इतिहास में हमेशा जन इतिहास को उपेक्षित किया गया है। इसी जन इतिहास में नारी इतिहास भी शामिल है, जिसे सामंतवादी, बुर्जुआ इतिहास कारों ने अपने लेखन में जगह नहीं दी। इतिहास के पन्नों से नारियों के इतिहास तक को अदृश्य कर दिया गया, जिन गिनी चुनी नारियों का जिक्र इतिहास में किया जाता है, वे इतनी सशक्त थी कि उन्हें इतिहास के पन्नों से हटाना मुश्किल था। इसलिए उन्हे इतिहास में थोड़ी बहुत जगह मिली पर उस तरह नहीं, जिस तरह पुरुष महापुरुषों को मिली है। जब से दुनिया में नारीवादी आंदोलन उभरे उन्होने उपेक्षित इतिहास को फिर से लिखना शुरू किया जिसे इतिहास के पुनर्लेखन के माध्यम से सामने लाने का प्रयास किया गया। अधिकतर इतिहासकारों ने आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी को नारी-शिक्षा या समाज सुधार आंदोलनों से जोड़ने के लिए सिर्फ उच्च वर्ग की संभ्रांत महिलाओं की ही भूमिका को प्रमुखता से दर्शाया है, ऐसा करते हुए उन इतिहासकारों ने बड़ी होशियारी से किसानों और मजदूर वर्ग कि उन महिलाओं के योगदान को अनदेखा कर दिया, जिन्होने बड़ी संख्या में विभिन्न आंदोलनों में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लिया। इनामे कईयों की माताएँ, बहने, पत्नियाँ और बेटियाँ शामिल थी। इन संघर्षों में कई ऐसी औरतें थी जिनके पतियों के मर जाने या जेल जाने के बाद

उन्होने अपने बूढ़े बाप-माँ, सास-ससुर और छोटे बच्चों की जिम्मेदारियाँ अपने कंधों पर उठा के आंदोलनों में अपना योगदान दिया था।

19वी सदी की शुरुआत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अनेक विद्रोह हुए जिसमें असंख्य महिलाओं ने अपनी भागीदारी दर्ज कराई थी लेकिन इतिहास के पन्नों में वे दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती है। भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में महिलाओं के योगदान को दर्ज करने की बात आती है, तब सिर्फ उच्च वर्ग और उच्च जाति की विशेषकर कांग्रेसी महिला नेताओं की बात होती है। भारतीय स्वतंत्रता में साधारण किसान, मजदूर, दलित महिलाओं का योगदान भरपूर था, पर उनको पूरी तरह नजर अंदाज किया गया। इन महिलाओं ने दमन का साहस के साथ सामना किया था और हर तरह के सामाजिक कलंकों के आरोपों का सामना किया था, पर उनके साहस और वीरता को इतिहास के पन्नों में जगह नहीं मिल पायी। वर्तमान में हम सब की ज़िम्मेदारी बनती है कि हम उन महान महिलाओं के साहस और वीरता भरे कारनामों कों सामने लाया जाय जिससे की उन्हे सम्मान मिल सके और पुरुष प्रधान इतिहासकारों कों उनके द्वारा लिखित इतिहास के इतर महिलाओं को स्थापित किया जा सके। अठारहवीं सदी के अंत एवं बीसवीं सदी की शुरुआत में अनेक महिला आंदोलन हुए। पर उन आंदोलनों का कोई इतिहास नहीं मिलता। यही वह क्षण है, जब स्त्री आंदोलन व देश में हुए आंदोलन का पुर्नमूल्यांकन जरुरी है ताकि मुक्ति की सामाजिक परंपरा में एक नया अध्याय जोड़ा जा सके।

बावजूद इन सबके इतिहास में महिलाओं को स्थान न देना किसी साजिश को दर्शाता है और यह कहना बिलकुल भी अनुचित नहीं होगा की ऐसा अनायास हुआ है बल्कि यह सब सयास है। परिवार राज्य और निजी संपत्ति के उदय के साथ ही महिलाओं का विघटन प्रारंभ होता है। वर्तमान समय में जब स्त्री की पहचान समाज के एक स्वतंत्र ध्रुव के रूप में हो चुकी है तब ऐसे में यह सवाल उठता है की इतिहास लेखन फिर से होना ही चाहिए। और उस इतिहास लेखन का दृष्टिकोण बदलना चाहिए। अब तक इतिहास लेखन सिर्फ और सिर्फ पुरुषों को केंद्र में रख कर लिखा गया है और स्त्री को उसी मे समाहित माना गया है। उनके विचार को उनकी पहचान को उनके होने के एहसास को पुरुषवादी समाज ने दबा दिया है। जो आधी आबादी है उनकी अलग से कोई पहचान का न होना अपने आप में बहुत भयावह है।

नारीवादी इतिहास लेखन एवं प्रमुख इतिहासकार

हर कालखंड में स्त्रियों का इतिहास विद्यमान है बस आवश्यकता इतिहास के पन्नों से बाहर निकाल कर लाने की है। जो छुट गया है उसे पुनः प्रकट करने की आवश्यकता है। फ्रांस की क्रांति के बाद गणराज्य की स्थापना और फिर उसके कुछ समय बाद से मताधिकार को लेकर उठे स्वर से अब तक के समय में एक लंबा सफर रहा है महिलाओं का। फिर भी इतिहास में उनकी अदृश्यता काफी चिंतनीय है। अब वक़्त आ गया है की इतिहास में जेंडर को परिभाषित किया जाए तथा इतिहास का लेखन जेंडर के आधार पर किया जाए। जिसमें समाज के हर तबके की भागीदारी हो। अधिकतर इतिहासकारो ने आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी को नारी-शिक्षा या समाज सुधार आंदोलनों से जोड़ने के लिए सिर्फ संभ्रांत वर्ग की महिलाओं का जिक्र किया या फिर वैसी महिलाओं का जिक्र किया जिनहोने पुरुषवादी समाज को चुनौती दी । सिमोन द बोउवार ने कहा है कि साहित्य, संस्कृति, इतिहास व परंपराएं पुरुषों ने बनाए हैं, और पुरुषों ने अपने बनाए इस विधान में स्त्रियों को सर्वत्र दोयम दर्जा दिया है। इसलिए अब समय आ गया है की हम इतिहास का पुनर्पाठ करें। एक ऐसा मुक्कमल इतिहास जिसमे

सबका जिक्र हो । उसे हम इतिहास के नाम से जाने और समझें। जिस प्रकार महिलाओं को एक अलग वर्ग के रूप में इतिहास मे दर्शाया जाता रहा है अब उसे समाप्त करके जेंडर के आधार पर इतिहास लेखन होना चाहिए तब जाकर इतिहास में महिलाओं की वो पहचान सामने आ पाएगी जिसके लिए उन्होंने बलिदान दिया है। अब यह आवश्यक हो गया है की हम उन्हे उनके सही अधिकार को उन्हे लौटाएँ और उनकी भूमिकाओं को तथा उनके योगदान को सही मायनों में दस्तावेजीकरण किया जाए। इसमें वक़्त लगेगा परंतु इसे करने का पीड़ा भी उन्हीं लोगों को उठानी पड़ेगी जिन्होंने पहले इसपर विचार नहीं किया। इससे न केवल महीलाओं का इतिहास सामने आएगा बल्कि हमारे अतीत की सही समझ भी विकसित होगी जो हमे नयी दृष्टि भी प्रदान करेगी। इससे समाज मे पहले से व्याप्त कई मिथक टूटेंगे कई सारी नई विचारधाराओं का भी जन्म होगा। यह न केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से बल्कि साम्राज्यवादी अध्ययन के लिए भी फलदायी साबित होगा। उदाहरण के तौर पर अब तक ऐसा देखा जाता है की समाज में जो हमारी सोच है महीलाओं के प्रति वो ऐसी रही है की अब तक उनके बारे में यही बातें की जाती रहीं हैं कि क्या पहना जाए ,कैसे रहा जाए ,क्या किया जाए। कभी यह नहीं बताया गया की इतिहास मे महीलाओं ने क्या पहना ,क्या किया कैसे किया कैसे उन्होने चुनौतियों का सामना किया कैसे औपनिवेशिक काल में उन्होंने अपना योगदान दिया और कैसे समाज के परिवर्तन में अपनी हिस्सेदारी से उस परिवर्तन को अंजाम दिया।

प्रमुख नारीवादी इतिहासकार

नारीवादी इतिहासकाराओं ने अपने काम की शुरूआत इतिहास की राष्ट्रवादी पुनर्रचना के विरोध द्वारा लिंग पर कार्य शुरू किया। उदाहरण के लिए, चक्रवर्ती और राय (1988, 322) ने ध्यान दिलाया कि राष्ट्रवादी इतिहासकार जो राष्ट्र के इतिहास की तलाश कर रहे थे, उन्होंने महिलाओं की भूमिका की छानबीन के जो मापदंड निर्धारित किए गए थे वह महिलाओं की स्थिति से संबंधित प्रश्नों के सीमित समूह में रखे गए थे। यह प्रश्न उच्च जातीय परिवारों, विधवाओं की आर्थिक दशा, महिलाओं के संपत्ति के अधिकारों, शिक्षा का अधिकार इत्यादि आयामों से प्रभावित थे| संक्षेप में महिलाओं के संदर्भ को परिवार के भीतर ही देखा जा रहा था।

नारीवादी इतिहासकार, इसके बदले परिवार से बाहर ऐसी महिलाओं पर प्रकाश डाला जो धनी जमींदारों के घरों में श्रम करती थी। उन्होंने तर्क दिया कि ऐसी अनगिनत महिलाएं थी जिनके पास संपत्ति नहीं थी और जिनका परिवार के भीतर जो स्थिति थी, उसकी व्यापक समाज में कोई प्रासंगिकता नहीं थी, उन्हें मात्र तुच्छ श्रम के स्रोत के रूप में देखा गया (चक्रवर्ती और राय, 332)। इसमें उन्होंने बताया कि महिलाओं को एक संपूर्ण इकाई के अंदर नहीं रखा जा सकता बल्कि उन्होंने महिलाओं के विभिन्न इकाइयों को सामाजिक स्तर पर स्पष्ट किया| भारत में प्रमुख नारीवादी इतिहासकारों के रूप में निम्नलिखित विदुषियों को जाना जाता है:

डॉ. उमा चक्रवर्ती

उमा चक्रवर्ती एक प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार और नारीवादी हैं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस कॉलेज में अद्यापन कार्य करती थीं। उन्होने 19वी शताब्दी और समसामयिक मुद्दे , बुद्ध एवं प्रारम्भिक भारतीय इतिहास जैसे विषयों पर मुख्य रूप से काम किया है। वे आंदोलनो में भी सक्रिय रहीं हैं। मुख्य रूप से महिला आंदोलनों एवं महिलाओं के लोकतांत्रिक अधिकारों से संबंधित आंदोलनों मे उनकी महती भूमिका रही है। उन्होने कई जांच समितियों मे भी सक्रिय सदस्य की भूमिका निभाई है।

मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय गुजरात न्याय अधिकरण में। वे महिला इतिहास लेखन की प्रमुख विद्वान हैं। उन्हे भारतीय महिला आंदोलनों की माता कहा गया है।

प्रो. कुमकुम रॉय

प्रोफेसर कुमकुम रॉय जानी मानी विदुषी हैं । उन्होने पहली मध्य सहस्राब्दी में उत्तर भारत में राजशाही का उद्भव विषय पर शोध कार्य किया है। उनका यह शोध कार्य पत्रों एवं उत्तर वैदिक शाब्दिक स्रोतों पर आधारित है जिसका विश्लेषण तात्कालिक राजनैतिक संस्थाओं का उदय एवं पारिवारिक संबंधोंके जटिल संबंध को समझने के लिए किया गया है। विद्यालयों में इतिहास पढ़ाना इनकी रुचि है। इन्होंने कई पाठ्यक्रमों का निर्माण किया है। एन सी ई आर टी के पाठ्यक्रम निर्माण में भी सदस्य के रूप में इन्होंने कार्य किया है। स्त्री अध्ययन के प्रति इनकी विशेष रुचि है।

प्रो समिता सेन

प्रो समिता सेन भारत की प्रख्यात महिलावादी बुद्धिजीवी हैं। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में अध्यापन का कार्य करती हैं। उन्होने इतिहास में स्नातक तथा परास्नातक की शिक्षा कोलकाता विश्वविद्यालय से प्राप्त करने के उपरांत एम लिट की पढ़ाई ऑक्सफोर्ड से की तथा कैंब्रिज से इतिहास में पीएच डी की उपाधि प्राप्त की। उन्होने कई सारे पुस्तकों की रचना भी की तथा कई आलेख भी लिखे। उन्होने कामगार महिलाओं के स्थिति को सुधारने के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया है।

प्रो. इंदु अग्निहोत्री

प्रो. इंदु अग्निहोत्री प्रसिद्ध इतिहासकार एवं महिलावादी हैं। इन्होंने अपनी शिक्षा जे एन यू विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से पूरी की है। जेंडर एवं इतिहास तथा भारत में महिला आंदोलन इनके प्रमुख रुचि का क्षेत्र है। कई सारे पत्र पत्रिकाओं में इनका लेख प्रकाशित हुआ है। इन्होंने स्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य किया है।

बोधगम्य प्रश्न

कृपया 250 शब्दों में उत्तर दें:
दिये गये स्थान में ही अपने उत्तर दें.
इस ईकाइ के अंत में इन प्रश्नों के उत्तर दिये गये है ,कृपया अपने उत्तर का मिलान उनसे करें।

1. इतिहास में महिलाओं की क्या भूमिका रही है ?

---

2. 'इतिहास लेखन के दौरान महिलाओं के योगदान को कैसे नजरअंदाज किया गया?

नारीवादी इतहास लेखन की क्या प्रासंगिकता है?

सारांश

स्त्री को अपनी परंपरा, अपना संघर्ष और अपनी भागीदारी का इतिहास खुद लिखना होगा। स्त्री जानती है भिन्न-भिन्न वर्गों, वर्णों और जातियों के बीच नए-नए समीकरणों के साथ उसे अपने लिए लड़ना होगा। पूंजीवादी पितृसत्ता ऊपर से चाहे जितनी उदार और सरल लगे, पर भीतर-भीतर जटिल है। दोष उसकी संरचना में ही है। अगर ऐसा नहीं होता तो आजादी के आंदोलन से लेकर अभी तक के स्त्री संघर्ष को इतिहास में कहीं तो जगह मिली होती। आजादी के इतिहास पर अनेक ग्रंथ हैं, पर स्त्रियों की सामान्य भागीदारी पर अलग से खोज करने निकलें, तो कहीं कुछ नहीं मिलता। स्त्री की पूरी परंपरा उसका इतिहास उसका संघर्ष दफन कर दिया गया है। जानी-मानी नारी चिंतक प्रभा खेतान ने एक जगह लिखा है, 'हम स्त्रियों के पास इसके सिवा चारा ही क्या है! हम अपने आप को उघाड़ कर ही यथास्थिति के खिलाफ विद्रोह कर पाती हैं। हमारा अपना अंतरग अनुभव ही हमारा पहला अस्त्र है। जो आगे जाकर अपनी प्रमाणिकता के जरिए इतिहास बनाता है।

संदर्भ पुस्तकें

1. Ed. John Mary Women's Studies in India: A Reader, New Delhi: Penguin, 2008
2. *Chakravarty umaa, Rewriting History: The Life and Times of Pandita Ramabai* (Kali for Women, 1998). ISBN 9381017948.
3. Kumkum Roy ,The Power of Gender and the Gender of Power: Explorations in Early Indian History
4. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, "उन्नीसंवी सदी"
5. नारीवादी राजनीति, जिनी लोकनीता और साधना आर्या ,हिंदी माध्यम केंद्रीय निदेशालय
6. Women's Studies in Indian Universities: Current Concerns Author(s): Veena Poonacha Source: Economic and Political Weekly, Vol. 38, No. 26 (Jun. 28 - Jul. 4, 2003), pp. 2653-2658Published by: Economic and Political Weekly
7. गुप्ता, स. क. (2007). *भारतीय नारी कल आज और कल*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान
8. त्रिपाठी, क. (2010). *औरत इतिहास रचा है तुमने.* नई दिल्ली:कल्याणी शिक्षा परिषद
9. स्त्री संघर्ष का इतिहास , राधा कुमार, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली
10. रेखा, क. (2006). *स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ.*नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
11. नारीवादी सिद्दांत एवं वयवहार, शुभ्रा प्रमार, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2015

12. नारीवादी राजनीति :संघर्ष एवं मुद्दे ,साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता , हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय 2011,
13. *Women in early indian society: Reading in Early Indian History* , kumkum roy, Manohar Publisher and Distributors ,New Delhi , 2011
14. http://adhunikbhartkaitihaas.blogspot.com/2016/05/religious-and-social-reform-movement.html
15. https://feminisminindia.com/2017/02/02/women-struggles-history-hindi/

खंड -1 स्त्री इतिहास : आवश्यकता और प्रारंभिक दृष्टिकोण
इकाई- 2 इतिहास में महिलाओं की दृश्यता एवं अदृश्यता

इकाई की रूपरेखा

1.2.1 उद्देश्य
1.2.2 प्रस्तावना
1.2.3 इतिहास में अदृश्य महिलाएं एवं आंदोलन
1.2.4 आदिवासियों का विद्रोह एवं महिलाएं
1.2.5 समाज सुधारक स्त्रियाँ एवं उनकी दृश्यता
1.2.6 सारांश
1.2.7 बोध प्रश्न
1.2.8 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

1.2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्न में सक्षम हो सकेंगे:
इतिहास में महिलाओं की अदृश्यता को समझ पाएंगे।
इतिहास में महिलाओं की अदृश्यता के कारणों को समझ पाएंगे।
इतिहास में अदृश्य महिलाओं एवं उनके आंदोलनों को जान पाएंगे।
भारतीय इतिहास महिलाओं की मौजूदगी को जान पाएंगे।

1.2.2 प्रस्तावना

इतिहास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रत्येक व्यक्ति, विषय,आंदोलन आदि का इतिहास होता है, यहाँ तक कि इतिहास का भी इतिहास होता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि अन्य दृष्टिकोणों की तरह ऐतिहासिक दृष्टिकोण की अपनी निजी विशेषता है। वह एक विचारशैली है जो प्रारंभिक पुरातन काल से और विशेषत: 17वीं सदी से सभ्य संसार में व्याप्त हो गई थी। 19वीं सदी से प्राय: प्रत्येक विषय के अध्ययन के लिए उसके विकास का ऐतिहासिक ज्ञान आवश्यक समझा जाने लगा था। इतिहास के अध्ययन से मानव समाज के विविध क्षेत्रों का जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है उससे मनुष्य की परिस्थितियों को आँकने, व्यक्तियों के भावों और विचारों तथा जनसमूह की प्रवृत्तियों आदि को समझने के लिए और अच्छी खासी कसौटी मिल जाती है।

18 वीं और 19 वीं सदी में एक आधुनिक अकादमिक विषय के रूप में इतिहास लेखन को मान्यता मिलनी प्रारंभ हुई और पश्चिम के साथ-साथ पूर्वी देशों में भी विभिन्न धर्मो, संस्कृतियों और समुदायों के इतिहास पर शोध करने का काम शुरू हुआ। एक ओर राजनैतिक सामाजिक स्थितियां बदलने से इतिहास लेखन की आवश्यकता का अनुभव किया गया तो दूसरी ओर इतिहास के निर्माण और व्याख्या के विभिन्न दृष्टिकोणों के जरिए विभिन्न समुदायों की राजनैतिक, सामाजिक आकांक्षाओं को नया रूप मिलना आरंभ हुआ।सार्वजनिक जीवन में और इतिहास के दस्तावेज में स्त्रियाँ अदृश्य रही है, स्त्री आंदोलन का यह वास्तविक केंद्र बिंदु रहा है। कुछ राजघरानों की स्त्रियों तथा प्राचीन काल में प्रसिद्धि प्राप्त स्त्रियों एवं राजनैतिक आंदोलनों से जुड़ी कुछ गिनी-चुनी स्त्रियों को छोड़ दे तो अन्य स्त्रियों को

शामिल करने का प्रयत्न इतिहास लेखन में दिखाई नहीं देता है। ज्यादातर परंपरागत इतिहासकारों ने, पुरुष सत्ता के वर्चस्व में कार्य करने वाले इतिहासकारों ने स्त्रियों के इतिहास की खोज करने की जरूरत महसूस नहीं की। समाज में पिछड़े, दलित, आदिवासी समुदाय के इतिहास को भी प्रमुखता नहीं मिली। कुछ वर्षों से इतिहास लेखन में कुछ अपवाद को छोड़कर इतिहास लेखन सत्ता और वर्चस्व के बीच बट गया। अब तक भारतीय इतिहास लेखन पुरुष दृष्टिकोण से ही लिखा गया। नतीजतन महिलाओं के शिशुपालन, कृषिकार्य जैसे क्रिया-कलाप और लोककला को महत्वहीन मानकर उनका सही मूल्यांकन नहीं किया गया। अब जरूरत है महिलाओं के दृष्टिकोण से इतिहास से लिखे जाने की। महान लेखक और राजनीतिज्ञ सिसरो ने इतिहास के बारे में कहा था कि इतिहास समय के व्यतीत होने का साक्षी होता है, वह वास्तविकता को रोशन करता है, स्मृति को ताजा बनाता है, वह हमें प्राचीन काल की खबरें दे हमारे दैनिक जीवन में मार्गदर्शक का काम करता है। यह भारतीय इतिहासकारों के लिए हैरत की बात हो सकती है कि इतिहास के बारे में सिसरो का यह वचन ईसा पूर्व का है। भारत इतिहास लेखन को लेकर कभी भी बहुत सक्रिय देश नहीं बन पाया। दुनिया के दूसरे देशों में जबकि ईसा पूर्व से ही इतिहास लेखन को एक गंभीर कार्य माना जाने लगा था, भारत में सही मायनों में इतिहास लेखन बारहवीं सदी में ही शुरू हो सका, जब कल्हण ने कश्मीर के राजाओं पर केंद्रित राजतरंगिणी लिखी। महमूद गजनवी के साथ भारत आए अल बरूनी ने मगर अपने समय को शब्दों में बयान करने की परंपरा पहले ही शुरू कर दी थी। इतिहास लेखन का सुनहरा काल मुगल काल में आया। पर इस दौर के इतिहासकार दरबारी इतिहासकार थे, जिन्होंने अपने-अपने समय के सम्राटों को महिमा मंडित किया। भारत में अंग्रेजों का शासन शुरू होने के बाद भी, जबकि यहां छापाखाने और लेखन परंपरा खासी विकसित हो चुकी थी, हमें भारतीय इतिहासकार कम ही दिखाई देते हैं, बल्कि हमें अचानक अंग्रेज इतिहासकार ज्यादा सक्रिय दिखने लगते हैं। देखा जाए तो भारत की आजादी के बाद ही यहां कुछ इतिहासकारों में भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध करने का जज्बा जागा। सुमित सरकार, रोमिला थापर, इरफान हबीब आदि ने भारतीय इतिहास के अलग-अलग हिस्सों पर गंभीर काम किया। यह गौर करने की बात है कि इन सभी इतिहासकारों का कार्य भारत की आजादी तक ही सीमित है। तो क्या पिछली आधी शताब्दी बिना घटनाओं के गुजर गई? क्या पिछले पचास साल हमें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक इतिहास लेखन की कोई सामग्री नहीं देते? फिर ऐसा क्यों है कि हमारे पास पिछली आधी आबादी का कोई सुचिंतित इतिहास नहीं है।

1.2.3 इतिहास में अदृश्य महिलाएं एवं आंदोलन

अठरहवी सदी के अंत एवं बीसवीं सदी की शुरुआत में अनेक महिला आंदोलन हुए। पर उन आंदोलनों का कोई इतिहास नहीं मिलता। यही वह क्षण है, जब स्त्री आंदोलन व देश में हुए आंदोलन का पुर्नमूल्यांकन जरुरी है ताकि मुक्ति की सामाजिक परंपरा में एक नया अध्याय जोड़ा जा सके "आधा आसमान हमारा, आधी धरती हमारी, आधा इतिहास हमारा" यह युक्ति आज भी प्रासंगिक लेकिन इतिहास में महिलाओं ने अनेक आंदोलन किये और लड़ाइयाँ लड़ी लेकिन इतिहास के पन्नो में गिनी-चुनी महिलाओं को छोड़कर अन्य महिलाओं के योगदान पर प्रकाश नहीं डाला गया। देश का शायद ही कोई ऐसा कोना होगा जहां महिलाओं ने अपना योगदान,समर्पण,बलिदान न दिया हो।

मुंबई में 1904 में प्रथम अखिल भारतीय महिला परिषद की स्थापना की गयी। इस परिषद की अध्यक्ष श्रीमति रमाबाई रानाडे थीं। यह अपनी तरह का पहला अधिवेशन था, जिसमे सभी जाति, वर्ग,

धर्म की महिलाएं एक मंच पर आयीं। उन्होंने महसूस किया कि सभी महिलाओं की स्थिति एक समान है और उन्हें मिल कर उन समस्याओं पर कार्य करना चाहिए। हालांकि सम्मेलन में संपन्न घरों की कुछ महिलाएं ही एकत्र हुई थीं, लेकिन इसका व्यापक महत्व था क्योंकि भारत में एकत्रित होकर महिलाएं पहली बार मंच पर आयी थीं। 1905 के राष्ट्रीय आंदोलन में पहली बार महिलाओं नें हिस्सा लिया। इनमें अनियादेवी देवी और नृत्यमीदेवी का नाम महत्वपूर्ण है। कांग्रेस के मंच से सरलादेवी चौधरानी ने वंदे मातरम गीत पहली बार गया, जो बाद में आंदोलनकारियों का राष्ट्रीय गीत बना। 1907 में स्टेटगार्ड में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी परिषद में भीकाजी कामा ने भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए वहां तिरंगाझंडा लहराया। उसी समय इंग्लैंड में जीवन बिता रहीं सरोजनी नायडू गांधी जी से प्रेरित होकर भारत आईं और आजादी की जंग में कूद पड़ीं। इस दौरान यह भी निर्णय लिया गया कि आजादी की जंग में महिलाएं और पुरुष मिल कर लड़ेंगे। 1907 में विरूवाली नामक लड़की अपने भाई से मिलने रावलपिंडी जा रही थी तभी वेटिंग रूम में अंग्रेज़ सार्जेंट ने उसका बलात्कार कर दिया, जिसपर कोर्ट ने कार्यवाही करते हुए अंग्रेज़ सार्जेंट को बरी कर दिया। इस घटना से विरूवाली ने आत्महत्या कर ली। वही दूसरी घटना में बंगाल की स्नेह लता का विवाह उम्र बढ़ने से ना हो पाने की वजह से स्नेहलता लोगों के कटाक्ष सुनकर अपने को जला के मार डाला। इन दोनों घटनाओं ने महिलाओं को एकजुट होने और मिलकर महिलाओं के ऊपर होने वाले शोषण के प्रति लड़ने में संवेदित किया।

महिलाओं ने 1917 में महात्मा गांधी के आगमन के बाद पर्दा प्रथा,बाल विवाह, सती प्रथा, शिक्षा जैसे सवालों के साथ-साथ असहयोग, स्वदेशी, खिलाफत और खादी के आंदोलन में महिलाओं ने जमकर हिस्सा लिया।आजादी के आंदोलन में गांधी जीने कहा था "स्वराज प्राप्त करने में जितना योगदान पुरुषों का है, उतना योगदान महिलाओं का"। उनके प्रयासों से पर्दे मे रहनेवाली औरते, अनपढ़ कही जाने वाली औरते, पढ़ी-लिखी औरते, खेतों में काम करने वाली औरते सभी आंदोलन का हिस्सा बनीं। उनके आंदोलन का हिस्सा बनते ही आंदोलनकारियों की संख्या बढ़ गयी जो पहले नहीं होता था। गांधी जी एवं अन्य नेता जानते थे कि आधी जनसंख्या को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इसलिए उन्होने महिलाओं को अहिंसक तरीके से चलाये जा रहे आंदोलनों में शामिल किया। इस आंदोलन में महिलाओं ने सूत कातने, प्रभात फेरिया निकालने, देश भक्ति गीत गाने एवं प्रचार-प्रसार करने, विदेशी कपड़ों एवं शराब का प्रतिशोध करने में महति भूमिका का निर्वहन किया,उन्होने अपने गहने एवं पैसे कांग्रेस को चंदे में दिये। इस आंदोलन के कारण महिलाओं को अपने परिवार एवं समाज का विरोध भी झेलना पड़ा। वे चरखे के कपड़े बेच कर पैसा आजादी के प्रचार-प्रसार में लगातीं, इन औरतों ने पुलिस की मार खाई, जेल गयीं। नमक सत्याग्रह में कुल 80,000 लोग गिरफ्तार हुए थे, जिसमें 17,000 महिलाएं थीं। महिलाओं के इस अतुलनीय कार्यों का परिणाम है कि आज हम आजाद है जिसे हमें नहीं भूलना चाहिए। 1912 में पटना में राममोहन राय सेमिनरी में महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। श्रीमती मधोलकर ने इसकी अध्यक्षता की। और बाल-विवाह के खिलाफ समिति बनाने का सुझाव दिया। 1928 में महिलाओं ने साइमन कमिशन का जबरदस्त विरोध किया। बिहार में लेजिस्लेटिव कौंसिल में महिलाओं को वोट देने के अधिकार व लेंगिक भेदभाव को लेकर नवम्बर,1921 को एक प्रस्ताव पेश किया गया। 1919 के एक्ट के अनुसार वे वोट नहीं दे सकती थीं। कौंसिल में इस मसले पर जमकर बहस हुई। और यह प्रस्ताव 10 वोटों से गिर गया। और कोलकाता में पेश महिलाओं के मताधिकार देने संबंधित प्रस्ताव भी भारी मतों से पराजित हो गया। पर महिलाएं हिम्मत नहीं हारीं। उनके संघर्ष जारी रहे। लंबी लड़ाई के बाद बिहार और उड़ीसा में 1929 में यह अधिकार महिलाओं को मिला।

अतीत में हुए संघर्ष को देखते हुए हम ये कह सकते हैं स्त्री के भीतर आजादी की आग है। और उसकी पहली लड़ाई है वर्चस्व विहीन समाज की स्थापना। यही वजह है कि आज स्त्रियाँ परिवार में श्रम के विभाजन,पारवरिक संबंधों में उसकी उपस्थिति और सत्ता में उसकी जगह को लेकर आंदोलित हैं। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आंदोलन में स्त्रियों की भूमिका का भले ही आंकलन नहीं हुआ हो सच तो यह है कि सभी आंदोलनों में उसकी भागीदारी रही है। देश में 70 के दशक में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बड़ा आंदोलन हुआ। जिस आंदोलन ने सत्ता की नींव हिला दी। उसमें बड़ी संख्या में स्त्रियों ने हिस्सा लिया। कॉलेजों एवं स्कूलों से निकल कर निरंकुश सत्ता के खिलाफ वे सड़कों पर थीं। स्त्री जब भी किसी आंदोलन का हिस्सा होती है, तो वह एक साथ कई वर्जनाओं को तोड़ती है।स्त्री आंदोलन को महत्वपूर्ण आयाम देने वाली सिमोन द बोवुआर कहतीं हैं ' मात्र वर्ग संघर्ष के द्वारा ही स्त्री-मुक्ति के महान लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता है। महिलाएं एक तरफ स्त्री के मसले पर लड़ रही थीं दूसरी तरफ देश में चले सभी प्रमुख आंदोलन में उसकी हिस्सेदारी रही। राजनीति में अपनी हिस्सेदारी से लेकर वह जल,जंगलऔर जमीन की लड़ाई में लगी रही और आज भी हर मोर्चे पर लड़ रही है। महिलाओं के द्वारा किए गए कार्यों, आंदोलनों एवं प्रयासों को पुरुषवादी इतिहासकार पुरुषों की तुलना में इतिहास के पन्नों में कमतर कर के आँका है जिसे उन्हें बेहतर करने की आवश्यकता है। आज औरत अपनी क्षमता और कौशल को और अधिक तराश रही है। वह इस अमानवीय परंपरा के विरुद्ध खड़ी है।

पूंजीवादी पितृसत्ता उपर से चाहे जिनती उदार और सरल लगे भीतर से बड़ी जटिल है। प्रभा खेतान कहती हैं कि ' दोष इसकी संरचना में ही है।' हमें इस संरचना से ही अलग होना होगा। इसके लिए स्त्री समूह की जरुरत है। उसे हर मोर्चे पर लड़ना होगा। दुनिया की आधी आबादी स्त्रियों की है, दुनिया में दो तिहाई काम औरतें करतीं हैं लेकिन दुनिया की सबसे गरीब कौम औरत ही है। ये औरत कौन है, जो लड़ रही है, जो जीने का हक मांग रही है, जो जानती है अपमान सहती हुई शोषणग्रस्त आधी आबादी जब विद्रोह करेगी तो उसमें सच्ची आग और तड़प होगी। वह फूटती-लरजती जहां-जहां बहेगी वही से इतिहास का नया अध्याय लिखा जायेगा। जो नारा कार्ल मार्क्स ने दुनिया के मजदूरों के लिए दिया था वह नारा उसके लिए है। वह कह रही है दुनिया की स्त्रियां एक हो तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ नहीं है।

1.2.4 आदिवासियों का विद्रोह एवं महिलाएं

अंग्रेज़ों के खिलाफ 1767 से 1772 और 1795 से 1816 तक चुआर विद्रोह हुआ था, जिसममें आदिवासियों और अंग्रेज़ो के बीच होने वाला पहला विद्रोह था। यह विद्रोह पश्चिम बंगाल के मिदनापुर, बांकुड़ा और बिहार के जिलों में फैला था। यह विद्रोह अंग्रेजोंके क्रूर शासन और आदिवासियों के जंगल, जमीन एवं प्रकृतिक संसाधन के ऊपर अधिपत्य को लेकर उपजा था। इसमें आदिवासियों ने अपने परंपरागत हथियारों से अंग्रेजों का सामना किया जिसमे उनकी औरतों ने उनका मजबूती से साथ दिया था। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने इस विद्रोह के बारे में लिखा है कि अंग्रेजी फौज ने जब इन इलाकों मे अपनी छावनियाँ बना ली थी तब, आदिवासी पुरुष गिरफ्तारी के डर से बचने के लिए जंगलों मे शरण ले रखी थी और पहाड़ियों में जा छुपे थे। उस समय वहां की औरतों ने विद्रोह की बागडोर अपने हाथो में ले रखी थी। रात के अंधेरे में वे पुलिस को चकमा देकर जंगल में छुपे अपने पुरुषों को खाना, पानी, हथियार और महत्वपूर्ण खबरें पहुंचाती थीं, जिनसे उस विद्रोह में लगे आदिवासियों को विद्रोह में सहूलियत मिली। महिलाओं को कई बार पुलिस ने पकड़ा और अनैतिक अत्याचार किया लेकिन महिलाओं ने उस

अत्याचार के बावजूद अपनी जबान नहीं खोली। आदिवासी औरतों के इस योगदान से चुआर विद्रोह को मजबूती मिली।

छोटा नागपुर का कोल विद्रोह 1820-1837 तक चला था। अंग्रेज़ो और गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के दमन, शोषण और आदिवासी महिलाओं के यौन शोषण के खिलाफ था। इस विद्रोह का मूल आदिवासी महिलाओं के यौन शोषण,दमन के खिलाफ जंग छेड़ना और उनके मान-सम्मान की रक्षा करना था। जहां आये दिन महिलाओं को अपनी इज्जत से तार-तार होना पड़ता था। इससे अजिज होकर आदिवासियों ने गैर-आदिवासियों और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया जिसमें महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ दिया। इस विद्रोह में महिलाओं की सक्रियता प्रतिशोध लेने, खाना-पानी, हथियार और सूचनाएँ पहुंचाने, अपने गाँव की सुरक्षा में थी। इस विद्रोह का कारण औरतें थी इस लिए उन्हे गिरफ्तार किया गया, जेल में डाला गया, पुलिसिया अत्याचार किया गया, लेकिन महिलाएं डटी रहीं जब तक की उन्हे मजबूर नहीं किया गया।

आदिवासी विद्रोह का चर्चित विद्रोह संथाल 1854 में उपजा था। संथाल विद्रोह जमीदारों, महाजनों और व्यापारियों के खिलफ़ा जंग का ऐलान था, जो आदिवासियों को कर्ज देने, किराया देने के नाम पर इनका शोषण कराते थे और फिर इन्हे गुलाम बना लेते थे। गुलामी की जंजीर इन्हे पीढ़ी दर पीढ़ी निभानी पड़ती थी। इसके कारण संथालों में गुस्सा उबल रहा था और उन्होने इस आतंक के खिलाफ विद्रोह छेड़ दिया। स्वयं न्याय प्राप्त करने के लिए संथाल एक जुट हुए जिसमें लगभग तीस हजार महिलाओं ने भाग लिया था, वे पुरुषों के साथ जुलूस निकालने, सूचना पहुचाने, तीर-धनुष-कुल्हाड़ी चलाने, हमला करने में, जमीदारों के घरों को लूटने और उन्हे बर्बाद करने में साथ रहीं। इस विद्रोह में महिलाओं को पुलिस कैद, अत्याचार, शोषण आदि का सामना करना पड़ा, लेकिन वे अपनी गुलामी को दूर करने के लिए आखिरी दम तक लड़ती रहीं।

महाजनी व्यवस्था, ठेकेदारों और जगीदारों के विरुद्ध उपजे बिरसा मुंडा विद्रोह जो 1895 में बिरसा नामक क्रांतिकारी के प्रयासों से सामने आया। बिरसा ने मांग उठाई कि आदिवासियों को जंगल तथा उसके पास के क्षेत्रों में आदिवासियों को मवेशी चराने एवं जंगल के संसाधनो के पारंपरिक अधिकार से वंचित न किया जाय जिस पर अंग्रेजों ने टैक्स लगा रखा था। इस आंदोलन में महिलाओं ने अपने घर छोड़े और आंदोलन मे कूद पड़ीं। बिरसा ने अंग्रेजी पुलिस का समाना करने के लिए महिलाओं के अलग समूह बनाए। इस विद्रोह में बड़ी संख्या में औरतें खुल कर सामने आई और साहस के साथ हथियार चलाने, सूचनाएँ पहुंचाने का बखूबी काम किया। जिसमें उन्हे गिरफ्तारी देनी पडी और गोली भी खानी पड़ी। कई औरतों को मौत के घाट उतार दिया गया, कई को काले पानी की सजा हुई। यह विद्रोह चार वर्षों तक चला जिसमें महिलाओं ने महती भूमिका का निर्वहन किया।

1.2.4 दलित महिलाओं की इतिहास में अदृश्यता

दलितों और महिलाओं का अपना कोई इतिहास नहीं होता। महिलाएं सिर्फ अपने स्वामी के प्रति समर्पित होती हैं। इसी तरह दलितों का इतिहास प्रताड़ना से भरा है। इनका काम सिर्फ मालिकों की सेवा तक सिमट कर रह गया है। इन्हें बराबरी का अवसर नहीं मिल पाया है। इसका मुख्य कारण राजनीति है। राजनीति में सिर्फ सत्ता की लड़ाई होती है। इसका शिकार सबसे ज्यादा दलित वर्ग ही हुआ है। सत्ता का एक ही प्रकृति है। आदिवासियों के इतिहास में यातना और संघर्ष शामिल है। आदिवासियों ने अंग्रेजों और सूदखोरों के खिलाफ संघर्ष किया। भारतीय समाज की सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी दलित स्त्री ने

समाज की वर्जनाओं निषेधाज्ञाओं को लांघते हुऐ ब्राह्मणवादी व्यवस्था केमुख्य आधार स्तम्भ; पितृसत्ता, धर्म और जातीयता को हमेशा कड़ी टक्कर दी है। चाहें वह चिन्तन का क्षेत्र हो अथवा संघर्ष का, दोनो स्तरों पर उसने अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई को प्राचीन काल से लेकर आज तक जारी रखा है।आधुनिक महिला आंदोलन की शुरूआत 18वीं शताब्दी से मानी जाती है परंतु दलित महिला आंदोलन की शुरूआत हम बौद्धकाल से ही मानते है। दलित महिला आंदलनों महज 200 साल पुराना न होकर सदियों पुराना है, जिसमें सर्वप्रथम बौद्धकाल में दलित वर्ग की, थेरी सुमंगला और पूर्णिमा दासीं के द्वारा लिखी गई कविताओं को, हम दलित नारीवाद की प्रथम सशक्त अभिव्यक्ति मानते है। सुंमगला उन्मुक्त स्वर में अपने द्वारा, अपने आप को पा लेने की घोषणा करते हुए यानि अपने अस्तित्व को पहचाने की एक लंबी कष्टदायक प्रक्रिया से गुजरते हुए,एक उन्मुक्त और स्वतंत्र स्त्री की तरह अभिव्यक्त करते हुए गा उठती है।पति की मार से त्रस्त सुंमगला मुक्ति का मार्ग ढूंढ लेती है तो दलित स्त्रियों के जीवन के दमघोटू और शोषणकारी पलों को दासी पूर्णिमा ने बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक आंदोलनों में भी इसी पूर्वाग्रहों चलते उनकी हिस्सेदारी व नेतृत्व की तो बात दूर है उनका नाम तक का वर्णन नहीं मिलता है। इसी वजह से दलित संत कवयित्रियों के साथ-साथ दलित महिला आंदलनों की नेत्रियों और कार्यकर्ताओं की भी किसी भी इतिहास में चाहे वह दलित इतिहास हो या गैरदलित दोनो में, उपस्थिति शून्य दिखाई जाती है। दलित महिला आंदलनों और लेखन की एक लंबी परंपरा रही है, अब साक्ष्यों का भी अभाव नहीं है, आज दलित महिलाएं बडी शिद्धत और प्रतिबद्धता से अपने अस्तित्व और अस्मिता के सवालों से जूझने के साथ उन्हें उठा ही नहीं रही बल्कि उन पर विमर्श भी चला रही है। दलित महिला आंदलनों के अपने आदर्श रहे हैं, सावित्रीबाई फुले से लेकर रमाबाई अंबेडकर और अन्य दलित महिला नेता। आज भी हम दलित-गैरदलित महिला आंदलनों पर चर्चा करते समय विदेशी विचारकों की तरफ मुंह उठाकर देखना बंद नहीं करते जबकि भारत में एक से एक दलित व गैर दलित महिला विचारक रही हैं। क्या हम तारा बाई शिंदे, पंडिता रमाबाई ओर सावित्रीबाई फुले को भूल गए जिन्होंने विपरीत सामाजिक और स्त्री विराधी परिस्थितियों में काम ही नहीं किया अपितु स्त्रियों के पक्ष में भी परिस्थितियां बनाने भरपूर कोशिश की। सावित्रीबाई फुले का दलित- गैरदलित महिलाओं के लिए विद्यालय खोलना, विधवा आश्रम चलाना अपने आप में क्रांतिकारी उपलब्धियां है। हम नारी आंदलनों की शुरूआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से मानते है जबकि दलित महिला आंदलनों भारत में बहुत पुराना है। दलित फेमनिस्ट मूवमेंट की शुरूआत हम बौद्धकाल से ही मानते है। आज भी भारतीय महिला आंदलनों की उच्चवर्गीय व उच्चवर्णीय अगुवा महिला नेता, दलित महिला आंदलनों के नेता व उनके 'आईडियल को संपूर्ण नारीवादी आंदोलन का आईडियल मानने को तैयार नही हैं। दलित महिला आंदलनों की खासियत है कि वह अपने मुक्ति के सवाल को सामाजिक और आर्थिक प्रश्न से जोड़कर देखता है। दलित महिला आंदलनों के लिए घरेलू हिंसा के साथ-साथ सामाजिक हिंसा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है क्योंकि दलित महिलाएं रोज-रोज गांवों-शहरों में फैक्ट्रियों- खेतों में दलित स्त्री होने के कारण अपमान शोषण और अत्याचार की शिकार होती है। दुख की बात है कि इस सामाजिक हिंसा के सवाल को महिला आंदलनों उस प्रतिबद्धता के साथ नहीं उठाता जितना कि घरेलू हिंसा को।

दांडी यात्रा में गांधी जी के हजारों संख्या में दलित महिलाओं ने भागीदारी निभाई। नमक सत्याग्रह में 80,000 लोग गिरफ्तार किए गए जिनमें 17,000 महिलाएं थी जिनमें सर्वाधिक संख्या दलित व गरीब महिलाओं की थी। देश की आजादी के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने वालो में झलकारी बाई,

उदादेवी पासी, रानी अवन्तीबाई लोधी, वीरांगना महावीरी देवी, सिनगी दई, कइली दई, फूलों, झानों, रानी गूडियालों देवमनी उर्फ बंधनी, राजस्थान की वीर बाला काली बाई आदि अनेक नाम मिल जायेगे। जिन्होने अकेले-अकेले कई-2 मोर्चों पर संघर्ष किया। पर आज भी आजादी की लड़ाई में उन्ही शिक्षित सभ्य और ऊँचे घरानों की महिलाओं के नाम ही गिनाएं जाते हैं। जो समाज, घर व अपने परिवार की अच्छी सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक हैसियत होने के कारण जुड़ी थी। दूसरी ओर हन हैसियत से वंचित दलित वंचित गरीब समुदाय की इन औरतों को याद भी नहीं किया जाता है। यह पूर्वाग्रह साहित्य से लेकर समाज में गहरे तक व्याप्त है।

डॉ अंबेडकर का समय दलित महिलाओं की अपनी व समाज की स्वतंत्रता समानता को लेकर की गई सक्रिय भागीदारी का स्वर्ण काल है। परंतु दुःख इस बात का है कि अंबेडकर कालीन 30-40 साल चले दलित आंदलनों में इस आंदलनों में लाखो-लाख शिक्षित-अशिक्षित घरेलू गरीब मजदूर किसान व दलित शोषित महिलाएं जुड़ीं। केवल वे दलित आंदलनों में ही नहीं जुड़ी अपितु उन्होंने अलग से दलित महिला संगठनों की स्थापना भी की। 25 दिसम्बर 1927 को चावदार तालाब के महाड़ सत्याग्रह में ढाई हजार दलित औरतो ने भाग लिया। 12 अक्टूबर 1929 को डॉ अंबेडकर और दलित महिला नेता तानुबाई के नेतृत्व में हजारों महिलाओं ने पूना के पार्वतीबाई के मंदिर में प्रवेश करते हुए लाठी- डंडे खाये। नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश के दौरान एक पुजारी द्वारा दलित महिलाओं को धक्का मारने पर एक दलित महिला ने पुजारी के मुंह पर सनसनाता थप्पड़ जड़ दिया था। इस आंदलन को संबोधित करते हुए राधाबाई बडाले नामक सत्याग्रही ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा- हमें मंदिरों मे जाने का, पनघट से पानी पीने का, भरने का अधिकर मिलना चाहिए यह हमारा सामाजिक हक है। शासन करने का राजनैतिक अधिकार भी हमें मिलना चाहिए। हम कठोर सजा की चिंता नहीं करतीं । हम देश भर की जेलों को भर देंगे। हम लाठी गोली खाएंगे। हमें हमारा हक चाहिए। योद्धा कभी अपनी जान की चिंता नहीं करता।

गुलामी के साथ मिल कर जी गई जिंदगी से मौत बेहतर है। हम जान दे देगें मगर अधिकर छीन कर रहेगें। दलित महिला आंदलनों अस्पृष्यता, लिंगभेद, असमानता के खिलाफ लड़ता हुआ दलित महिलाओं को स्कूल, कालेज. हॉस्टल खोलने के साथ पत्र-पत्रिकाओं में लिखने की प्रेरणा देता रहा। इस आंदलनों में कौशल्या बैसन्त्री, बेबीताई कांबले, सुलोचना डोगरे, सीताबाई गायकवाड़, तानुबाई काबले, राधाबाई बरालै और भी अनेक दलित नेत्रियां थी, जिनके नामों को अगर मैं गिनाने लगूं तो सूची- बहुत लंबी हो जायेगी। यहां यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि अंबेडकर के समय चला दलित महिला आंदलनों 56 के बाद एकदम रूका क्यों नजर आने लगा? वह वास्तव में रूका था या दलित आंदलनों की कमी थी जो वह दलित महिलाओं के आंदलनों व उनके मुद्दों को उचित जगह नहीं दे पाया। बाबा साहब के साथ आंदोलन में इतनी बडी संख्या मे जुड़ी दलित महिलाएं उनके परिनिर्वाण के बाद एकाएक घरों में क्यों लौट गईं? इसमें कोई शक नही की दलित आंदोलन भी अन्य आंदोलनों की तरह दलित स्त्री को बराबरी की हिस्सेदारी देने में नाकाम रहा ।

इस चौतरफा शोषण के खिलाफ लड़ने के साथ-साथ उसे अन्य महिला समूहों व विचारधाराओं के अलावा उसको अपने समाज-परिवार की मुक्ति के साथ खुद की मुक्ति और बराबरी की भी लड़ाई लड़नी है। इन सबके बीच वह कैसे इन सब मुद्दों पर अपना तालमेल बैठायेगी,यह भी चिंतन का विषय है। आज दलित महिलाओं से जुडे मुद्दे चाहे वह महिला रिर्जेवेशन का मुद्दा हो या कोई अन्य स्त्री मुद्दा, इनके

नाम पर उसे अन्य महिला संगठनों द्वारा उसे बार-बार कहा जाता है कि जाति के नाम पर महिला आंदलनों को दो हिस्सों में मत बांटों या फिर एक बार महिला आरक्षण बिल पास होने दो तब बात करेगे। यही बात जब वह अपने घर परिवार के जाति भाईयों से कहती है तो उसका यह कहकर मजाक उड़ा दिया जाता है कि"बड़ी-बड़ी गुलामियों को छोटी-छोटी आजादियों से मत तोलो" या व्यंग्य में "इतनी छोटी कहां है मेरी आजादी कि तुम्हें और तुम्हारे जैसों को पूरी जगह ना हो" तो मेरा मानना है दलित स्त्रियों के चिंतन और संघर्ष की अत्यंत कठिन है, पर वह लड़ रही है और लड़ती रहेगी। और अंत में निर्मला पुतुल की कविता के साथ दलित-आदिवासी महिलाओं का एक सशक्त वक्तव्य जिसके लिए वे हरदम तैयार रहेगी।

3.5 समाज सुधारक स्त्रियाँ एवं उनकी दृश्यता

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध एवं ब्रिटिश काल में विभिन्न आंदोलन औरतों के उत्थान के लिए हुए। यही वह काल है जब यूरोप में महिला आंदोलन हो रहे थे। यही काल महिला जनजागृति का काल कहा गया। उस समय महिलाओं की स्थिति गुलामों से भी बदतर थी। शिक्षा का अभाव, संपत्ति में न के बराबर हिस्सेदारी, दहेज प्रथा, सती-प्रथा, बाल विवाह (जहां बच्चों की शादिया पालने में हो जाती), बाल-विधवा जैसी अनेक परंपराएं विद्यामान थी। उस समय सावित्री बाई फुले, पंडित रमाबाई, आनंदीबाई, रखमाबाई जैसी अनेक महिलाओं ने अतुलनीय कार्य किया था।

सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले का जन्म महाराष्ट्र के नायगांव में 1831 को हुआ था। उनके परिवार में सभी खेती करते थे। 9 साल की आयु में ही उनका विवाह 1840 में 12 साल के ज्योतिराव फुले से हुआ। सावित्रीबाई और ज्योतिराव को दो संताने है। जिसमे से यशवंतराव को उन्होंने दत्तक लिया है जो एक विधवा ब्राह्मण का बेटा था। सावित्रीबाई ज्योतिराव फुले भारतीय समाजसुधारक और कवियित्री थीं। अपने पति, ज्योतिराव फुले के साथ उन्होंने भारत में महिलाओ के अधिकारों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण काम किये हैं। उन्होंने 1848 में पुणे में देश की पहली महिला स्कूल की स्थापना की। सावित्रीबाई फुले जातिभेद, रंगभेद और लिंगभेद के सख्त विरोध में थीं। सावित्रीबाई एक शिक्षण सुधारक और समाज सुधारक दोनों ही तरह का काम करती थीं। ये सभी काम वह विशेष रूप से ब्रिटिश कालीन भारत में महिलाओ के विकास के लिये करती थीं।19 वीं शताब्दी में कम उम्र में ही विवाह करना हिंदूओं की परंपरा थी। इसीलिये उस समय बहुत सी महिलाये अल्पायु में ही विधवा बन जाती थीं, और धार्मिक परंपराओ के अनुसार महिलाओं का पुनर्विवाह नहीं किया जाता था।1881 में कोल्हापुर की गज़ेटिय में ऐसा देखा गया की विधवा होने के बाद उस समय महिलाओ को अपने सर के बाल काटने पड़ते थे, और बहुत ही साधारण जीवन जीना पड़ता था।सावित्रीबाई और ज्योतिराव ऐसी महिलाओ को उनका हक दिलवाना चाहते थे। इसे देखते हुए उन्होंने नाईयों के खिलाफ आंदोलन करना शुरू किया और विधवा महिलाओ को सर के बाल कटवाने से बचाया।उस समय महिलाओ को सामाजिक सुरक्षा न होने की वजह से महिलाओ पर काफी अत्याचार किये जाते थे, जिसमे कही-कही तो घर के सदस्यों द्वारा ही महिलाओ पर शारीरिक शोषण किया जाता था। गर्भवती महिलाओं का कई बार गर्भपात किया जाता था, और बेटी पैदा होने के डर से बहुत सी महिलायें आत्महत्या करने लगती।

एक बार ज्योतिराव ने एक महिला को आत्महत्या करने से रोका, और उसे वादा करने करवाया कि बच्चे के जन्म होते ही वह उसे अपना नाम दे। सावित्रीबाई ने भी उस महिला और अपने घर रहने की आज्ञा दे दी और गर्भवती महिला की सेवा भी की। सावित्रीबाई और ज्योतिराव ने उस बच्चे को अपनाने

के बाद उसे यशवंतराव नाम दिया। यशवंतराव बड़ा होकर डॉक्टर बना। महिलाओ पर हो रहे अत्याचारों को देखते हुए सावित्रीबाई और ज्योतिराव ने महिलाओ की सुरक्षा के लिये एक सेंटर की स्थापना की, और अपने सेंटर का नाम "बालहत्या प्रतिबंधक गृह" रखा। सावित्रीबाई महिलाओं की जी जान से सेवा करती थी और चाहती थीं की सभी बच्चे उन्ही के घर में जन्म लें। घर में सावित्रीबाई किसी प्रकार का रंगभेद या जातिभेद नही करती थीं वह सभी गर्भवती महिलाओ का समान उपचार करती थीं। सावित्रीबाई फुले 19वी शताब्दी की पहली भारतीय समाजसुधारक थीं और भारत में महिलाओं के अधिकारों को विकसित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। सावित्रीबाई फुले और दत्तक पुत्र यशवंतराव ने वैश्विक स्तर 1897 में मरीजों का इलाज करने के लिये अस्पताल खोल रखा था। उनका अस्पताल पुणे के हडपसर में सासने माला में स्थित है। उनका अस्पताल खुली प्राकृतिक जगह पर स्थित है। अपने अस्पताल में सावित्रीबाई खुद हर एक मरीज का ध्यान रखती, उन्हें विविध सुविधाये प्रदान करती। इस तरह मरीजो का इलाज करते-करते वह खुद एक दिन मरीज बन गयी। और इसी के चलते 10 मार्च 1897 को उनकी मृत्यु हो गयी।

सावित्रीबाई पूरे देश की महानायिका हैं। हर बिरादरी और धर्म के लिये उन्होंने काम किया। जब सावित्रीबाई कन्याओं को पढ़ाने के लिए जाती थीं तो रास्ते में लोग उन पर गंदगी, कीचड़, गोबर तक फेका करते थे। सावित्रीबाई एक साड़ी अपने थैले में लेकर चलती थीं और स्कूल पहुँच कर गंदी कर दी गई साड़ी बदल लेती थीं। अपने पथ पर चलते रहने की प्रेरणा बहुत अच्छे से देती हैं। उनका पूरा जीवन समाज में वंचित तबके खासकर महिलाओं और दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष में बीता। उनकी एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता है जिसमें वह सबको पढ़ने लिखने की प्रेरणा देकर जाति तोड़ने की बात करती है:-

जाओ जाकर पढ़ो-लिखो, बनो आत्मनिर्भर, बनो मेहनती काम करो-ज्ञान और धन इकट्ठा करो ज्ञान के बिना सब खो जाता है, ज्ञान के बिना हम जानवर बन जाते हैं इसलिए, खाली ना बैठो, जाओ, जाकर शिक्षा लो तुम्हारे पास सीखने का सुनहरा मौका है, इसलिए सीखो और जाति के बंधन तोड़ दो।

पंडित रमाबाई

प्रख्यात विदुषी समाजसुधारक और भारतीय नारियों को उनकी पिछड़ी हुई स्थिति से ऊपर उठाने के लिए समर्पित थीं। पंडिता रमाबाई का जन्म 23 अप्रैल, 185 ई में मैसूर रियासत में हुआ था। उनके पिता 'अनंत शास्त्री' विद्वान थें शिक्षा के समर्थक थेपरंतु उस समय की पारिवारिक रुढिवादिता स्त्री शिक्षा के समर्थन में बाधा बनी रही। पिता रमा के बचपन में ही साधुसंतों की मेहमानदारी के कारण - गांव में पौराणिक कथाएँ-रमा की एक बहन और भाई के साथ गांव निर्धन हो गए और उन्हें पत्नी तथा सुनाकर पेट पालना पड़ा। रमाबाई असाधारण प्रतिभावान थी। अपने पिता से संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करके 12 वर्ष की उम्र में ही 20 हज़ार श्लोक कंठस्थ कर लिए थे। देशाटन के कारण उसने मराठी के साथ-साथ कन्नड़, हिंदी, तथा बंगला भाषाएँ भी सीख लीं। उसके संस्कृत के ज्ञान के लिए रमाबाई को सरस्वती और पंडिता की उपाधियाँ प्राप्त हुई। तभी से वे पंडिता रमाबाई के नाम से जानी गई। 1876-77 के भीषण अकाल में दुर्बल पिता और माता का शीघ्र ही देहांत हो गया। अब ये बच्चे पैदल भटकते रहे और तीन वर्ष में इन्होंने 4 हज़ार मील की यात्रा की।

22 वर्ष की उम्र में रमाबाई कोलकाता पहुंचीं। उन्होंने बाल विधवाओं और विधवाओं की दयनीय दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। उनके संस्कृत ज्ञान और भाषणों से बंगाल के समाज में हलचल मच गई। भाई की मृत्यु के बाद रमाबाई ने 'विपिन बिहारी' नामक अछूत जाति के एक वकील से विवाह

किया, परंतु एक नन्हीं बच्ची को छोड़कर डेढ़ वर्ष के बाद ही हैजे की बीमारी में वह भी चल बसा। अछूत से विवाह करने के कारण रमाबाई को कट्टरपंथियों के आक्रोश का सामना करना पड़ा और वह पूना आकर स्त्रीशिक्षा के काम में लग ग-ई। उसकी स्थापित संस्था आर्य महिला समाज की शीघ्र ही महाराष्ट्र भर में शाखाएँ खुल गईं। अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पंडिता रमाबाई 1883 ई . में इंग्लैण्ड गईं। वहां दो वर्ष तक संस्कृत की प्रोफेसर रहने के बाद वे अमेरिका पहुंचीं। उन्होंने इंग्लैंड में ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। अमेरिका में उनके प्रयत्न से रमाबाई एसोसिएशन बना जिसने भारत के विधवा आश्रम का 10 वर्ष तक खर्च चलाने का जिम्मा लिया। इसके बाद वे 1889 में भारत लौटीं और विधवाओं के लिए शारदा सदन की स्थापना की। बाद में कृपा सदन नामक एक और महिला आश्रम बनाया। पंडिता रमाबाई के इन आश्रमों में अनाथ और पीड़ित महिलाओं को ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे वे स्वयं अपनी जीविका उपार्जित कर सकें। पंडिता रमाबाई का जीवन इस बात का प्रमाण है कि यदि व्यक्ति दृढ़ निश्चय कर ले तो गरीबी, अभाव, दुर्दशा की स्थिति पर विजय प्राप्त करके वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। उनकी सफलता का रहस्य था प्रतिकूल परिस्थितियों में साहस के साथ संघर्ष करते रहना।

आनंदीबाई जोशी (1865-1888)

आनंदी बाई जोशी पहली भारतीय महिला चिकित्सक थी जिन्होने यू. एस. ए. से वेस्टर्न चिकित्सा में डिग्री प्राप्त किया था। आनंदी बाई का जीवन उतार चढ़ाव भरा था। वह एक परंपरागत महाराष्ट्रीयन परिवार से थीं। इनकी शादी नौ वर्ष की आयु में बीस वर्ष के पुरुष से कर दी गई थी। चौदह वर्ष की उम्र में इन्होने संतान को जन्म दिया लेकिन बच्चे के जन्म के दस दिनों बाद ही वह बच्चा मर गया। इसके फलस्वरूप उन्होने चिकित्सक बनने की प्रेरणा ली जिसमे उनके सपने को पूरा करने में उनके पति ने उनका योगदान दिया। जो महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी कदम था। उन्होने 1883-1886 में चिकित्सा की शिक्षा के लिए अमेरिका कूच किया और महिला मेडिकल कालेज पेंसिल्वेनीय में आवेदन किया। उन्होने अपने आवेदन पत्र में लिखा था " एक दृढ़ संकल्प जो मेरे दोस्तों और जाति व्यवस्था के विरोध के खिलाफ मुझे एक लम्बा रास्ता तय करना है और मुझे अपने उद्देश्यों को पूरा कर बाहर ले जाना है। मेरे गरीब पीड़ित देश की महिलाएं जो एक वैकल्पिक चिकित्सा सहायता को एक पुरुष डॉक्टर के हाथों नहीं प्राप्त कर पा रही हैं और पुरुष चिकित्सकों के हाथों से मर रही हैं। मानवता की आवाज मेरे साथ है और मै असफल नहीं होना चाहती। मेरी आत्मा उन लोगों की मदद करना चाहती है जो अपनी मदद नहीं कर पा रहे है।'' आनंदी बाई जोशी अमेरिका से लौटने के बाद गरीब महिलाओं कों चिकित्सा प्रदान करती रहीं। क्षय रोग के कारण उनकी मृत्यु हुई।

रक्माबाई (1864-1955)

रक्माबाई भारत की पहली प्रशिक्षित महिला डॉक्टर थीं, जिन्होने चिकित्सा के क्षेत्र मे 35 साल तक सेवा की थी। अपने चिकित्सक व्यवसाय को अपनाने में उन्हे बहुत कठिनाइयों और विरोध का सामना करना पड़ा। 11 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह 19 साल के दादाजी भीखाजी से हुआ था, पर सौतेले पिता सखाराम अर्जना जो शिक्षा और सामाजिक सुधार के अगुआ थे के सहयोग से रुखमाबाई शादी के बाद अपने घर पर रह कर अपनी शिक्षा को पूरा करने के लिए अपने माता-पिता के साथ रहने लगीं। जब अपने पति के पास जाने का समय आया तो उन्होने अपने पति के पास जाने से माना कर दिया और कहा कि शादी के समय उनकी उम्र बहुत कम थी इसलिए यह शादी अमान्य थी। तब उनकी उम्र 22 वर्ष थी। शादी की उम्र सहमति अधिनियम 1891, के अंतर्गत उनके पति ने कोर्ट में मुकदमा कर दिया,

कोर्ट का नियम उनके पक्ष में नहीं था इसलिए कोर्ट की सजा से बचने के लिए उन्होने विवाह विच्छेद कर लिया और मुआवजा राशि का भुगतान किया। रुखमाबाई के इस संघर्स का परिणाम रहा कि महिलाओं को शादी में उम्र की पसंद की स्वतंत्रता आने वाले वर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1889 में वह लंदन गईं और चिकित्सा कालेज से शिक्षा लेने के उपरांत भारत लौटीं। भारत लौट कर कई वर्षों तक चिकित्सक की सेवाए दी।

जानकी अम्मल (1897-1984)

विश्व प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी जानकी अम्मल 1950 में भारतीय वनस्पति विज्ञान सर्वे की प्रमुख थी। वह हाइब्रिड गन्ने के विकास में लगी टीम का हिस्सा थीं, जो भारतीय भूमि में विकसित एवं अधिक उत्पादन वाले गन्ने के विकास में योगदान दिया था। जानकी अम्मल मूलतः केरल की रहने वाली थीं। उन्होने वनस्पति विज्ञान में पीएचडी मिशिगन विश्वविद्यालय से किया था। अपने अनुसंधान कार्यों को पूरा करने के लिए वे लंबे समय तक इंग्लैंड में रहीं। डॉ. सुब्रमण्यम ने अपने निबंध में उनके जीवन के बारे में अनुमान लगाया कि वह एक मातृवंशीय परिवार से थीं, जहाँ उस समय केरल में महिलाओं को शिक्षा के विकास पर ज़ोर दिया जाता था और उन्हें प्रोत्साहित किया जाता था। जिसके परिणाम उन्हे अपने अनुसंधान कार्यों को पूरा करने में सहयोग मिला। उन्होने क्रोमोसोम की संख्या और पौधों के पैटर्न का अध्ययन किया जिसे उन्होने सह लेखक सी. डी. डार्लिंगटन के साथ " the Chromosome Atlas of Cultivated Plants" के नाम से प्रकाशित किया। उनके द्वारा किया गया यह कार्य वैज्ञानिकों को भविष्य में इन पौधों पर कार्य करने की अंतर्दृष्टि प्रदान की। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने उनसे निजी तौर पर भारत आने का अनुरोध किया था, तत्पश्चात उन्होने देश के वनस्पति सर्वेक्षण के प्रमुख का पद धारण किया। 1977 में उन्होने पदमश्री पुरस्कार प्राप्त किया। 1999 में उनके नाम से क्रिया वर्गीकरण गठन के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार का गठन किया गया है।

कमला शाहनी (1912-1998)

कमला पेशे से बायोकेमिस्ट थीं। 1933 में बंबई विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद वे भारतीय विज्ञान संस्थान में डॉ. सी वी रमन की लैब में काम करने के लिए आवेदन किया, लेकिन मेरिट में उच्च होने के बावजूद उनका आवेदन एक महिला होने के नाते अस्वीकार कर दिया गया। उनके अनुरोध करने पर उन्हे एक साल के प्रोबेशन पर रखने की सहमति बनी। बाद में उनके काम से प्रभावित हो कर उन्हे वहा काम करने दिया गया। उसके बाद के वर्षों में वे कहती हैं, हालांकि रमन एक महान वैज्ञानिक थे, लेकिन वे बहुत ही संकीर्ण दिमाग के थे। मै कभी नहीं भूल सकती जो व्यवहार मेरे साथ किया गया क्योकि मै एक औरत थी। फिर भी मुझे रमन ने नियमित छात्र के रूप मे स्वीकार नही किया। यह मेरे लिए महान अपमान था। महिलाओं के साथ उस समय पूर्वाग्रह इतना बुरा था। क्या नोबल पुरस्कार विजेता तरह इस के बर्ताव की है, तो उम्मीद कर सकते हैं। मैं भाग्यशाली थी कि मेरे संघर्ष के नतीजे डॉ. रमन को अपने लैब में महिला शोधकर्ताओं को स्वीकार करना पड़ा और उन्होने महिलाओं के प्रवेश शुरू कर दिये।

कैम्ब्रिज में साइटोक्रोम ओक्सिडस के मूल की खोज और उसकी प्रकृति पर काम किया, जो सेलुलर श्वसन में शामिल एक इंजाइम की गतिविधि प्रदर्शित करने में सक्षम था। भारत में उन्होने विभिन्न किस्मों की नाड़ी और पेय नीरा के पोषक मूल्यों को लेकर कार्य किया जिससे की कुपोषण का मुक़ाबला किया जा सके। वह भारत में उपभोक्ता मार्गदर्शन समाज (1982-1983) की अध्यक्ष रही और राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त किया।

अन्ना मनी(1918-2001)

अन्ना मनी प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक थी, उनके बहुत से पेपर भौतकी एवं मौसम विज्ञान उपकरण पर प्रकाशित हुए थे। एक स्नातक छात्र (1940) के रूप में उन्होने भारतीय विज्ञान संस्थान के प्रोफेसर सी वी रमन लैब में काम किया। बाद में वे भारतीय मौसम विज्ञान केंद्र पुणे में उप-निदेशक बनीं और 1976 में सेवानिवृत्त हुईं। उनका अधिकांश काम डिजाइनिंग एवं मौसम उपकरणों में सुधार पर केंद्रित था। पर्यावरण के प्रति लगाव होने से उन्होने पर्यावरण के प्रमुख क्षेत्रों सौर विकिरण, पर्यावरणीय ओज़ोन और पवन ऊर्जा को अपने कार्यों में शामिल किया। भारतीय ओज़ोन को मापने के लिए उपकरण का विकास किया, जिसके परिणाम पर्यावरणीय ओज़ोन मापना संभव हुआ और भारत उस समय के गिने-चुने देशों की श्रेणी मे शामिल हुआ। 1983 में उनके द्वारा प्रकाशित पवन ऊर्जा डाटा भारत के लिए आगे चल कर भारत में सफलता पूर्वक स्थापित किया गया। हमारे शैक्षणिक तंत्र की विफलता कही जा सकती है कि उनके द्वारा पीएचडी की थीसिस समाप्त होने के बावजूद मद्रास विश्वविद्यालय से उन्हे पीएचडी की उपाधि देने से इंकार कर दिया गया।

आशिमा चटर्जी (1917-2006)

आशिमा चटर्जी पहली महिला थी जिन्हे भारतीय विश्वविद्यालय से विज्ञान में डॉक्टर डिग्री प्राप्त किया था। रसायनशास्त्री आशिमा मूलतः पश्चिम बंगाल की रहने वाली थीं। उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र पौधो से प्राप्त रसायनों में था। उनका व्यापक काम VincaAlkaloids के लिये जाना जाता है जिसका उपयोग अब क़ैसर की दवा के रूप में किया जाता है। इसके अलावा मिरगी एवं मलेरिया रोधी पौधों के रसायन निकासी के लिए भी जाना जाता है। उनके द्वारा लगभग 400 शोध पत्र सम्मानित वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया जो आज भी प्रासंगिक है। 1914 में उनके द्वारा लेडी ब्रेबार्न कालेज में रसायन विभाग की स्थापना की गयी, जो भारत में महिलाओं के लिए एक प्रमुख शिक्षण संस्थान है। आशिमा चटर्जी 1961 में प्रसिद्ध शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली महिला प्राप्तकर्ता थी। 1975 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ की पहली महिला अध्यक्ष के रूप में उन्होने विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं के लिए एक पथ तोड़ने वाली सिद्ध हुई।

अर्चना शर्मा(1932-2008)

अर्चना शर्मा भारत की एक प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानियों में थी। उनकी विशेषज्ञता क्रोमोसोम और आनुवांशिक तकनीकों में था। उनके द्वारा दाग और पूर्व गुणसूत्रों के अध्ययन का नया तरीका विकसित किया गया, जो तकनीक आज पूरे विश्व में वनस्पति अनुसंधान में प्रयोग की जाती है। इस उपलब्धि को उनके कार्यों में सर्वश्रेष्ट माना जाता है। उनके द्वारा प्रकाशित शोध पत्र "ए न्यू कान्सैप्ट ऑफ स्पीशिएशन एंड फिक्सीटी ऑफ क्रोमोसोम नम्बर इन ओब्लिगेट वेजीटेटीवली रीप्रोडूसिंग प्लांट्स इन नेचर एक अंतर्राष्ट्रीय जर्नल विज्ञान में एक धरातलीय खोज थी। बाद में उन्होने कोशिका प्रजनन के क्षेत्र (आनुवांशिक विरासत के संबंध में सेल संरचना के अध्ययन) में अधिक योगदान दिया। 1958 में उन्होने अपने पति के साथ कोशिकाविज्ञान की "द नुक्लियस" नामक अंतर्राष्ट्रीय जर्नल की स्थापना की। 1958 में उनके द्वारा क्रोमोसोम तकनीक: सिद्धांत एवं अभ्यास पर किताब लिखी गई जो पौधों और मानव अनुवंशिकी के क्षेत्र में वरदान मनी जाती है। वह दूसरी महिला थी जिन्हे 1975 में शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्राप्त हुआ था और 1974 में जी सी बोस अवार्ड। वे भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ की अध्यक्ष

1986-1987 तक रही उसके बाद 1989 में उन्हे भारतीय बाटनी सोसाइटी का अध्यक्ष बनाया गया। 1984 में उन्हे पद्मम भूषण प्राप्त हुआ था।

राजेश्वरी चटर्जी (1922-2010)

राजेश्वरी चटर्जी कर्नाटक राज्य की प्रथम महिला इंजीनियर थीं। यह शायद उनके दादी कमलाम्मा दासप्पा का प्रयास था, जहां उस समय कर्नाटक में महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा दुर्लभ थी जो उनकी शिक्षा के लिए एक अग्रणी कदम था। भारत सरकार की एक शोधवृत्ति की मदत से वह अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय से पीएचडी के लिए अपनी यात्रा आरभ की थी। राजेश्वरी चटर्जी भारतीय विज्ञान संस्थान की पहली महिला अकादमिक सदस्य थी। उनके द्वारा 1953 में अपने पति के साथ मिलकर भारतीय विज्ञान संस्थान में माइक्रोवेव इंजीनियरिंग में अपनी तरह का पहला अनुसंधान प्रयोगशाला शुरू की थीं। वह बंगलौर के भारतीय विज्ञान संस्थान के इलेक्ट्रो-कम्यूनिकेसन इंजीनियरिंग डिपार्टमेन्ट के चेयरपर्सन के पद पर कई वर्षों तक रहीं। उनके द्वारा 100 से अधिक शोध पत्र एवं 7 किताबें प्रकाशित की गई थी। अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के बावजूद उन्हे राज्य सरकार या भारत सरकार से कोई पुरस्कार नहीं प्राप्त हो सका।

3.6 सारांश

इतिहास के माध्यम से पूर्व में किये गए कार्यो, योगदान,सहयोग, संघर्ष, आंदोलनाओं का विश्लेषण कर उसे एक सूत्र में पिरोया जाता है, ताकि भविष्य में उन कार्यों को आने वाली पीढ़ी देख सके, जान सके और जिनके द्वारा इतिहास बनाने में योगदान किया गया है उनके कार्यों एवं योगदान को सम्मान मिल सके। इसी कडी में महिलाओं ने आरंभ से ही इतिहास रचा चाहे वह आंदोलन हो, अधिकार की बात हो, आत्म-सम्मान की बात हो, देश के निर्माण की, सामाजिक कुरीतियों के अंत की हर जगह उसने कही अकेले तो कभी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर चली। भारतीय पितृसत्तातमक व्यवस्था की संकीर्ण मानसिकता और उससे उपजे पुरुष इतिहासकारों ने हमेशा से महिलाओं को छोटा कर के आँका और उनके योगदान, संघर्ष कों इतिहास के पन्नों में जगह नहीं दी। कुछ महिलाओं का इतिहास उन्हे मजबूर होकर उन्हे लिखना पड़ा और उन्हे जगह देनी पड़ी क्योकि उनको रिक्त छोड़ना उनके लिए संभव नहीं था। आज हमें उन सभी महिलाओं के संघर्ष, योगदान, कार्यों को सामने लाने की जरूरत है ताकि भविष्य की पीढ़ी उनके द्वारा किये गये विषम परिस्थिति के कार्यों एवं योगदान को जान सके और उन असंख्य अदृश्य महिलाओं का सम्मान इतिहास के पन्नों में दर्ज हो सके।

भारतीय इतिहास के स्तंभ में मौजूद महिलाएं जिनका हमे पता नहीं चलता है पर वे मौजूद थी। जिन्हे हममें जानना चाहिए। ये वो भारतीय महिलाएं है जो विज्ञान के क्षेत्र में मौजूद थी और अपने क्षेत्र के कार्यों में मुकाम हासिल किया था लेकिन इतिहास के पन्नों में ओझल सी प्रतीत होती है। इन महिलाओं के कार्यों को हमें सराहना करनी चाहिए और उनके संघर्ष को स्वीकार करना चाहिए, जिससे उन्हे एवं उनके द्वारा किए गए कार्यों को सम्मान मिल सके। इन महिलाओं के कार्यों को इतिहास में जगह ना मिलने से युवा लड़कियों को विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिल सकी जिसके फलस्वरूप युवा लड़कियों की विज्ञान के क्षेत्र में जगह बनाने में लम्बा समय लगा। आज हमें इन महिलाओं को जानने की जरूरत है कि किन विकट परिस्थितियों में उन्होने पितृसत्तात्मक प्रधान क्षेत्र में कार्य किया और अपने को पुरुष समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्थापित किया था।

3.7 **बोध प्रश्न**

1. इतिहास में स्त्रियों की दृश्यता से आप क्या समझते है नारीवादी इतिहास लेखन ने इसमें क्या भूमिका अदा की है?
2. दलित महिलाओं के इतिहास की चर्चा करें।
3. आदिवासी स्त्री के आंदोनल की चर्चा करें?
4. भारतीय इतिहास में महिलाओं के महत्व पर चर्चा करें।
5. भारतीय आंदोलन में महिलाओं के योगदान एवं भूमिका पर प्रकाश डालिए।

भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में मौजूद अदृश्य महिलाओं पर प्रकाश डालिए।

3.8 **संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ**

1. गुप्ता, स. क. (2007). भारतीय नारी कल आज और कल. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.
2. निवेदिता इतिहास के आईने में महिला आंदोल http://www.streekaal.com/2015/09/blog-post_13.html
3. रेखा, क. (2006). स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. नईदिल्ली: राजकमल प्रकाशन
4. Lerner, G. (1975). Placing Women in History: Definition and Chalanges. 3, pp. 5-14. Retrieved December 10, 2016, from http://www.jstor.org/stable/3518951
5. Oxford University Press, A. H. (1989, December). Collected Essays. 94, pp. 1520-1530. Retrieved December 10, 2016, from htt://www.jstor.org/stable/1906585
6. Sebastian, S. (2016, september 27). Historic Indian Women In STEM We Don't Know Of But Should. doi:http://feminisminindia.com/
7. Shrivastava, M. (2016, May 16). Invisible Women in History and Global Studies: Reflections from and Archival Research Project 'Globalization'. H-Natinalism. doi:https://networks.h-net.org/search/site/invisible%20women
8. Ed. John Mary Women's Studies in India: A Reader, New Delhi: Penguin, 2008
9. *Chakravarty umaa, Rewriting History: The Life and Times of Pandita Ramabai* (Kali for Women, 1998). ISBN 9381017948.
10. Kumkum Roy ,The Power of Gender and the Gender of Power: Explorations in Early Indian History
11. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, "उन्नीसंवी सदी"
12. नारीवादी राजनीति, जिनी लोकनीता और साधना आर्या ,हिंदी माध्यम केंद्रीय निदेशालय
13. Women's Studies in Indian Universities: Current Concerns Author(s): Veena Poonacha Source: Economic and Political Weekly, Vol. 38, No. 26 (Jun. 28 - Jul. 4, 2003), pp. 2653-2658Published by: Economic and Political Weekly

14. गुप्ता, स. क. (2007). *भारतीय नारी कल आज और कल*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान
15. त्रिपाठी, क. (2010). *औरत इतिहास रचा है तुमने.* नई दिल्ली:कल्याणी शिक्षा परिषद
16. स्त्री संघर्ष का इतिहास , राधा कुमार, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली
17. रेखा, क. (2006). *स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ*.नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
18. नारीवादी सिद्धांत एवं वयवहार, शुभ्रा प्रमार, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2015
19. नारीवादी राजनीति :संघर्ष एवं मुद्दे ,साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता , हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय 2011,
20. *Women in early indian society: Reading in Early Indian History* , kumkum roy, Manohar Publisher and Distributors ,New Delhi , 2011
21. http://adhunikbhartkaitihaas.blogspot.com/2016/05/religious-and-social-reform-movement.html
22. https://feminisminindia.com/2017/02/02/women-struggles-history-hindi/

खंड-1 स्त्री इतिहास : आवश्यकता और प्रारंभिक दृष्टिकोण
इकाई- 3 उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्नों का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

1.3.1 उद्देश्य
1.3.2 प्रस्तावना
1.3.3 उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्न
1.3.4 उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्नों के विभिन्न चरण
1.3.5 सारांश
1.3.6 बोध प्रश्न
1.3.7 उपयोगी एवं संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्न में सक्षम हो सकेंगे:

1. उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्न के इतिहास के प्रति जानकारी
2. महिला प्रश्नों के प्रति इतिहास की जागरूकता
3. उन्नीसवीं सदी में भारत में समाज सुधार आंदोलन
4. स्त्री सशक्तीकरण में महिला विषयक कानूनों की भूमिका

3.2 प्रस्तावना

भारत में महिलाओं से जुड़े हुए प्रश्न राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान एक राजनैतिक प्रश्न के रूप में ठीक उसी प्रकार उभरे जिस प्रकार सांप्रदायिकता और अस्पृश्यता से जुड़े हुए प्रश्नों का उद्भव हुआ। इन प्रश्नों ने स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र के स्वप्न को आकार देने का कार्य किया। इतिहासकारों और सामाजिक वैज्ञानिकों ने महिलाओं की समानता और असमानता के राजनैतिक पहलू पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया, जिसकी वजह से इस मुद्दे की न सिर्फ उपेक्षा हुई बल्कि इसके मूल्यांकन के तहत तमाम तरह की अस्पष्ट और गलत धारणाओं को बढ़ावा मिला। वर्तमान समय में महिला अध्ययन की प्राथमिक भूमिका इस उपेक्षा को दूर करने के लिए अनुभवजन्य साक्ष्यों को जुटाना और एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण के माध्यम से इस मुद्दे को उचित स्थान देना है। वर्तमान समय में सांस्कृतिक चुप्पियों को विमर्श के जरिए भरने के क्रम में स्त्री कथा के मौखिक और लिखित परंपरा का पुनर्लेखन एक प्रासंगिक तथा आवश्यक हस्तक्षेप है। स्त्रीवादी सिद्धांत में इतिहास लेखन वस्तुतः विस्मृत आख्यानों,स्वरों तथा परंपराओं की पडताल की एक विधा है ,जिसने अपने सार्थक हस्तक्षेप से कई नई व्याख्याओं को जन्म दिया है। भारतीय इतिहास में महिलाओं के योगदान के बारे में कम लिखा गया है किंतु इससे उनका महत्त्व न तो कम होता है और न ही उनके योगदान को कम करके आंका जा सकता है। आइए, इसके जरीए ही हम इतिहास की विकास यात्रा को समझें और लगभग विस्मृत कर दी गई स्त्रियों की चर्चा करें। वस्तुतः यह किसी काल विशेष को किसी विशेष सीमा या संदर्भ में न बांधकर इतिहास को उसकी समग्रता में समझने का प्रयास है। साथ ही, यह स्त्रियों के संबंध में सामाजिकसांस्कृतिक रूप में विद्यमान जेंडर विभेद को समझने तथा इतिहास लेखन की परंपरा में उन्हें एक श्रेणी मानकर अलग-थलग किए जाने की कवायद के विश्लेष्ण का भी प्रयास है।

1.3.3. उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्न

पश्चिम के स्त्री आंदोलनों और स्त्री विमर्श से तुलना करते हुए कई बार हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री संघर्ष की उपेक्षा कर जाते हैं। इतिहास लेखन पर भी इसी तरह का एक खास नजरिया व्याप्त है और उसका मूल्यांकन चंद महिलाओं के आधार पर करके एक सामान्य निष्कर्ष निकाल दिया जाता है। ऐसे में भारत के स्त्री-संघर्ष के इतिहास पर पुनर्विचार करना जरुरी है । स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है लेकिन विश्वभर की स्त्रियों का संघर्ष उनके अपने समाज सापेक्ष है। इस संदर्भ में स्त्री संघर्ष और स्त्री विमर्श दोनों को थोड़ा अलग कर देखने की जरूरत है हाँलाकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए किसी एक देश में किसी खास परिस्थिति में चलने वाला स्त्री संघर्ष एकमात्र सार्वभौमिक सत्य नहीं हो सकता है, प्रेरणास्रोत हो सकता है। हर देश का अपना अलग-अलग बुनियादी सामाजिक ढांचा है। ऐसे आंदलनों वैश्विक विचारधारा के विकास में सहायक हो सकते हैं लेकिन यह जरुरी नहीं है कि हर आंदलनों इस वैश्विक विचारधारा की सैद्धांतिकी को आधार बना कर चले। किसी एक मुद्दे को लेकर शुरू हुआ आंदलनों अपनी चेतना में कई स्तरों पर न्याय की लड़ाई को समेटे रहता है। भारत में स्त्री संघर्ष और स्त्री अधिकार के आंदलनों को इसी रूप में स्वतंत्रता आंदलनों के परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है

भारत में महिला प्रश्नों के इतिहास का आरंभ सामान्यतः उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है।। यद्यपि कुछ समकालीन शोध इस बहस को और प्राचीन करार देते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय प्रेस के प्रारंभ होने के बाद महिला प्रश्नों को सामाजिक बहस के रूप में प्रमुखता मिलने लगी। सर्वप्रथम समाज सुधारकों और राष्ट्रवादियों द्वारा इस मुद्दे पर कार्य किया गया और अंततः समकालीन समय में उन लोगों ने इसका अध्ययन करने की कोशिश की जो समाज में बढ़ती असमानता, गरीबी और बेरोजगारी जैसे मुद्दों पर काम कर रहे थे। उन्नीसवीं सदीं को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा क्योंकि इस सदीं में सारी दुनिया में उनकी अच्छाई-बुराई, प्रकृति एवं क्षमताएँ बहस के विषय थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक बंगाल और महाराष्ट्र के समाज सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू किया। इन दोनों राज्यों से ब्रितानियों का संबंध भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पहले बना। अट्ठारहवीं शताब्दी में बंगाल में आयी ईस्ट इंडिया कंपनी के जरिये लोगों ने ब्रितानियों के बारे में जाना। व्यापारिक रिश्ते बढ़ते-बढ़ते प्रभुत्व व शासन में तब्दील हो गए तथा ब्रितानियों और भारतीयों के बीच पनपे मतभेद स्पष्ट दिखाई देने लगे।

आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज सुधार आंदोलन इस मुठभेड़ की ही उपज था। अट्ठारहवीं शताब्दी में भारत परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था – उदाहरणार्थ – अट्ठारहवीं शताब्दी में जो जाति विरोधी आंदोलन विकसित हुआ, महाराष्ट्र में उसका एक लंबा इतिहास रहा है। आंशिक तौर पर सदी के आखिर में ब्राह्मणों का नियंत्रण भी पेशवा शासन के विघटन के कारण कम होने के कारण उसमें तेजी आई हालांकि ब्राह्मणों ने बाद में अंग्रेजों की छत्रछाया में स्वयं को पुनः एक प्रभावशाली वर्ग के रूप में संगठित कर लिया। इसी तरह इसी तरह जाने-माने समाज सुधारक राजा राममोहन राय भी 18वीं सदी के धार्मिक सुधारकों के सूफ़ी तर्कों से उतने ही प्रभावित थे जितने अंग्रेज़ तर्कवादियों से। सुधार आंदोलन सबसे पहले बंगाल में शुरू हुए जहां एक डांवाडोल 'भद्रलोक' कुलीन वर्ग बुर्जुआ में तब्दील हो रहा था जिससे वे अपने समुदाय के ऐसे लोगों को शामिल कर रहे थे जो जातिच्युत होने के कारण निषिद्ध व्यवसायों में लगे हुए थे।

कलकत्ता एक विचारोत्तेजक बौद्धिक केंद्र के रूप में उभरा। सुधारों के ज़्यादातर प्रारम्भिक अभियान यहीं के बुद्धिजीवियों द्वारा चलाये गए। कलकत्ता के अनेक आंदोलनकारी छात्र एच॰डेरोजियो

के शिष्य थे। वह ऐसे एंग्लो इंडियन थे जो स्वाधीनता और समानता की फ्रांसीसी क्रांति की अवधारणा से प्रभावित थे। युवा बंगाल आंदलनों के नाम से मशहूर इन समूहों ने अपना ध्यान खासतौर से जाति बंधनों की परवाह किए बगैर मांस खाने, शराब पीने और स्त्रियों को सुधारने पर केंद्रित किया।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था भी इतनी ही दयनीय थी। समाज में सबसे निम्न स्थिति स्त्रियों की थी। लड़की का जन्म अपशकुन, उसका विवाह बोझ एवं वैधव्य (widowhood) श्राप समझा जाता था। जन्म के पश्चात बालिकाओं की हत्या कर दी जाती थी। स्त्रियों का वैवाहिक जीवन अत्यंत दयनीय एवं संघर्षपूर्ण था। यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी तो उसे बलपूर्वक पति की चिता में जलने को बाध्य किया जाता था। इसे 'सती प्रथा' के नाम से जाना जाता था। राजा राममोहन राय ने इसे शास्त्र की आड़ में हत्या की संज्ञा दी। सौभाग्यवश यदि कोई स्त्री इस क्रूर प्रथा से बच जाती थी तो उसे शेष जीवन अपमान, तिरष्कार, उत्पीड़न एवं दुख में बिताने पर बाध्य होना पड़ता था।

समाज सुधारकों ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय थी तथा उन्हें पुरुषों से नीचा समझा जाता था। समाज में स्त्रियों की अपनी कोई पहचान नहीं थी तथा उनकी ऊर्जा एवं योग्यता पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं बाल विवाह जैसी बुराइयों की बलि चढ़ गये थे। हिंदू तथा मुस्लिम दोनों ही समाज में महिलायें आर्थिक तथा सामाजिक रूप से पुरुषों पर आश्रित थीं। उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की मनाही थी। हिंदू स्त्रियों को संपत्ति का कोई अधिकार नहीं था तथा विवाह में उनकी सहमति नहीं ली जाती थी। मुस्लिम स्त्रियों को हालांकि संपत्ति का अधिकार था परंतु उन्हें पुरुषों की तुलना में आधी संपत्ति ही दी जाती थी। लेकिन तलाक में पुरुष और महिलाओं में बहुत ज्यादा भेदभाव किया जाता था। बहुपत्नी प्रथा हिंदू एवं मुसलमान दोनों समुदायों में प्रचलित थी।

पत्नी एवं मातृत्व दो ही ऐसे अधिकार क्षेत्र थे, जहां महिलाओं को समाज में थोड़ी-बहुत मान्यता प्राप्त थी। सामान्यतः महिलाओं को उपभोग की वस्तु माना जाता था तथा ऐसी अवधारणा थी कि उसका जन्म पुरुषों की सेवा करने के लिये ही हुआ है। समाज में उनका अपना कोई पृथक अस्तित्व नहीं था तथा उनकी सभी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों का निर्धारण पुरुषों द्वारा किया जाता था। यद्यपि समाज के कुछ क्षेत्र ऐसे थे, जिनमें महिलाओं ने उल्लेखनीय कार्य किये थे किंतु ऐसी महिलाओं की संख्या अत्यल्प थीं। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि जब कभी भी महिलाओं की उपेक्षा की गयी है तब-तब सभ्यता अवनति की ओर उन्मुख हुई है। समाज सुधार अभियान् स्वतंत्रता संघर्ष एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक ऐसे उदाहरण, जहां महिलाओं ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। भारतीय संविधान में महिलाओं की दशा सुधारने हेतु अनेक प्रावधान किये गये हैं।

सभी समाज सुधारकों ने महिलाओं की दशा सुधारने हेतु अपना ध्यान केंद्रित किया तथा अपील की कि महिलाओं को समाज में उनका दर्जा प्रदान किया जाये। समाज सुधारकों ने घोषित किया कि ऐसा कोई भी समाज सभ्य एवं विकसित नहीं हो सकता जहां महिलाओं से भेदभाव किया जाता हो तथा उनकी स्थिति दोयम दर्जे की हो। समाज सुधारकों ने स्त्रियों के विरुद्ध आरोपित की गयी विभिन्न कुरीतियों आलोचना की तथा इन्हें दूर करने के लिये प्रशंसनीय कदम उठाये। इन्होंने सरकार से भी अपील की कि वह समाज में महिलाओं की दशा सुधारने हेतु पहल करे एवं स्त्रियों से संबंधित विभिन्न कुप्रथाओं को दूर करने हेतु कदम उठाये। उन्होंने मांग की कि महिलाओं की मध्यकालीन तथा सामंतकालीन छवि को दूर किया जाये। समाज सुधारकों के इन्हीं प्रयासों का प्रतिफल था कि सरकार ने स्त्रियों की दशा सुधारने हेतु अनेक कदम उठाये तथा अनेक कानून बनाये गये।

स्त्री शिक्षा

इस दिशा में स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्त्व पर सबसे पहली सार्वजनिक बहस राममोहन राय द्वारा 1815 में स्थापित आत्मीय सभा द्वारा बंगाल में छेड़ी गयी। 19वीं शताब्दी में समाज में यह भ्रांतिव्याप्त थी कि हिंदू शास्त्र स्त्री शिक्षा की अनुमति नहीं देते तथा शिक्षा ग्रहण करने पर देवता उसे वैधव्य का दंड देते हैं। इस दिशा में सबसे पहला प्रयास ईसाई मिशनरियों ने किया तथा 1819 में कलकत्ता तरुण स्त्री सभा की स्थापना की। 1849 में कलकत्ता एजुकेशन काउंसिल के अध्यक्ष जे.ई.डी. बेथुन ने बेथुन स्कूल की स्थापना की। बेथुन द्वारा किया गया प्रयास स्त्री शिक्षा की दिशा में की गयी पहली सशक्त पहल थी। किंतु स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ईश्वरचंद विद्यासागर की देन महान है। वे बंगाल के कम से कम 35 बालिका विद्यालयों से संबद्ध थे तथा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उनके कार्यो को सदैव याद किया जायेगा। बंबई के एलफिंस्टन इंस्टीट्यूटके भी विद्यार्थियों ने भी स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1854 के चार्ल्स वुड के डिस्पैच में भी स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। 1914 में स्त्री चिकित्सा सेवा ने स्त्रियों को नर्सिंग एवं मिडवाइफरी के क्षेत्र में प्रशिक्षण देने का सराहनीय कार्य किया। 1916 में जब प्रो. कर्वे ने भारतीय महिला विश्वविद्यालय प्रारंभ किया तो यह स्त्री शिक्षा की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। इसी वर्ष दिल्ली में लेडी हर्डिंग मेडिकल कालेज की स्थापना की गयी। 1880 मेंडफरिन हास्पिटल की स्थापना के पश्चात महिलाओं को स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय सहायता उपलब्ध करायी जाने लगी।

स्वदेशी अभियान, बंगाल विभाजन विरोधी अभियान एवं होमरूलआंदलनों कुछ ऐसे कार्यक्रम थे, जब प्रारंभिक तौर पर घरों की चहारदीवारी में कैद रहने वाली महिलाओं ने इनमें उत्साहित होकर भाग लिया। 1918 के पश्चात महिलायें उग्रविरोध प्रदर्शनों में भाग लेने लगीं तथा उन्होंने लाठी चार्ज एवं गोलियों का भी सामना किया। उन्होंने ट्रेड यूनियन आंदोलनों, किसान आंदोलनों एवं अन्य अभियानों में भी सक्रिय रूप से हिस्सेदारी निभायी। उन्होंने न केवल स्थानीय निकायों एवं विधानसभा चुनावों में वोट देना प्रारंभ कर दिया बल्कि इन चुनावों में खड़े होकर विजयें भी प्राप्त कीं। 1925 में सरोजिनी नायडू को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम भारतीय महिला अध्यक्ष बनने का गौरव प्राप्त हुआ। बाद में वे 1947-49 तक संयुक्त प्राप्त की राज्यपाल भी रहीं।1920 के पश्चात जागृति एवं आत्म-विश्वास से स्फूर्त महिलाओं ने महिला स्थापना की गयी। इसी क्रम में 1927 में अखिल भारतीय महिला कांग्रेस का गठन किया गया।

सती प्रथा

राजाराम मोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया अमेरिकी मिशनरियों ने इसे 18वीं सदी की हिंदू पशुता की संज्ञा दी जबकि अंग्रेज़ शासकों ने इसे भारत में शासन करने का कारण माना {सभ्यता मिशन} बहरहाल कुछ वर्षों तक ब्रिटिश संसद ने सती प्रथा के खिलाफ कानून बनाने से यह कहते हुए इनकार कर दिया की इसे हिंदुओं के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप माना जाएगा। अंग्रेजों की भारत में जागरण लाने की आत्मपरिभाषित भूमिका और समय की मांग के बीच तनाव के कारण उन्नीसवी सदी के आरंभिक वर्षों में अंग्रेजों को कई विषयों पर समझौतावादी रुख अपनाने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध जो नियम बनाए उसमें जबरन सती किए जाने और स्वेच्छा से सती होने में भिन्नता थी। सती के बारे में अंग्रेजों द्वारा किए गए इस भेद ने सती प्रथा के विरुद्ध अभियान चलाने वालों को झकझोर कर रख दिया। एडवर्ड थांपसन के अनुसार अनेक

आंदोलनकारियों ने अंग्रेजों के इस कदम को सती प्रथा को कानूनी जामा पहनाने की उनकी कोशिश के रूप मरीन देखा है। 1817 में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य पंडित मृत्तुंजय विधालंकार ने घोषणा की कि स्त्री की कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं है। इसके एक वर्ष बाद 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गवर्नर विलियम बैंटिक ने प्रांत में सती प्रथा पर रोक लगा दी। सारे भारत मे इस निषेध को फैलने में 11 वर्ष लगे। विलियम बैंटिक 1829 में जेबी भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने सती निर्मूलन एक्ट पास किया। सरकार ने स्त्री को बलपूर्वक जलाये जाने की हत्या के बराबर अपराध घोषित कर दिया तथा इस प्रथा को प्रोत्साहित करने वालों पर फौजदारी मुकदमा चलाने की घोषणा की। 1829 में सती प्रथा के विरुद्ध एक कानून पास करके इसके 17वें नियम के अनुसार विधवाओं का जीवित जलाना बंद कर दिया गया। सबसे पहले यह नियम बंगाल में लागू किया गया फिर 1830 में यह मद्रास एवं बंबई में भी लागू कर दिया गया।

अगर हम देखें तो पाएंगे कि बड़े पैमाने पर सती होने की घटनाएँ 19वीं सदी के आरंभिक दशकों में बंगाल में हुई जहां लगभग हर रोज एक स्त्री सती होती थी। यह हाल तब था जबकि बंगाल के तात्कालिक गवर्नर विलियम बैंटिक ने सती को सूबे में गैरकानूनी घोषित किया हुआ था। बैंटिक ने यह दिखाने के लिए कि सती होना आवश्यक नहीं और यह भी कि यह कोई मान्यता प्राप्त धार्मिक गतिविधि नहीं है शास्त्रीय धार्मिक प्रतिकों को क्रमबद्ध करने की रणनीति अपनाई। यही रणनीति राममोहन राय ने अपनी पुस्तक *'ए कान्फ्रेंस बिटवींन एन एडवोकेट फॉर एण्ड एन अपोनेंट टू दि प्रैक्टिस ऑफ बर्निंग विडोज़ अलाइव'* में भी अपनाई। यह पुस्तक श्री राय ने 1815 में तब लिखी जब उन्होंने देखा कि उनके भाई की मृत्यु के बाद उनकी भाभी को उनके भाई की चिता मीन जबरन झोक ददिया गया। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने तीन वर्ष बाद यानी 1818 में किया।

यदि सती उन्मूलन आंदोलन स्त्रियों की दशा को सुधारने के एक'कारण' के रूप में आगे बढ़ा तो स्त्रियों की शिक्षा का आंदोलन दूसरा कारण था। लड़कियों के लिए स्कूल सबसे पहले अंग्रेज़ तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा 1810 में शुरू किए गए। स्त्रियों की शिक्षा से संबन्धित पहली पुस्तक किसी भारतीय भाषा [बंगाली] में 1819 में एक भारतीय गुरुमोहन विधालंकार द्वारा लिखी गई जिसे कलकत्ता की कन्या बाल समिति ने 1820 में प्रकाशित किया। 1827 तक मिशनरियों द्वारा हुगली जिले में 12 कन्या पाठशालाएं चलाई जाने लगीं। एक वर्ष बाद *'लेडीज सोसायटी फॉर नेटिव फ़ीमेल एजुकेशन इन कैलकटा एण्ड इट्स विसिनिटी'* ने स्कूल खोले जो मिस कुक द्वारा चलाये गए। ऐसा देखा गया कि गरीब इलाको में खुले स्कूलों के बारे में जानने के लिए मुस्लिम स्त्रियाँ भी दिलचस्पी ले रहीं थी। उन्नीसवीं सदीं के मध्य तक बंगाल, खासतौर से कलकत्ता में स्त्रियों की शिक्षा का मुद्दा उदार हिंदुओं ब्राह्मणों और प्रगतिशील छात्रों के लिए आंदोलन का विषय बन गया।

विधवा पुनर्विवाह

यह ब्रह्म समाज के कार्य क्षेत्रों में एक अत्यंत प्रमुख मुद्दा तथा उसने इसे लोकपिय बनाने हेतु सराहनीय कार्य किया। लेकिन इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान ईश्वरचंद विद्यासागर (1820-91) का था। ईश्वरचंद विद्यासागर, संस्कृत कालेज कलकत्ता के आचार्य थे। उन्होंने संस्कृत और वैदिक उल्लेखों से यह सिद्ध किया कि वेद, विधवा पुर्नविवाह की अनुमति देते हैं। उन्होंने लगभग 1,000 हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना पत्र सरकार को भेजा। अंततः उनके प्रयत्नों से 1856 में हिंदू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम बना, जिसके अनुसार विधवा विवाह को वैध मान लिया गया और ऐसे विवाह से उत्पन्न हुये बच्चे वैध घोषित किये गये।

महाराष्ट्र में जगन्नाथ शंकर सेठ एवं भाऊ दाजीने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। विष्णु शास्त्री पंडितने 1850 में विधवा पुर्नविवाह एसोसिएशन की स्थापना की। 1852 में गुजरात में सत्य प्रकाश की स्थापना करके करसोनदास मूलजी ने भी विधवा पुर्नविवाह की दिशा में सराहनीय प्रयत्न किये।

इसी प्रकार के प्रयास बंबई में फर्ग्युसन कालेज के प्रोफेसर दी.के. कर्वे एवं मद्रास में वीरेशलिंगम पंतुलुने भी किये। प्रो. कर्वे ने विधुर होने पर 1893 में स्वयं एक विधवा से विवाह किया। वे 'विधवा पुर्नविवाह संघ' के सचिव थे। 1899 में उन्होंने पूना में एक विधवा आश्रम स्थापित किया। जिसमें विधवाओं को जीविकोपार्जन के साधन प्रदान किये जाते थे। 1906 में उन्होंने बंबई में भारतीय महिला विश्वविद्यालयकी स्थापना की। भारत में पहला कानूनी विधवा पुर्नविवाह 7 दिसम्बर 1856 को कलकत्ता में संपन्न हुआ। इसके साथ ही बी.एम. मालाबारी, नर्मदा, जस्टिस गोविंद महादेव रानाडे, एवं के. नटराजन ने भी विधवा पुनर्विवाह की दिशा में सराहनीय प्रयास किये।

उन्नीसवी सदी की शुरुआत में जहां मिशनरी स्कूलों में अधिकांश लड़कियां गरीब परिवारों की थी वहीं इन नए खुले स्कूलों में ऊंची जातियों की लड़कियां पढ़ने गई। बंगाल में उस समय जनाना [अंतःपुर] या अंदरमहल के नाम से जाने वाले स्थानों पर भी स्त्रियों की प्रौढ़ शिक्षा के लिए इन आंदोलनकारियों ने धावा बोला। 'गृह शिक्षा' आंदोलन के नाम से मशहूर इस आंदोलन की शुरुवात अंग्रेज़ स्कॉटलैंड तथा उत्तरी अमेरिकी मिशनरियों द्वारा की गई जिसमें कुछ वर्षों बाद सवर्ण भी शामिल हो गए। कुछ समय पश्चात सवर्णों ने पाठ्यक्रम को बंगाली आवश्यकताओं के अनुसार तैयार कर लिया।

उन्नीसवीं सदीं के मध्य में बंबई प्रेसीडेसी में सुधार आंदोलन उभरे जिसकी शुरुआत 'दक़ियानूसी पुजारियों' और 'जातिवादी संस्थानों' पर हमलों से हुई। बंगाल में शुरुवाती हमले रूढ़िवादी हिंदू रीति-रिवाजों पर शास्त्रार्थ के रूप में हुए तथा इसके पश्चात सुधार आधारित संगठनों तथा स्कूलों एवं गृहों जैसे संस्थानों की स्थापना की गई। 1850 के दशक में समाज सुधार आंदोलनों के खिलाफ रूढ़िवादी हिंदुओं की प्रतिक्रिया में उल्लेखनीय तेजी आयी। यह तेजी आंशिक तौर पर इन अभियानों की बढ़ती ताकत के स्वाभाविक विरोध के सिद्धांत पर और आंशिक रूप से यह प्रतिक्रिया अंग्रेजों द्वारा दी जा रही इन आंदोलनकारियों को समर्थन के कारण आयी क्योंकि रूढ़िवादियों का मानना था कि यूरोपीय लोग हिंदुओं को अपमानित करने के लिए आंदोलनकारियों को ईधन के रूप में इस्तेमाल कर रहे है। अन्य समाज सुधारकों की भांति ईश्वरचंद्र विधासागर ने 1850 में विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया और उन्होंने बांग्ला में एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें कहा गया कि विधवा पुनर्विवाह शास्त्र सम्मत है। विद्यासागर ने अपनी पुस्तिका का अंग्रेजी में अनुवाद किया और उसकी प्रतियाँ अंग्रेज़ अधिकारियों को दी। उनकी सलाह पर विद्यासागर ने 1855 में भारत के गवर्नर जनरल को विधवा पुनर्विवाह के लिए कानून बनाने के लिए एक याचिका दी। याचिका में दलील दी गयी कि ऐसे अनेक हिंदू थे जिन्होंने विधवा पुनर्विवाह पर अमल किया किंतु अब वे ऐसा इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रितानी सरकार के अधीन अदालतों ने इसे गैरकानूनी घोषित कर दिया है। इसके अलावा विधवा पुनर्विवाह पर लगाया गया प्रतिबंध नैतिक संकट उत्पन्न करता है।

ग्रांट ने बिक के समर्थन में विधवा पुनर्विवाह के निश्चित जैविक कारण बताते हुए तर्क दिए। इसके पश्चात उन्होंने अनुभूत साक्ष्यों के आधार पर इसके नैतिक कारण बताए। उनका मानना था कि विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध अपरिहार्य रूप से विधवाओं को नैतिक पतन एवं पापाचार की ओर उन्मुख करता है। यह अनिवार्य रूप से खतरनाक पैमाने पर अवैध संतानोत्पत्ति एवं गर्भपात का कारण बनता है इन

औरतों ने अपरिहार्य रूप से अपने आप को भ्रष्ट एवं दुश्चरित्र गतिविधियों में लिप्त कर लिया है। इन स्त्रियों पर लागू किया जाने वाले कठोर एवं अप्राकृतिक कानूनों से उन्हें भ्रष्ट एवं पतित होने से नहीं बचाया जा सकता। इसके साथ ही ऐसे कानूनों के कारण उन स्त्रियों की भी बदनामी होती है जिनके साथ ये विधवाएँ संबन्धित होती है।

यद्यपि 1856 में कानून पारित कर दिया गया किंतु इसके परिणामस्वरूप बहुत कम पुनर्विवाह हुए। समाज सुधारकों ने खुद भी इसे एक मुर्दा पत्र की संज्ञा दी। जहां उन्नीसवीं सदी के पूर्वाध में समाज के पतन के लिए स्त्रियों को जिम्मेदार ठहराया गया वही उन्नीसवी सदीं के उत्तरार्ध में सामाजिक पतन के लिए बच्चों की ओर इशारा किया गया। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में यह विचार तेजी से उभरा कि औद्यौगिकीकरण के परिणामस्वरूप बाल श्रमिकों की दशा इतनी दयनीय हो गयी है की बाल मजदूरों की जीवन स्थिति में सुधार लाने के लिए यूरोप सरीखे सुधार आंदोलनों की आवश्यकता है। 1880 में भारत में इन विचारों के विकास पर दो आंदोलन रोशनी डाल सकते है। जो दो महत्वपूर्ण आंदोलन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में उभरे उनमें से एक था औधोगिक श्रमिकों की दशा में सुधार के लिए फैक्ट्री कानून बनाए जाने की मांग का आंदोलन एवं दूसरा था बाल विवाह विरोधी आंदोलन।

1875 में बंबई सरकार ने कानून की आवश्यकता की जांच करने के लिए एक श्रम आयोग गठित किया। हालांकि आयोग के अधिकांश सदस्यों का मत था कि कारख़ाना कानून की कोई आवश्यकता नहीं है, परंतु संसद तथा अखबारो में उनको [सदस्यों] अपनी राय बदलने के लिए राजी करने की बहस जारी थी। पहला भारतीय फैक्ट्री कानून 1881 में पारित किया गया जिसमें वयस्क तथा बाल श्रमिकों में भेद करते हुए व्याख्या कि गई कि 12 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति बाल कहलाएगा। भारत सरकार ने 1890 तथा 1891 में अन्य फैक्ट्री कमीशन का गठन किया जिसके परिणामस्वरूप इंडियन फैक्ट्रीज [अमेंडमेंट] एक्ट बना । नए कानून के अनुसार 'बाल' का अर्थ है वह व्यक्ति जिसकी आयु 14 वर्ष से कम हो उनकी नौकरी की न्यूनतम आयु सात वर्ष से बढ़ाकर नौ वर्ष कर दी गई।

राष्ट्रवादी आंदोलन वाला स्त्री आंदोलन: बन गयी स्त्री की राष्ट्रमाता छवि

भारतीय स्वतंत्रता आंदलनों का मूल ढांचा पितृसत्तात्मक राष्ट्रवाद का है लेकिन भारत में स्त्री आंदलनों भी इसी ढांचे के साथ विकसित होता हुआ दिखाई देता है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के दौरान विकसित होते हुए स्त्री आंदलनों को भारत के तत्कालीन राष्ट्रवादी आंदलनों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है, लेकिन कई स्तरों पर उनके अपने संघर्ष भी रहे हैं। इस संघर्ष की शुरुआत वहीं से स्पष्ट होने लगती है जब राष्ट्रवादी आंदलनों के अगुआ स्त्री की तत्कालीन दशा में सुधार तो लाना चाहते हैं लेकिन उसे परंपरागत परिवार के दायरे में सीमित रखकर और सामाजिक स्तर पर स्त्री की राष्ट्रमाता की छवि निर्मित करके। जहाँ न तो स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व है और न ही उसकी अस्मिता।

1.3.4. उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्नों के विभिन्न चरण

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर अब तक इस पूरी बहस को हम पाँच चरणों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम चरण में महिला प्रश्नों का उद्भव, नए शिक्षित मध्यम वर्ग के बीच एक प्रकार के पहचान की संकट के तौर पर हुआ। ये वो मध्यम वर्ग था जो कि औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था का पहला उत्पाद था। यह वर्ग औपनिवेशिक शासकों की जीवन शैली का अनुकरण कर रहा था परंतु इस लक्ष्य प्राप्ति में वे अपनी स्त्रियों की स्थिति को एक बाधा के रूप में देख रहे थे। इसी दौरान पश्चिम के

आलोचकों द्वारा हमारे तमाम रीति-रिवाजों की आलोचना भी हुई और शिक्षित मध्यम वर्ग भी इन कुरीतियों को जैसे विधवाओं के साथ किया जाने वाला व्यवहार, बाल-विवाह, महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखना, सती-प्रथा, आदि को समाज में एक धब्बे के रूप में मान रहा था। इन आलोचनाओं की वजह से इन मुद्दों को काफी गंभीरता से लिया गया। समाज सुधारकों की प्रथम पीढ़ी ने इन कुप्रथाओं को मिटाने के आम जन के बीच लगातार प्रयत्न जारी रखा। हालाँकि इनमें से कुछ सुधारक ही ऐसे थे जो पाश्चात्य संस्कृति की नकल से परे जाकर महिलाओं की अधीनता, गुलामी को अलग नजरिए से व्याख्यायित कर रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी की अंतिम दशकों में महिलाओ से जुड़े प्रश्न सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और पुनरुत्थानवादी रंग में रँगे नजर आए, जो पश्चिम के प्रभाव और उनके मूल्यों का जवाब देने के लिए तैयार किए गए थे। इस दृष्टिकोण को विशेष तौर पर शिक्षित युवाओं के बीच में देखा गया। सुधारवादी स्वदेशी परंपराओं को बचाने के लिए महिला शिक्षा को समर्थन दे रहे थे। वे रूढ़िवादियों की खिलाफत कर रहे थे उनका मानना था कि महिला शिक्षा के माध्यम से हम हम स्वदेशी संस्कृति को बढ़ावा दे सकते हैं जिसमें परिवार जैसी संस्थाएँ उपयोगी साबित होंगी और महिलाओं की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण होगी। उनका मानना था कि महिलाओं की शिक्षा परिवार में संवादहीनता को समाप्त करने का काम करेगी। शिक्षा के माध्यम से परिवार में महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा और वे युवाओं के मन से पाश्चत्य प्रभाव को हटाने का काम करेंगी। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों द्वारा एक नए प्रकार की अवधारणा की शुरुआत की गई, और महिलाओं के प्रश्नों को सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक की अवधारणा से जोड़ दिया गया। दूसरे चरण में ही, 1890 के दौरान ज्योतिबा फुले ने अपने लेखन के माध्यम से ये बताया कैसे उच्च वर्ग के वर्चस्व और भारतीय समाज में ब्राह्मण प्रभुत्व को स्थापित रखने में महिला की अधीनता को साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसी समय बी.एम. मालाबारी ने सामाजिक अभियान में प्रेस की वृहद् भूमिका को रेखांकित करने का काम किया। सर्वप्रथम टाइम्स ऑफ इंडिया के पाठकों ने उन महिलाओं की सच्ची घटनाओं और उनकी आपबीती को पढ़ा जो अपने पतियों के हाथों यातना का शिकार हुई।

तीसरे चरण में, महिला प्रश्न राष्ट्रीय आंदोलन से गुँथे हुए रूप में हमारे सामने आए। स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल मुट्ठी भर महिलाओं ने पुरुष नेताओं को चुनौती देते हुए उन्हें भी क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल होने की अनुमति माँगी। इस आंदोलन में बड़े पैमाने पर महिलाओं की लामबंदी और भागीदारी देखी गई एवं महिलाओं से जुड़े बुनियादी प्रश्नों को भी को उठाया गया। यद्यपि यह अचंभित करता है कि कैसे महिलाओं की समानता का अधिकार जैसा मुद्दा एक राजनितिक मुद्दे में परिवर्तित हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों द्वारा अपना ध्यान मुख्य रूप से शहरी माध्यम वर्ग की महिलाओं की समस्या तक केंद्रित रखा गया। भारतीय साहित्यकारों और पश्चिमी साहित्यकारों द्वारा भारतीय महिलाएँ चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम, की दबी-कुचली छवि को प्रस्तुत किया गया, लेकिन उन लाखों महिलाओं के बारे कोई चिंता नहीं व्यक्त की गई जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी की तरह थीं और उन पर औपनिवेशिक व्यवस्था का अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ा और यह प्रभाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर ज्यादा पड़ा। सिर्फ बंगाल में ही सूत कातने के व्यवसाय में लगी 30 लाख महिलाएँ बुरी तरीके से प्रभावित हुईं ये पूरी जनसंख्या की 1/5 भाग थीं। उन्नीसवीं शताब्दी तक इनकी संख्या में और बढ़ोत्तरी हुई। यही स्थिति भारत में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत उन महिलाओं की भी थी जो सिल्क व्यवसाय एवं कुटीर उद्योगों में कार्यरत थीं। 1920 के आरंभ में सूरत में एक स्थानीय संगठन ने

ग्रामद्योगों महिलाओं की गिरती आर्थिक और सामान्य स्थिति का पता लगाने का प्रयास किया। जूट उद्योग में कार्यरत 50% महिलाएँ अपने उद्योगों को छोड़कर गाँवों से आजीविका की तलाश में शहर की तरफ पलायन कर गईं। यही स्थिति उन आदिवासी महिलाओं की भी देखी गई जो चाय बागानों एवं कोयला खाद्यानों में श्रमिक के रूप में काम कर रही थीं, उनको भी पलायन का शिकार होना पड़ा।

चौथा चरण आजादी के बाद की स्थिति को दर्शाता है, संविधान निर्माण के बाद काफी सारी समस्याओं का समाधान हो गया जैसे महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिला जिससे की राजनैतिक समानता की प्राप्ति हुई, सार्वजनिक सेवाओं में प्रवेश मिला, व्यवसायों आदि में भी महिलाओं को अधिकार मिला। इस दृष्टिकोण से यह समय मध्यम वर्ग की महिलाओं के लिए अत्यंत सफल रहा जिसमें महिलाएँ बड़ी संख्या में लाभान्वित हुई। इस दौरान महिला संगठनों ने भी महिलाओं की समानता और अधिकार के लिए युद्ध स्तर पर जुझारू तरीके से कार्य किया और सरकार ने भी सामाजिक कल्याण के लिए अनुदान आदि दिए। लेकिन, लगभग 20 वर्षों तक के लिए महिलाओं के प्रश्न सार्वजनिक क्षेत्र से गायब ही हो गए और महिलाओं से जुड़े हुए लेखन और अनुसंधान दोनों में गिरावट दर्ज की गई।

पाँचवा चरण वास्तव समाज में बढ़ रही असमानता, गरीबी और जनता के अधिकारों को लेकर एक प्रकार की असुरक्षा का दौर था। 1971-74 में गठित 'भारत में महिलाओं की स्थिति' का पता लगाने वाली समिति ने अपने रिपोर्ट में यह निष्कर्ष दिया कि अर्थव्यवस्था में महिलाओं की स्थिति हाशिए पर हैं। आँकड़ों के अनुसार, महिलाओं की यह स्थिति आजादी से पहले भी थी, इन परेशान करने वाला तथ्यों को कुछ अधिकारी एवं समाज वैज्ञानिकों के द्वारा भी पहचाना गया लेकिन वे इस मुद्दे की तरफ सबका ध्यान आकर्षित करने में असफल रहे। 70 के दशक में, भारत में नियोजित विकास कार्यक्रम की वजह से भारत परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। तमाम समाज वैज्ञानिक विभिन्न आयामों से और इन जटिल प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने की कोशिश कर रहे थे। समिति ने अपने जनसांख्यिकीय रुझानों में पाया कि पुरुषों और महिलाओं के जीवन प्रत्याशा और मृत्यु दर में असमानता की खाईं बहुत ज्यादा हो गई थी, शिक्षा में भी असामनता पाई गई। ये सारी स्थितियाँ उन मूल्यों के विपरीत थीं जिन मूल्यों और आदर्शों के साथ हमारे सविधान निर्माताओं ने संविधान का निर्माण किया था। जिस राजनैतिक अधिकार, कानूनी समानता और शिक्षा को विश्वसनीय साधन माना गया वे सिर्फ कुछ महिलाओं तक ही सिमट कर रह गए और हाशिए पर मौजूद महिलाओं की पहुँच से बाहर ही रहे। साथ ही, पितृसत्ता ने भी पहले की अपेक्षा ज्यादा मजबूती से अपनी पकड़ बनाई। इसी दौरान समिति ने अपनी रिपोर्ट में कुछ सवाल भी पेश किए इसी दौरान महिला आंदोलन की नई लहर ने भी समाज को प्रभावित किया और आपातकाल के दौरान लोग अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति सचेत हुए।

1.3.5. स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार हेतु किए गए प्रमुख प्रयास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात निर्मित संविधान में महिलाओं को विधिक समानता के अधिकार दिये गये हैं तथा उनसे किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकने हेतु अनुच्छेद 14 एवं 15 में विभिन्न उपबंध किये गये हैं। 1954 के विशेष विवाह अधिनियम द्वारा अंतर्जातीय एवं अंतर-धर्म विवाह को कानूनी मान्यता दी गयी। 1955 के हिंदू मैरिज एक्ट द्वारा एक पत्नी के रहते हुये पुरुष द्वारा दूसरा विवाह करने पर रोक लगा दी गयी तथा ऐसा करने पर दण्ड एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया। 1956 के हिंदू

उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा लड़की को भी पुत्र के बराबर उत्तराधिकारी बनने की व्यवस्था की गयी। हिंदू गोद एवं व्यय अधिनियम द्वारा लड़की को भी इस संबंध में लड़के के बराबर मान लिया गया।

1961 में मातृत्व लाभ अधिनियम बना, जिसे अप्रैल 1976 में संशोधित करके गर्भावस्था के दौरान कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं के लाभार्थ अनेक उपायों की घोषणा की गयी। संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत, समान कार्य के लिए महिलाओं को पुरुषों के बराबर वेतन दिए जाने की पहल करते हैं। समान पारितोषिक (पारिश्रमिक) अधिनियम 1976 महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन देने एवं नौकरियों में उनसे किसी भी प्रकार का भेदभाव रोकने की व्यवस्था करता है। कारखाना अधिनियम 1976 द्वारा सभी कारखानों के लिये यह अनिवार्य बना दिया गया है कि यदि किसी कारखाने में 30 या उससे अधिक महिला कर्मचारी कार्यरत हैं तो कारखाने के मालिक या प्रबंधकक्रेच (शिशु पालन गृह) की स्थापना करेंगे, जहां कार्य के दौरान महिलाओं के छोटे बच्चों की देखभाल की जायेगी। 1983 में संसद ने फौजदारी कानून (संशोधित) प्रोसीजर कोड में महिलाओं को अत्याचार से बचाने हेतु अनेक नये अधिनियम जोड़े गये। महिलाओं के साथ बलात्कार तथा पति या ससुराल द्वारा सताये जाने पर कठोर दण्ड एवं कारावास की सजा निर्धारित की गयी है। महिला व्याभिचार अधिनियम एवं बालिका अधिनियम 1956 में, वर्ष 1986 में संशोधन किया गया तथा यह नियम बना दिया गया कि किसी महिला या बालिका को लैंगिक रूप से प्रताड़ित किये जाने पर कठोर दण्ड एवं कारावास की सजा दी जायेगी। इस अधिनियम द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी है किसी महिला का व्यावसायिक उद्देश्यों से दैहिक शोषण गंभीर अपराध माना जायेगा। 1886 में दहेज निवारण अधिनियम में 1961 में अनेक संशोधन किये गये तथा दहेज देना या ग्रहण करना दोनों ही जुर्म की श्रेणी में रख दिये गये। वर्ष 1987 में एक अधिनियम पारित करके सती प्रथा को अक्षम्य मानव हत्या अपराध घोषित कर दिया गया। 19वीं शताब्दी से ही स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु प्रयास किए जाने लगे थे। महिलाओं को लेकर किए जाने वाले भेदभावपूर्ण के नजरिए में बदलाव को आगे भी महत्व दिया गया। इन सुधारों को मूल रूप से तीन भागों में वर्गीकृत करके देखा जा सकता है–

समाज सुधारकों द्वारा किए गए प्रयास-

स्त्रियों की स्थित में सुधार का सर्वप्रथम प्रयास राजाराम मोहन राय द्वारा किया गया। इनके द्वारा 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की गई और इनके प्रयास के कारण ही 1829 में सती प्रथा उन्मूलन कानून की व्यवस्था की गई। इनके द्वारा बाल विवाह के निषेध और विधवा पुनर्विवाह के प्रचलन के लिए बहुत प्रयास किए गए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदू समाज को वैदिक संस्कृति की ओर लौटने का आह्वान किया। इन्होने बाल विवाह पर रोक, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना और पर्दा प्रथा को समाप्त करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए। ईश्वर चंद्र विद्यासागर द्वारा बहुपत्नी विवाह और विधवा पुनर्विवाह निषेध की कटु आलोचना की गई और उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही सन 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम को नियोजित किया गया। इन्होने स्त्री शिक्षा को भी महत्व दिया और कहा कि महिलाओं की जागृति के लिए आवश्यक है कि वे शिक्षित हों। केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों के प्रयासों के फलस्वरूप सन 1872 में विशेष विवाह अधिनियम को क्रियान्वित किया गया और इसके द्वारा विधवा पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह को मान्यता प्रदान की गई। साथ ही इसके द्वारा एक विवाह को भी अनिवार्य स्वरूप प्रदान किया गया। इस शताब्दी के मध्य में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिये जाने के रूप में कई प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की गई और सन 1902 में विभिन्न शिक्षण संस्थानों में लड़कियों की संख्या 2,56,000 हो गई। कई स्त्रियाँ शिक्षा के कारण जागरूक हुईं और नौकरियों में संलिप्त हो गईं। इसी

दौरान कई महिलाएं भी आगे आयीं और महिलाओं के हितों को लेकर आवाज बुलंद की, यथा- रमाबाई रानाडे,मेडम कामा, तोरुदत्त, स्वर्णकुमारी देवी आदि। इनके अलावा महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी करने हेतु प्रेरित किया और उन्हें स्वयं की शक्ति को पहचानने का मौका दिया, जिससे वे प्रगति के मार्ग पर आगे की उन्मुख हुईं। उन्होने बाल विवाह और कुलीन विवाह का विरोध किया तथा विधवा पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह का पुरजोर समर्थन किया।

महिला संगठनों द्वारा किए गए प्रयास-

20वीं शताब्दी की शुरुआत में ही स्त्रियों को उचित स्थान दिलाने के प्रयोजन से स्त्री आंदोलन का प्रादुर्भाव होता है। एनी बेसेंट, मारग्रेट नोबल व मारग्रेट कुशनस ऐसी पश्चिमी महिलाएं थीं, जिन्होने भारत में स्त्री आंदोलन को मजबूत स्थिति पर काबिज होने के लिए उपयुक्त दशाएँ उपलब्ध कराई है। मद्रास में सन 1917 में भारतीय महिला समिति की स्थापना की गई। अनेक महिल संगठनों के प्रयास के पश्चात अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना की गई और पूना में सन 1927 में इसका पहला अधिवेशन किया गया। इस संगठन ने स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व दिया और इसके प्रचार-प्रसार हेतु अनेक प्रयास किए। बाद में इसने बाल विवाह, बहुपत्नी विवाह, दहेज आदि प्रकार की कुप्रथाओं का विरोध किया और स्त्रियों के लिए पुरुषों के ही समान संपत्ति पर अधिकार व वयस्क मताधिकार की मांग की। इस संगठन के अतिरिक्त विश्वविद्यालय महिला संघ, भारतीय ईसाई महिला मंडल, अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था, कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट आदि संगठन भी स्थापित किए गए, जिन्होने महिलाओं पर लगे निषेध और असमानता के व्यवहार का विरोध किया तथा उनके लिए समतापूर्ण समाज की व्यवस्था करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए।

उन्नीसवीं सदी तक समाजसुधार और राष्ट्रवाद की ओर उन्मुख स्त्री संघर्ष बीसवीं सदी के आरंभ में स्त्री अधिकारों के प्रति भी सचेत हुआ। यह समय ऐसा रहा जब पूरे भारत में स्त्रियाँ राष्ट्रीय स्तर के मंचों पर संगठित हुईं और अनेक स्थानीय संगठन भी इनसे जुड़े। 1908 में हुआ लेडिज कांग्रेस का सम्मलेन हो या 1917 में गठित विमेंस इंडियन असोसिएशन ऐसे ही बड़े संगठन थे। भारत में स्त्रियों के ऐसे संगठनों की सबसे बड़ी विडंबना रही हिंदू धर्म और उस समय की पुनरुत्थानवादी राष्ट्रीय विचारधारा। एक ओर जहाँ रमाबाई जैसी स्त्री को हिंदू धर्म छोड़ना पड़ा वहीँ दूसरी ओर होमरूल जैसे आंदलनों का हिंदुत्व से ओत-प्रोत धार्मिक स्वरुप जिसमें स्त्रियों की बड़े स्तर पर सक्रिय भागीदारी थी। यही एक बड़ा कारण रहा दलित आंदलनों और स्त्री आंदलनों की संवेदनात्मक स्तर की दूरी का भी। फिर भी संघर्ष की इस लंबी परंपरा को किसी भी स्तर से नकारा नहीं जा सकता है जहाँ स्त्रियाँ अपने अधिकारों की माँग के साथ खड़ी हो रही थीं| सरला देवी जैसी पुनरुत्थानवादी स्त्री ने भी विधवाओं की शिक्षा और उनके अधिकारों की माँग की थी| इस रूप में उस समय स्त्रियों की लड़ाई दोहरे स्तर पर चल रही थी, एक तो उपनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ दूसरे अपने घर में उनकी नियति निर्धारित करने वाली पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ पूर्ण मसले थे।

1.3.6. सारांश

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में हुए तमाम किसान आंदोलन में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फिर भी यह अत्यंत आश्चर्यजनक बात है कि समाज सुधारकों का ध्यान इनकी तरफ नहीं गया और ना ही यह उनके चिंता का विषय था। साथ ही, यह भी विडंबनापूर्ण बात है कि इतिहासकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महिलाओं की भागीदारी की प्रंशसा तो की लेकिन इसको महात्मा गांधी के

चमत्कारिक व्यक्तित्व के साथ जोड़ कर ही देखा। उनसे परे जाकर महिलाओं की भागीदारी को रेखांकित नहीं किया। इस दौरान हुए किसान और मजदूर आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका पर या तो बहुत कम ध्यान दिया गया या फिर ध्यान ही नहीं दिया गया। गांधीवादी अंतराल को छोड़ दें तो बाकि तीन चरणों में महिलाओं के प्रश्न पूरी तरीके से उनकी पारिवारिक स्थिति तक ही सीमित थे। उनकी शिक्षा तक पहुँच और कानूनी अधिकार ही महत्व18वीं शताब्दी से आजादी तक के काल को ब्रिटिश काल के रूप में संदर्भित किया जाता है। इस काल में भी स्त्रियों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुये। उनकी निर्योग्यताओं को अभी भी उसी रूप में परिभाषित किया जा रहा था। बाल विवाह और पर्दा प्रथा के प्रचलन का प्रभाव उनकी शिक्षा पर परिलक्षित होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय स्त्रियों की साक्षारता 6 प्रतिशत से भी कम थी। स्त्रियों का मुख्य कार्य संतानोत्पत्ति और परिवार की सेवा करना ही रह गया तथा सारे अधिकार पुरुषों के अधीन थे। महिलाओं का संपूर्ण जीवन चहारदीवारी के अंदर व्यतीत होता था।

1.3.7. बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : उन्नीसवीं सदीं में महिला प्रश्नों को विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न 2 : भारत में समाज सुधार आंदोलनों के इतिहास की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

प्रश्न 3: स्त्रियों की इतिहास में अदृश्यता के क्या कारण रहे हैं ?

प्रश्न 4 : महिला मुद्दों के विभिन्न चरणों की व्याख्या करें।

प्रश्न 5: भारत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए किन कानूनी प्रावधानों का सहारा लिया गया ?

1.3.8. उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

1. गुप्ता, स. क. (2007). *भारतीय नारी कल आज और कल*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान

2. त्रिपाठी, क. (2010). *औरत इतिहास रचा है तुमने*. नई दिल्ली:कल्याणी शिक्षा परिषद

3. स्त्री संघर्ष का इतिहास , राधा कुमार, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली

4. रेखा, क. (2006). *स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ*.नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

5. नारीवादी सिद्दांत एवं वयवहार, शुभ्रा प्रमार, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2015

6. नारीवादी राजनीति :संघर्ष एवं मुद्दे ,साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता , हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय 2011,

7. Women in early indian society: Reading in Early Indian History , kumkum roy,

8. Manohar Publisher and Distributors ,New Delhi , 2011

9. http://adhunikbhartkaitihaas.blogspot.com/2016/05/religious-and-social-reform-movement.html

10. https://feminisminindia.com/2017/02/02/women-struggles-history-hindi/

खंड - 1 स्त्री इतिहास: आवश्यकता और प्रारम्भिक दृष्टिकोण
इकाई - 4 इतिहास में स्त्री : प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल

इकाई की रूपरेखा

1.4.1. उद्देश्य
1.4.2. प्रस्तावना
1.4.3. इतिहास में स्त्री की दृश्यता और अदृश्यता पर बहस का प्रारंभ
1.4.3.1 इतिहास में महिलाओं का चित्रण और उसकी सीमाएँ
1.4.3.2 "हर स्टोरी" के निर्माण की आवश्यकता
1.4.3.3 इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति की खोज एवं चुनौतियाँ
1.4.4. प्राचीन काल में स्त्रियाँ
1.4.4.1 वैदिक, बौद्ध, जैन धर्मों में महिलाओं की स्थिति पर प्रमुख स्त्रीवादी शोध
1.4.4.2 रामायण, महाभारत की महिलाएँ
1.4.4.3 प्राचीन काल में महिलाओं के समक्ष चुनौतियाँ
1.4.5. मध्य काल में स्त्रियाँ
1.4.5.1 मध्य काल में स्त्रियों की स्थिति को लेकर भ्रम
1.4.5.2 मुगल स्त्रियाँ
1.4.5.3 भक्त कवियित्रियाँ
1.4.6. आधुनिक काल में स्त्रियाँ
1.4.6.1 महिलाओं की शिक्षा में सहभागिता
1.4.6.2 आजादी के आंदोलन में महिलाएँ
1.4.6.3 महिलाएँ और विभाजन
1.4.6.4 स्वायत्त महिला आंदोलनों का इतिहास
1.4.7. सारांश
1.4.8. बोध प्रश्न
1.4.9. संदर्भ ग्रंथ सूची
1.4.10 उपयोगी ग्रंथ सूची

1.4.1. उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप निम्नलिखित बातों का ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे।

- इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति पर चर्चा की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
- इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति का स्तर क्या है ?
- इतिहास का दृष्टिकोण क्या रहा है? इसमें किस प्रकार की कमियाँ रहीं हैं ?
- "हरस्टोरी" से क्या तात्पर्य है?

- महिलाओं की उपस्थिति और दृश्यता हेतु किस प्रकार के प्रयास स्त्रीवादी इतिहासकारों द्वारा किए गए?
- इन प्रयासों हेतु किस प्रकार की चुनौतियाँ उनके सामने आई?
- इतिहास में महिलाओं की दृश्यता बढने के प्रयासों से किस प्रकार के ज्ञान की वृद्धि हुई ?
- प्राचीन काल, मध्य काल और आधुनिक काल की स्त्रियों से संबंधित क्या नये मुद्दे इतिहास में शामिल हुए?
- स्त्रीवादी इतिहासकारों ने महिलाओं के संबंध में किस प्रकार के महत्वपूर्ण शोध किए हैं?

1.4.2. प्रस्तावना

" स्त्री जाति के इतिहास का संबंध महज स्त्रियों से नहीं है, उनसे तो है ही, उसका संबंध उस संपूर्णसमाज से भी है, जिसमें वे पुरुषों के साथ जीवनयापन करती हैं।"-इरफान हबीब (हबीब, 2002)

इतिहास में स्त्रियों की उपस्थिति की पडताल का, इतिहास के समग्र रूप के संवर्धन में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है इतिहास के केंद्र में प्रमुखतः सत्ताधारियों की राजनीति ही रही। जिनके पास सत्ता नहीं थी, वे इतिहास की परिधि से अधिकांशतः बाहर ही रखे गए, जिसमें दलित और स्त्रियाँ प्रमुख थे। इतिहास को महिलाओं के नजरिए से देखने और उसमें महिलाओं के योगदान को शामिल करने के लिए इतिहास की पुनर्रचना की गई है, जिसे **हर स्टोरी** का नाम दिया गया। विश्व इतिहास में महिलाओं की अदृश्यता का मुद्दा काफी महत्वपूर्ण रहा है। स्त्रीवादी इतिहासकारों की इतिहास से यह शिकायत रही कि इतिहास में महिलाओं को हमेशा अदृश्य रखा गया। महिलाओं की भूमिकाओं और योगदानों को नगण्य मानकर इतिहास में जगह नहीं दी गई। जहाँ तक भारत की बात है, प्रसिद्ध इतिहासकार उमा चक्रवर्ती का मानना है कि भारत के इतिहास में महिलाओं की अदृश्यता की समस्या पश्चिम की तरह नहीं रही है। यहाँ एक साथ महिलाएँ दृश्य और अदृश्य एक साथ रहीं हैं। महिलाओं की पारंपरित भूमिकाओं में दृश्यता है और उनकी महत्वपूर्ण पितृसत्तात्मक विचारधारा को चुनौती देने वाली भूमिकाओं की अदृश्यता है (Chakravarty, 'Re'inscribing the past: inserting women into Indian history)। तात्पर्य यह है कि इतिहास में जिन महिलाओं ने पितृसत्तात्मक विचारधारा के भीतर रहते हुए उसे मजबूत करने का काम किया उन महिलाओं को इतिहास में सीमित स्थान मिल गया और जिन्होंने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के समक्ष किसी प्रकार की चुनौतियाँ रखीं, उन्हें इतिहास से पूरी तरह गायब कर दिया गया। यह स्थिति प्राचीन, मध्य और आधुनिक तीनों ही कालों में रहीं है। स्त्रीवादी इतिहासकारों का अकादमिक जगत को यह बहुत महत्वपूर्ण योगदान है, जिसके कारण महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिकाओं, योगदानों और उनके संघर्षों को इतिहास में शामिल कर उसके ज्ञान को समग्रता देने का उल्लेखनीय कार्य किया गया। वास्तव में इन्होंने इतिहास को पुनर्प्राप्त और पुनर्गठित किया है। प्रस्तुत इकाई में हम विस्तार से तीनों कालों के इतिहास में महिलाओं के वर्णन, उनकी स्थिति और स्त्रीवादी इतिहासकारों द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों का अध्ययन करेंगे ताकि हमें इतिहास की एक मुकम्मल जानकारी मिल सके।

1.4.3. इतिहास में स्त्री की दृश्यता और अदृश्यता पर बहस का प्रारंभ

इतिहास में स्त्रियों की उपस्थिति और अनुपस्थिति को लेकर स्त्रीवादी नजरिए से एक गंभीर बहस की शुरुआत भारत में 70 के दशक से प्रारंभ होती है। "समानता की ओर" रिपोर्ट के 1974 में आ जाने के

बाद अकादमिक एवं आंदोलन दोनों ही स्थानों पर महिलाओं की दुःखद एवं सोचनीय स्थिति पर गंभीर चर्चाएँ होने लगीं। यू.एन. की ओर से 1975-85 को "अंतरराष्ट्रीय महिला दशक" घोषित कर देने के साथ ही महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने और उनकी समस्याओं के समाधान तलाशने के लिए अलग अलग शोधकर्ताओं ने महिला विषयक मुद्दों पर अध्ययन को प्राथमिकता दी। इसी क्रम में स्त्रीवादी इतिहासकारों ने इतिहास में महिलाओं की स्थिति को सामने लाने का प्रयास प्रारंभ किया, ताकि महिलाओं की पराधीनता और शोषण के कारणों की पड़ताल इतिहास की जड़ों में जाकर की जाए। यह जाना जाए कि जिस देश में महिलाओं को देवी मानकर पूजने की प्रथा की दुहाई हर कदम पर दी जाती है , उस देश में महिलाएँ इस रिपोर्ट में दर्ज हालातों तक कैसे पहुँच गईं?

1.4.3.1 इतिहास में महिलाओं का चित्रण और उसकी सीमाएँ

इतिहास में इसकी पड़ताल शुरु करने पर स्त्रीवादी इतिहासकारों ने अलग अलग काल खंडों में महिलाओं के बारे में ऐतिहासिक जानकारी इतिहास के लिखित ग्रंथों के माध्यम से जुटानी शुरु की। उन ग्रंथों में महिलाओं के संदर्भ में जानकारी की काफी सीमाएँ रहीं। अमूमन इतिहास की पुस्तकों में महिलाओं के बारे में जानकारी का अभाव था। टोकन के तौर पर सिर्फ रजिया सुल्तान, नूरजहाँ, मुमताज महल जैसी कुछ ही महिलाओं के राजसी ठाठबाट भरे जीवन का ही जिक्र मिला और वो भी बहुत सीमित। प्राचीन इतिहास की जानकारी के स्रोत अधिकांशतः धार्मिक ग्रंथ थे, जो कि पुरुष प्रधान थे। इतिहास की ज्ञान संपदा में ज्यादातर राजाओं, उच्च जातीय अमीर पुरुषों द्वारा किए युद्धों, उनकी संपत्ति और उनके द्वारा किए गए विभिन्न कार्यों के ही जिक्र ज्यादा मिले। स्त्रियों, दलितों, किसानों आदि पर बहुत ही सीमित जानकारी की प्राप्ति हुई। इसका एक बड़ा कारण ज्ञान के ऊपर उच्च जातीय, उच्च वर्गीय पुरुषों का ही नियंत्रण रहा, जिन्होंने ज्ञान का निर्माण अपनी सत्ता और विजय गाथा को आगे आने वाली पीढियों तक पहुँचाने के लिए किया। इस कार्य से सत्ताहीन लोग जिनमें महिलाएँ और दलित शामिल थे, दूर रखे गए। जिन हाशिए के लोगों ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास भी किए, उन्हें दंड या उसकी धमकी भी दी गई। शम्बूक, एकलव्य, गार्गी इसके बड़े उदाहरण हैं (चक्रवर्ती, जाति समाज में पितृसता, 2011) शिक्षा की प्राप्ति हाशिए के लिए दिवा स्वप्न की तरह ही रही।

सामान्यतौर पर इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति को देखने के लिए यदि हम मानव विकास के इतिहास के वर्णन को भी यदि पुस्तकों में देखते तो वह पुरुषों का विकास ही ज्यादा दिखता क्योंकि औजार बनाना, आग का आविष्कार, शिकार करने आदि में मानव की तस्वीरें तो पुस्तकों में दिख ही जातीं हैं, पर आदि मानवी का चित्रण सिर्फ भोजन पकाने और बच्चे संभालने के काम में ही दिखाया जाता रहा है। मानो इसके अलावा उसका कोई और काम या योगदान ही न रहा हो। पाठ्य पुस्तकें महिलाओं को लेकर काफी भेदभावपूर्ण रहीं, जिन पर बाद में काफी गंभीर कार्य किए गए। निरंतर और एन.सी.आर.टी., नई दिल्ली का कार्य इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

19 वीं सदी में स्त्री प्रश्नों पर बहस

स्त्री प्रश्नों के संदर्भ में इतिहास में एक महत्वपूर्ण बहस 19वीं सदी में मिलती है, जो हमें इतिहास में महिलाओं की दृश्यता और अदृश्यता के विवेचन की ओर ले जाती है। इस बहस पर स्त्रीवादी इतिहासकार उमा चक्रवर्ती ने महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिए हैं। औपनिवेशिक काल में यह बहस वैदिक स्त्रियों की बेहतर स्थिति को लेकर की जा रही थी। यह बहस औपनिवेशिक शासकों द्वारा प्रारंभ की गई। ब्रिटिश शासकों ने भारत में अपनी सत्ता को मजबूती से स्थापित करने और लोगों के बीच उसकी स्वीकार्यता बनाने के लिए खुद को श्रेष्ठ और 'सभ्य' और शासित जनता को 'असभ्य' एवं क्रूर लोगों की श्रेणी में

डाल दिया। इसके लिए उन्होंने भारत में महिलाओं की स्थिति का एक हथियार के रूप में उपयोग किया। उनके द्वारा महिलाओं की समाज में स्थिति उस समाज की सभ्यता का पैमाना माना गया। ब्रिटिश शासकों ने यह प्रचारित करना शुरु किया कि यहाँ पर **बालिका हत्या, सती प्रथा, बाल विवाह** और **विधवा विवाह निषेध** जैसी सामाजिक कुरीतियाँ परंपराओं के नाम पर प्रचलित हैं, जो महिलाओं के ऊपर बेहद क्रूर हिंसा है। महिलाओं की तकलीफ को दूर करने के लिए ब्रिटिश शासन को भारत में स्थापित करने की आवश्यकता के रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा। ब्रिटिश महिलाएँ पुरुषों के ही बराबर सम्मान, शिक्षा और सुरक्षा की हैसियत रखती थीं। इसलिए ब्रिटिश स्वयं को भारतीयों की तुलना में बहुत अधिक सभ्य मानते थे। असभ्यता के इस आरोप का जवाब दिया, पश्चिमी शिक्षा प्राप्त किए उच्च जातीय, मध्य वर्गीय भारतीय पुरुषों ने। इन पुरुषों में भी दो समूह सामने प्रकट हुए, जिसमें पहला समूह सुधारकों का था, जो इन स्थितियों में सुधार के लिए अग्रसर हुए इन लोगों में राम मोहन रॉय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, आर.जी. भंडारकर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। दूसरा समूह उन परंपरावादी लोगों का था, जो कि परंपरा के नाम पर इन गतिविधियों को जारी रखने के हिमायती थे। वहीं दूसरी ओर वे भारत में महिलाओं की बेहतर स्थिति होने की बात भी करते हैं। इसके लिए वे वैदिक काल को लेते हैं। इनका मानना था कि ब्रिटिश सभ्यता से बहुत पहले भारत एक सभ्य स्थिति में था, इसे जगत गुरु कहा जाता था। इस काल में महिलाओं की हैसियत बहुत ऊँची थी। उन्हें भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। वे ब्रह्मवादिनी कही जाती थीं। उनका भी उपनयन संस्कार होता था और वे अपनी शिक्षा के पूर्ण हो जाने के बाद ही विवाह करतीं थीं। इसके लिए गार्गी, अपाला, घोषा, मैत्रेयी आदि का उदाहरण दिया जाता था। इस विचार के विकास में आर्य समाज सबसे आगे था। प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज भी इसमें शामिल थे (चक्रवर्ती, 2001)। स्वाती जोशी अपनी पुस्तक वूमेन इन अर्ली इंडिया में बंकिमचंद्र चटर्जी और रविंद्रनाथ टैगोर का नाम भी शामिल करती हैं। इनका लेखन भी भारतीयों के गौरवशाली इतिहास का प्रमाण रहा है। राजपूत महिला, पुरुषों के नायकत्व के आदर्श स्वरूपों के गुणगान इनके साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं, जिससे 19वीं-20वीं शताब्दी के बंगाली समाज के रोल मॉडल गढे गए (Joshi, 2001)। उमा चक्रवर्ती बताती हैं कि इतिहास में महिलाओं की स्थिति का वर्णन हिंदुत्व के संदर्भ में ही मिलता है, इसलिए इसमें विधवा पुनर्विवाह, नियोग संस्था के अस्तित्व, स्त्रियों के लिए संपत्ति में अधिकार, स्त्रीधन के उदय और विकास तथा निःसंतान विधवा महिला द्वारा गोद लिए जाने आदि धार्मिक एवं कानूनी प्रश्नों की भरमार है। धार्मिक पक्ष में इस बात पर ज्यादा जोर दिया गया कि स्त्री को स्वयं या पति के साथ धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार रहा है। अतः वैदिक काल में उसकी स्थिति काफी सम्मान जनक रही है। भारतीय महिलाओं की दयनीय स्थिति के प्रमुख कारणों के रूप में बाहरी आक्रमणों को दोषी बताया गया और कहा गया कि उनकी स्थिति में बदलाव बाहरी आक्रांताओं जिनमें मुगल प्रमुख हैं, के कारण हुई। मुगलों से महिलाओं को बचाने के लिए ही बाल विवाह, परदा, सती और बालिका शिशु हत्या जैसी कुरीतियाँ पैदा हो गईं। महिला प्रश्नों पर सुधारकों एवं परंपरावादी दोनों ने ही महिलाओं की स्थिति को बेहतर या खराब होने के उदाहरण पुराने से पुराने संस्कृत पाठ के माध्यम से प्रस्तुत किए गए। सारी की सारी बहस संस्कृत पाठ में वर्णित महिलाओं के वर्णन को लेकर ही चल रही थी (चक्रवर्ती, 2001)।।

इस बहस के माध्यम से भारतीय ब्रिटिशों के समक्ष स्वयं को कमतर समझने का विरोध कर रहे थे। सुधारक महिलाओं की स्थिति में बेहतरी के प्रयास उनके परिवारिक ढाँचे के भीतर ही करने की योजनाएँ बना रहे थे, वहीं परंपरावादी पहले के नियमों को ही ठीक ठहराने पर टिके थे। यहीं से वैदिक काल को महिलाओं के लिए स्वर्णकाल मानने की समझ बनाने की शुरुआत हो गई। औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी

इतिहासकारों द्वारा प्राचीन इतिहास के कुछ खास हिस्से को ही महिलाओं की बेहतर स्थिति के रूप में प्रदर्शित किया गया। बाकी हिस्सों को छोड दिया गया कि उनमें महिलाओं की हैसियत क्या रही है? इस पर स्त्रीवादी इतिहासकारों ने सवाल उठाए। मसलन वैदिक काल उच्च जातीय, वर्गीय स्थिति की बात कर रहा है पर वैदिक काल की दासियों के बारे कोई जानकारी नहीं मिलती (chakravarti, 2014)। स्त्रीधन में सिर्फ कपड़े, जेवर को ही शामिल किया गया। स्थिर संपत्ति के प्रमाण क्यों नहीं मिलते हैं? शिक्षा सिर्फ सीमित महिलाओं तक ही क्यों सीमित थी? युद्ध के समय महिलाओं पर इतनी क्रूरता क्यों की जाती थी? क्यों उन्हें दान की वस्तु माना जाता था? इस प्रकार के सवालों के माध्यम से प्राचीन इतिहास में महिलाओं की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने और इतिहास के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया स्त्रीवादी इतिहासकारों द्वारा प्रारंभ हुई। (Javed, 2003)

1.4.3.2 "हर स्टोरी" के निर्माण की आवश्यकता

जैसा कि हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं कि औपनिवेशिक इतिहास में महिलाएँ लगभग अदृश्य रहीं हैं। उन्हें सीमित दायरों में ही प्रस्तुत किया गया है। उसके बाद लिखे गए राष्ट्रीय इतिहास में आजादी के आंदोलन और उसके जांबाज़ सिपाहियों, नेताओं की कथाएँ, राजनैतिक संस्थाओं की निर्मिति और सांस्कृतिक मंच, संस्थाओं के निर्माण, समाज सुधार आंदोलन जैसे सामाजिक राजनैतिक मुद्दों की ही अधिकता रही। इस प्रकार सामाजिक इतिहास का निर्माण हुआ। लेकिन यहाँ भी महिलाओं की राष्ट्रीय आंदोलनों में सहभागिता, विभिन्न राजनैतिक, सांस्कृतिक संस्थाओं में उनकी उपस्थिति, योगदानों को शामिल नहीं किया गया। विभाजन का इतिहास लिखा गया लेकिन उसमें महिलाओं के ऊपर इसके पड़े प्रभावों और हिंसा के बारे में बहुत छुटपुट जानकारी ही शामिल की गई। मार्क्सवादी इतिहास लेखन के माध्यम से सामाजिक निर्माण के इतिहास लेखन का प्रारंभ हुआ। इसमें डी.डी. कोसांबी अग्रणी इतिहासकार रहे। इतिहास को वर्गीय दृष्टि से देखने की शुरुआत की गई। खासतौर पर उन्होंने भारत की पुरानी प्रसिद्ध महागाथाओं में वर्णित राजनैतिक, सामाजिक, संस्थाओं का उस समय के उत्पादन के संसाधनों से क्या संबंधबनता है और वह किस प्रकार के समाज और जेंडर संबंधों का निर्माण करता है, को इतिहास के केंद्र में रखा। उर्वशी पुरुरवा इस संदर्भ में उनका महत्वपूर्ण आलेख है। (D.D.Kosambi, 1999)। इसके बाद का इतिहास लेखन जो कि सामंतवाद और उसके प्रभाव, उत्पादन के संबंधों आदि को ध्यान में रखकर लिखा जा रहा था, में भी महिलाओं का उत्पादन में स्थान या सामाजिक पुनरुत्पादन में महिलाओं की भूमिका को शामिल नहीं किया गया। बाद में आए निम्नवर्गीय इतिहास(Subaltern studies) में आदिवासी, किसान, गरीबों के जीवन, उनके अनुभव, उनके छोटे बडे प्रयासों को शामिल करके इतिहास को उच्चवर्गीय ढाँचे से निकालने के प्रयास किए। पर यह भी मार्क्सवादी इतिहास की तरह ही वर्ग और जेंडर के संबंधों को सामने नहीं रख पाया (Chakravarty, 'Re'inscribing the past: inserting women into Indian history)। इसमें भी महिलाओं के इतिहास का अभाव मिला।रणजीत गुहा के आलेख "**चंद्रा की मौत**" या पार्था चटर्जी के आलेख "**राष्ट्र और उसकी महिलाएँ**" को शामिल किया गया (देखें निम्नवर्गीय प्रसंग भाग 1), बहुत महत्वपूर्ण आलेख होने के बाद भी यह स्त्रियों के इतिहास लेखन की ओर सीमित प्रयास ही प्रदर्शित करते दिखाई देते।

माना गया कि जो इतिहास पुरुषों का है, वही महिलाओं का भी है। उत्पादन के संबंधों को समझने की कोशिश तो की गई, लेकिन पुनरुत्पादन के इतिहास पर बात नहीं हुई। उसके जाति या जेंडर से क्या संबंधबनते हैं, वह चर्चा का मुद्दा नहीं बन पाया। हाशिए के तबके की बात तो की गई, लेकिन उस हाशिए का भी कोई हाशिया हो सकता है, जो अभी भी अंधेरे में है, वह चर्चा का हिस्सा नहीं बना। इस

कमी की पूर्ति स्त्रीवादी इतिहासकारों ने की हर स्टोरी का निर्माण करके, कहा कि History सिर्फ His Story है। अतः Her Story के निर्माण की आवश्यकता है ।

1.4.3.3 इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति की खोज एवं चुनौतियाँ

महिलाओं के इतिहास लेखन में बड़ी भूमिका 70 के दशक के महिला आंदोलनों की रही है। सामाजिक ढाँचे में गहरे तक बसी पितृसत्ता ने किस प्रकार से समाज से ज्ञान की पूरी परंपरा को प्रभावित करके रखा है, को सामने लाने का प्रयास स्त्री अध्ययन एवं स्त्री आंदोलन दोनों के द्वारा किया गया॥ इतिहास की निर्मिति में व्याप्त पितृसत्ता के प्रभाव को सामने लाने के लिए जेंडर विश्लेषण को एक औजार के रूप में प्रयुक्त किया गया॥ इतिहास के हर दौर को जेंडर के लेंस के माध्यम से दुबारा जाँचा जाने लगा। इसके लिए नयी पद्धतियों और स्रोतों की आवश्यकता हुई क्योंकि पुरानी पद्धतियाँ और स्रोत उसी पितृसत्तात्मक ढाँचे की ही उपज थे॥ पुराने स्रोत और पद्धतियाँ उनके लिए बड़ी चुनौती थे॥ पुराने ऐतिहासिक लेख, संस्कृत ग्रंथों को दुबारा से पढा गया। जैसा कि हम इस बात पर चर्चा कर चुके हैं कि उनमें महिलाओं की उपस्थिति बहुत सीमित क्षेत्र में और एक वर्ग विशेष तक ही रही है। अतः उनमें अदृश्य महिलाओं को ढूँढने की कोशिश की गई। जिन स्थानों पर महिलाएँ खामोश हैं, उन स्थानों की खामोशी का विश्लेषण किया गया॥ संस्कृत पाठ के अतिरिक्त अन्य भाषाओं की रचनाओं को भी देखा गया॥ महिलाओं की लिखी डायरियों, पत्र, कवितायँ, अन्य रचनाओं का भी खास कालखंड में महिलाओं के दृष्टिकोण को समझने के लिए उपयोग किया गया॥ लोक गीतों, कथाओं, कहावतों, लंबी बातचीत, साक्षात्कारों जैसे मौखिक इतिहास के भी स्रोत प्रयोग में लाये गए॥ महिलाओं द्वारा की गई कलात्मक अभिव्यक्तियों को भी इस हेतु शामिल किया गया॥ महिलाओं की रचनाओं को एकत्र किया गया और लेख के माध्यम से भी इतिहास के दौर को समझने का प्रयास किया गया॥ सूजी थारू के दो वॉल्यूम "Women writing in India" "इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण कार्य है॥ ऐसे ही कई और महत्वपूर्ण कार्य स्त्रीवादी इतिहासकारों ने किए हैं, जिनके माध्यम से हम विभिन्न दौरों में महिलाओं के इतिहास को समझने का प्रयास करेंगे ।

1.4.4. प्राचीन काल में स्त्रियाँ

जैसा कि हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं कि औपनिवेशिक इतिहास लेखन के अनुसार प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी मानी गई॥ उन्हें वेद शास्त्रों में प्रवीण, अपनी इच्छा से विवाह का अधिकार रखने वाली विदुषी माना गया। लेकिन स्त्रीवादी इतिहासलेखन के माध्यम से महिलाओं के जीवन का एक अलग ही पहलू सामने निकल कर आया। इस क्षेत्र में डॉ. उमा चक्रवर्ती, डॉ. कुमकुम रॉय, डॉ. जया मेहता आदि के कार्य काफी महत्वपूर्ण हैं । प्राचीन काल में वैदिक काल के अतिरिक्त बौद्ध धर्म और जैन धर्मों में भी महिलाओं की स्थिति का आकलन किया गया ताकि महिलाओं को लेकर सिर्फ एक विचार का ही प्रभाव हावी ना रहे । इसके लिए संस्कृत के अलावा पाली और प्राकृत की रचनाओं को भी शामिल किया गया । धार्मिक पाठ के अतिरिक्त पुरातात्विक स्रोतों, शिलालेखों, विभिन्न साहित्यों आदि का भी प्रयोग किया गया॥ इसके साथ-साथ इस बात को भी सामने लाया गया कि इस इतिहास में अपाला, गार्गी, घोषा के रूप में सिर्फ उच्चजातीय महिलाओं के अनुभव ही ना रहें, बल्कि हाशिए पर रह रहीं दासियों के भी अनुभव शामिल किए जाएँ॥ इस प्रकार प्राचीन भारत में महिलाओं के विभिन्न रूपों को विभिन्न स्रोतों के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया॥

1.4.4.1 वैदिक, बौद्ध, जैन धर्मों में महिलाओं की स्थिति पर प्रमुख स्त्रीवादी शोध

डॉ. स्वाती और डॉ. जावेद द्वारा प्रकाशित छोटी सी पुस्तिका "Women in Early India" में स्त्रीवादी इतिहास से संबंधित कई शोध को एक साथ लेकर उस दौर की महिलाओं की प्रमुख चुनौतियों को सामने लाने की कोशिश की गई है। इस पुस्तिका में प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति को देखने के लिए हिंसा, संपत्ति और शिक्षा जैसे मुद्दों को केंद्र में रखा गया, ताकि पता चल सके कि महिलाओं के जीवन में इनकी क्या उपस्थिति थी। हिंसा के अंतर्गत उन्होंने महिलाओं के जीवन में घरेलू हिंसा और सार्वजनिक हिंसा को विभिन्न स्रोतों के माध्यम से रखा। डॉ. कुमकुम रॉय द्वारा वात्स्यायन के कामसूत्र पर किए गए शोध "कामसूत्र पर नई रोशनी" (Unrevealing the kamsutra) के माध्यम से हम घरेलू जीवन और पति पत्नी के बीच यौन संबंधो में हिंसा को भी देख सकते हैं। कामसूत्र में पति को संभोग के समय अपनी पत्नी को पीटने की कई प्रकार की विधियाँ बतायी गई हैं, पर स्त्री सिर्फ सीत्कार ही कर सकती है। हिंसा के प्रति उसका किसी प्रकार का विरोध संभोग क्रिया की अनिवार्यता के रूप में देखा गया है न कि उस स्त्री की तकलीफ के रूप में (रॉय, कामसूत्र पर नई रोशनी, 2008)। घर के बाहर महिलाओं के ऊपर हिंसा के भी बड़े उदाहरण हम रामायण और महाभारत में भी महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा, बलात्कार, अपहरण, सती, घर से निकाले जाने आदि को देख सकते हैं। शिक्षा को लेकर भी यह सवाल उठाया जाता है कि ठीक है कुछ महिलाएँ शिक्षित थीं, लेकिन क्या बाकी महिलाओं की शिक्षा के लिए कहीं किसी गुरुकुल की जानकरी मिलती है? अगर शिक्षा की परंपरा थी, तो ऋग्वेद में महिलाओं द्वारा रचित सूक्तों की संख्या पुरुषों द्वारा रचित सूक्तों की संख्या से कम क्यों है? मनुस्मृति में यह क्यों कहा गया कि विवाह ही महिलाओं की शिक्षा का विकल्प है (Joshi s. , 2001, p. 21)। वैदिक शिक्षा से महिलाओं और शूद्रों को वंचित रखने के प्रयास क्यों किए गए ? संपत्ति के बारे में भी हम देख सकते हैं कि महिलाओं की संपत्ति जिसे स्त्री धन कहा जाता था, वह सिर्फ कपड़ों, गहनों और छोटे मोटे तोहफों तक ही सीमित थी। जमीन पर अधिकार उनके पास नहीं था। सिर्फ उच्च वर्गीय महिलाओं के पास ही अपनी संपत्ति जमीन के रूप में रखने और उसे खर्च करने का अधिकार रहा है। श्रमिकों के रूप में महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी रही है। वे खेती से लेकर डेयरी, पशु पालन, दाई, घरेलू सेविका, नमक बनाने, मालिन का काम करने, सामान बेचने और राजा की सुरक्षा करने तक के कामों में संलग्न रहीं हैं (Ramaswami, 1999)। विजय रामास्वामी ने महिलाओं के श्रम के विविध रूपों को तमिल के संगम साहित्य के अध्ययन के माध्यम से सामने प्रस्तुत किया। हम यहाँ देख सकते हैं कि महिलाओं की श्रम में भागीदारी तो काफी रही, पर उन्हें संपत्ति पर अधिकार नहीं मिला। खासतौर पर अचल संपत्ति पर तो न के बराबर। संपत्ति के लिए प्रार्थना भी अधिकांशतः पुरुष ही कर सकता था। महिलाएँ स्वयं एक संपत्ति के रूप में देखी जाती रहीं। कन्यादान जैसी परंपराओं से समझ सकते हैं कि महिलाओं को तोहफे में देने का प्रचलन रहा है। कुमकुम रॉय ने शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कथा का जिक्र किया है, जिसमें च्यवन ऋषि के गुस्से को शांत करने के लिए सुकन्या के पिता ने उसे ऋषि को दान कर दिया। कन्यादान पर आधारित विवाह श्रेष्ठ माने जाते थे। औरत को संपत्ति इसलिए माना जाता था क्योंकि वह सन्तान उत्पन्न कर सकती थी। अतः अपने उत्तराधिकारी को पैदा करने और उस पर अपना अधिकार बनाए रखने के लिए इस तरह की मान्यताओं को मजबूत किया गया, जिसमें महिलाओं के गर्भधारण की क्षमता को नकार कर उसे पुरुषों द्वारा प्रदत्त अवसर कहा जा सके। मासिक धर्म, प्रजनन आदि को दूषित माना गया। जीवन के हर महत्वपूर्ण पहलू को शामिल कर ऐसे संस्कार विकसित किए गए, जिनमें पुरुषों की प्रधानता ही दिखाई पड़े। कुमकुम रॉय बताती हैं कि गर्भाधान से पहले पुंसवन नामक संस्कार होता है, जिसमें पुरुष स्त्री के

कान में पुत्र उत्पत्ति के मंत्रों को दोहराता है। पुत्र को द्विज (दूसरा जन्म) उसके उपनयन संस्कार के बाद ही कहा जाता है, जो कि उसके गुरु द्वारा किया जाता है। माना जाता है कि जो जीवन उसे माँ से मिला वह अपवित्र था और उपनयन के बाद ही उसे पवित्रता हासिल हुई है, जो कि उसके गुरु (पुरुष) ने प्रदान की है। पारिवारिक अनुष्ठान भी पुरुषों द्वारा किए जाते थे। कभी कभी पत्नियाँ भी सहयोग करती थीं लेकिन बिना पति के उन्हें अनुष्ठान का अधिकार नहीं था। देवियों को अर्पित करने वाली बलियाँ भी देवताओं की बलि के नीचे ही रखी जाती थी, ताकि पुरुषों के अनुसरण को धार्मिक आदेश के रूप में मजबूती से स्थापित किया जा सके। पत्नी के पतिव्रता धर्म को खासतौर पर केंद्र में रखा गया और उसकी प्रमुख जिम्मेदारी में शामिल किया गया । स्त्रियों को ऐसी वस्तु के रूप में भी दर्शाया गया, जिसकी रक्षा करनी आवश्यक है या सुरक्षा परिवार, समुदाय और धर्म के लिए अति आवश्यक मानी गई। पत्नी द्वारा पतिव्रता धर्म का पालन ना करने पर जहाँ उसका पति या परिवार उसके साथ हिंसा कर सकता है, वहीं राज्य को भी यह अधिकार था कि वह महिलाओं पर क्रूरतम हिंसा कर सके। (रॉय, 2001)। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं थी। सिर्फ कुछ ही महिलाएँ थीं, जिन्हें कुछ सुविधाएँ प्राप्त थी, अन्यथा महिलाएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार और गुलाम के रूप में ही सीमित थी।

बौद्ध धर्म में इसे थोड़ी अलग स्थिति रही। डॉ. उमा चक्रवर्ती का इस विषय पर विस्तृत कार्य है। संघ में महिलाओं का शामिल होना एक बड़ी घटना थी, जिससें महिलाओं को ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश कराया। पहले महिलाओं को संघ में आने और भिक्षुणी बनने का अधिकार नहीं था, पर प्रजापति गौतमी के प्रयास के फलस्वरूप गौतम बुद्ध ने महिलाओं को संघ में स्थान दिया। संघ में ज्ञान की खोज करते हुए जो महिलाओं के अपने अनुभव रहे उसे थेरी गाथा के रूप में संकलित किया गया। यह पूरे विश्व में महिलाओं की रचनाओं का पहला संकलन था। भिक्षुणियों में उच्च वर्गीय महिलाओं की संख्या ज्यादा थी, लेकिन उसमे तवायफें और दासियाँ भी शामिल थीं। इस प्रकार से हमें थेरी गाथा में विभिन्न सामाजिक श्रेणियों से आयी महिलाओं के जीवन अनुभव की विविधता से हमारी पहचान होती है। यहाँ उमा चक्रवर्ती कुछ मुख्य बातों की ओर हमारा ध्यान खींचती हैं। वे बताती हैं कि महिलाओं की स्थिति बौद्ध काल में काफी अच्छी थी, लेकिन फिर भी एक पितृसत्तात्मक दबाव हमेशा उनके ऊपर काम करता रहा। वे इसके लिए कई उदाहरण देती हैं जैसे वह बताती हैं कि भिक्षुणियों और गणिकाओं का समाज में सम्मान होने के बाद भी एक बड़े परिवार में रहने वाली कई बच्चों की माँ विशाखा मिगारमाता को सबसे ज्यादा सम्मान प्राप्त होता है । संघ में भिक्षुणियों की स्थिति भी भिक्षुओं के समक्ष भी दोयम दर्जे की थी। इशी दासी नामक कन्या अपने जीवन में लगातार पारिवारिक और सामाजिक हिंसा की शिकार रही (Chakravarti)। जातक कथाओं में कई कथाएँ हमें ऐसी मिलती हैं, जो महिलाओं के रोजमर्रा के जीवन में हिंसा की उपस्थिति को दर्शाती हैं। कई कथाएँ ऐसी भी मिलती हैं, जो श्रमिक महिलाओं या दासियों की विद्वता के बारे में भी होती हैं। पुन्ना दासी की कहानी को हम देख सकते हैं, जिसमें वह एक ब्राहमण के सामने बेहद तर्कपूर्ण सवाल खड़े का देती है (देखें जाती समाज में पितृसत्ता)। महिलाओं के ज्ञान प्राप्ति पर सवाल उठाने वाली मार और भिक्षुणी की कथा भी ले सकते हैं, जिसमें जब वह तप कर रही थी, तो मारने उसके ज्ञान प्राप्त करने पर प्रश्न चिह्न लगाया कि स्त्री होकर वह ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकती है? इस पर उस भिक्षुणी ने जवाब दिया कि मैं स्त्री हूँ, लेकिन मैं वह कार्य कर रही हूँ, जो पुरुषों का अधिकार क्षेत्र रहा है, तो महोदय पहले आप यह निर्धारित कर लें कि आप किससे बात कर रहे हैं, एक पुरुष से या एक स्त्री से (चक्रवर्ती, इतिहास निर्माण में विवादी स्वर, 2006)? इस तरह हम देख सकते हैं कि महिलाओं की

ज्ञान में सहभागिता पर सवाल भी खड़े किए जा रहे थे और महिलाएँ भी उन सवालों का जवाब पूरे आत्मविश्वास से दे रहीं थीं।

1.4.4.2 रामायण, महाभारत की महिलाएँ

रामायण और महाभारत प्राचीन भारत के दो बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ रहे हैं। इनमें वर्णित पात्रों और घटनाओं की धार्मिक महत्ता बहुत ज्यादा है। इन ग्रंथों के माध्यम से हम उस समय की सामाजिक व्यवस्था और महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया जान सकते हैं। रामायण के प्रमुख स्त्री पात्रों में सीता, मंथरा, कैकेयी, कौशल्या, उर्मिला, सूर्पनखा, मंदोदरी, ताड़का आदि महिलाएँ अपने जीवन में किसी न किसी रूप में पुरुषों की हिंसा का सामना करती हैं। यही हाल महाभारत की महिलाओं का भी है। अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका, कुंती, गांधारी द्रौपदी, के अतिरिक्त अन्य कथाओं में आई शकुंतला, माधवी, दमयंती आदि भी निजी और सार्वजनिक हिंसा से बच नहीं सकी हैं। इन दोनों ही कथाओं में हमारा सामना पितृसत्ता, जातीय एवं वर्गीय प्रभावों से होता है, जो हमें बताता है कि वर्ग और जाति का पितृसत्ता के साथ गठजोड़ कैसे होता है। ये महिलाएँ लगातार किसी न किसी स्तर पर सत्ता व्यवस्था से संघर्ष करते रहीं, उससे टकराती रहीं। महिलाओं के साथ छेड़छाड़, उनका अपहरण, सती होना, घरेलू हिंसा, महिलाओं का वस्तुकरण, पति द्वारा त्याग, जबरन नियोग, यौन हिंसा, समाज में दोयम दर्जे का स्थान ऐसे बहुत सारी घटनाओं के प्रमाण हमें इन महिलाओं के जीवन में मिलते हैं। इन घटनाओं को देखते हुए यह कहना बहुत मुश्किल है कि इस दौर की महिलाओं की स्थिति बड़ी बेहतर होगी। जिस समाज में महिलाओं पर इतने अलग अलग प्रकार की हिंसा हो, उसे महिलाओं की दृष्टि से बेहतर कहना उचित नहीं होगा। नवनीता देवसेन की " सीता से शुरू", Satyavati :The Matriarch, Amba, भीष्म साहनी की माधवी, रोमिला थापर की पुस्तक शकुंतला आदि में इन चरित्रों को उनके सामाजिक, आर्थिक परिवेश से जोड़कर उनके जीवन में आयी शोषण और अधीनता की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

1.4.4.3 प्राचीन काल में महिलाओं के समक्ष चुनौतियाँ

हम देख सकते हैं कि प्राचीन काल में महिलाओं की स्वर्णिम स्थिति एक भ्रम से अधिक कुछ नहीं थी। अगर यह स्वर्णिम थी, भी तो समाज की किसी एक श्रेणी के लिए ही। ज्यादातर महिलाएँ हाशिए पर ही थीं। उनके सामने शिक्षा की अनुपलब्धता, संपत्ति के अधिकार का अभाव, स्त्री धन में अचल संपत्ति का न होना, निजी एवं सार्वजनिक जीवन में हिंसा की बहुतायता, युद्ध में सबसे ज्यादा लूटपाट का शिकार होना, उन्हें वस्तु के सामान लिया और दिया जाना जैसी तमाम चुनौतियाँ थीं, जिनसे वे बहुत चाहकर भी निपट नहीं पा रहीं थीं। संपत्ति के संदर्भ में मंगल कनि (हल्दी के खेत) जैसी कुछ सीमित सुविधाएँ थीं, जो दक्षिण भारत के कुछ इलाकों में थीं, बाकी स्त्रियाँ जमीन के अधिकार के बगैर ही थीं। संपत्ति में उनकी सीमित भागीदारी थी, जिसके कारण सती जैसी प्रथाओं को भी मजबूती मिली। घर परिवार के प्रमुख संस्कारों में भी उनकी दोयम दर्जे की ही स्थिति थी। लोगों की कामना पुत्र पैदा करने की ही होती थी, ताकि उसके हाथों अंतिम संस्कार कराके उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सके। महिलाओं के पास ये विशेषाधिकार नहीं थे। यह तो उच्च वर्गीय उच्च जातीय स्त्रियों की स्थिति रही, निम्न जातीय स्त्रियाँ भी इन सारी चीज़ों से महरूम थीं। उनकी श्रम में बड़ी सहभागिता होती थी, पर उस श्रम की उपज पर उनका अधिकार नहीं हो पाता था। उन पर उच्च जातीय स्त्रियों की हिंसा भी होती थी। वे दोहरे शोषण का शिकार थी। बौद्ध काल में कुछ उदाहरण मिलते हैं, जो उनके ज्ञान और अनुभव को सम्मान प्रदान करते हैं।

इस प्रकार संपत्ति, शिक्षा और सांस्कृतिक महत्ता के अभाव में महिलाएँ पुरुषों पर पूरी तरह निर्भर थीं। इसलिए वे हिंसा की भी ज्यादा शिकार थीं क्योंकि उनके पास खुद को सुरक्षित रख पाने या सम्मानजनित जीवन जीने के दूसरे विकल्पों का अभाव था। वे समुदाय का सामान थीं, अतः सबसे ज्यादा नियंत्रण और हिंसा उन्हीं पर की जाती थी।

1.4.4. प्राचीन काल में स्त्रियाँ

मध्यकाल एक ऐसा काल रहा, जिसमें हिंदू संस्कृति के साथ एक नयी मुग़ल संस्कृति जुडी। रजिया सुलतान, नूरजहाँ, मुमताज महल जैसे कुछ इने गिने नाम मध्यकालीन इतिहास में महिलाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, वो भी बहुत सीमित दायरे में। इन महिलाओं पर भी विस्तृत जानकारी या शोध का अभाव था। मध्यकाल को समझने के लिए स्त्रीवादी इतिहासकारों ने जहाँ मुगल महिलाओं के जीवन के आधार पर समझाने की शुरुआत की, वहीं भक्ति आंदोलन के माध्यम से भी पितृसत्ता के समक्ष स्त्रियों द्वारा खड़ी की गई चुनौतियों के अध्ययन के क्षेत्र में आगे बढ़े। मध्यकाल इसलिए ख़ास है, क्योंकि इस दौर में वर्चस्वशाली और शोषणकारी शक्तियों के खिलाफ साधारण जनता के विद्रोह के बड़े प्रमाण मिलते हैं। ये विद्रोह सामंतवादी मूल्यों, जाति प्रथा, और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध किए गए। भक्ति आंदोलन ने इसमें अपनी अग्रणी भूमिका निभाई। इस दौर में महिलाओं की आवाज के सशक्त स्वर हमें सुनने को मिलते हैं। उन स्वरों की कुछ सीमाएँ भी रहीं हैं, लेकिन इस युग को सिर्फ महिलाओं के शोषण का काल ही नहीं बल्कि उसके प्रतिकार के प्रारंभ का काल भी माना जाना चाहिए।

1.4.5.1 मध्य काल में स्त्रियों की स्थिति को लेकर भ्रम

मध्यकाल स्त्रियों के लिहाज से ऐसा समय माना जाता है, जिसमें महिलाओं के ऊपर सबसे ज्यादा अत्याचार होने की बात कही जाती है। प्राचीन काल की तथाकथित महिलाओं के लिए स्वर्णिम युग वाली संस्कृति के नष्ट होने और महिलाओं के ऊपर बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा का प्रारंभ होने जैसी कुप्रथाओं के बढ़ने के लिए इतिहास में इसी काल को दोष दिया जाता रहा है। इसका कारण बताया जाता है, भारत में मुस्लिमों का आगमन और हिंदू स्त्रियों को जबरन अपनाने या अपमानित करने की धारणा, ताकि हिंदूओंको नीचा दिखाया जा सके। अपने आलेख 'आल्टेकेरियन अवधारणा के परे' में इस मानसिकता के संबंधमें शकुंतला राव शास्त्री के विचार प्रस्तुत करती हैं।

"दसवीं और ग्यारहवीं सदियाँ हमारे देश में मुसलमानों के आगमन की साक्षी रही हैं। जिन्होंने बाद में यहाँ अपने पैर मजबूती से जमा लिए। जब हिंदू संस्कृति का एक ऐसी संस्कृति से टकराव हुआ, जो एकदम भिन्न थी तो समाज के अगुआओं ने अपने हितों, विशेषकर महिलाओं की स्थिति की सुरक्षा के लिए नियम- क़ानून बनाना शुरू कर दिए। उन (महिलाओं) पर गहरी बंदिशें लगा दी गईं। इस काल में हम बाल विवाह की जड़ें पूरी तरह जमाते हुए देखते हैं। शैतानी हाथों में पड़कर अपनी दुर्गति करवाने के बजाय विधवा का मर जाना ही बेहतर था। इसलिए विधवा द्वारा आत्मदाह को कानूनी मान्यता दे दी गई, जिसमें आशा की जाती थी कि इस प्रकार उस दुर्भाग्यशाली पीड़ित महिला को स्वर्गिक वैभव की प्राप्ति होगी। यह और ऐसे कई प्रावधान लागू कर दिए गए, जिनसे महिलाओं की स्वतंत्रता पर काफी बदिशें लग गईं। ऐसा संभवतः उन्हें विदेशियों से बचाने और नस्ल की शुद्धता बनाए रखने के लिए किया गया था" (चक्रवर्ती, अल्टेकेरियन अवधारणा के परे , 2001)।

इसी आलेख में उमा जी आर। सी। दत्त जो कि एक प्रख्यात राष्ट्रवादी इतिहासकार हैं, के विचारों को भी प्रस्तुत करती हैं। आर.सी. दत्त कहते हैं।

"महिलाओं को पूरी तरह अलग-अलग रखना और उन पर पाबंदियाँ लगाना हिंदू परंपरा नहीं था । मुसलमानों के आने तक यह बातें बिलकुल अजनबी थीं...महिलाओं को ऐसी श्रेष्ठ स्थिति हिंदूओं के अलावा और किसी प्राचीन राष्ट्र में नहीं दी गई थी (चक्रवर्ती, अल्टेकेरियन अवधारणा के परे , 2001)।

इन दोनों के बयान सामने रखकर उमा जी मुस्लिमों के आगमन और उनके बसने को लेकर कितना नकारात्मक भाव है, उसे सामने रखने की कोशिश करती हैं। साथ ही वह यह भी बताती हैं कि महिलाओं से जुड़ी सभी समस्याओं की जड़ में मुस्लिम आगमन को ही वजह माना जाता है, जबकि महिलाओं से जुडी तमाम कुप्रथाओं, हिंसाओं एवं दोयम दर्जेके व्यवहार का प्रचलन प्राचीन काल में भी देखे जा सकते है, जिसके बारे में हम ऊपर बात कर चुके हैं। इसका सिर्फ मुगलों के आक्रमण से ही संबंध नहीं है। आगे इस काल में हम महिलाओं की स्थिति के बारे में विस्तार से बात करेंगे।

1.4.5.2 मुगल स्त्रियाँ

मुग़ल स्त्रियों के जीवन के बारे में इरफान हबीब दो किस्म की श्रेणियाँ बनाते हैं। पहली श्रेणी में निम्न वर्ग की मुस्लिम महिलाएँ रखीं हैं। इन मुस्लिम महिलाओं की श्रम में बड़ी भागीदारी थी। इरफान हबीब अमीर खुसरो के माध्यम से बताते हैं कि कताई में महिलाओं की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका थी कि सुई और तकली को उनके धनुष बाण की संज्ञा दी गई। कपड़ा उद्योग में खासतौर पर रंगाई, छपाई, कढ़ाई में महिलाओं की बड़ी भूमिका रही। शीरीं मुसवी ने "मुगलकालीन भारत में स्त्री श्रम" पर अध्ययन किया है। इरफान साहब अलाउद्दीन खिलजी के वेतन नियमों के माध्यम से महिलाओं को उनके श्रम के बदले पुरुषों से कम वेतन मिलने की बात भी बताते हैं। पुरुष दास को जहाँ 10-15 टका तक मिलते थे, वहीं महिलाओं को 5-12 टका मिलते थे। वे सूफी शेख अहमद सरहिंदी के विचार भी रखते हैं। सूफी शेख घोषणा करते हैं कि खुदा ने मर्द पर मेहरबानी की है, इसलिए उसे चार शादियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। वह तलाक द्वारा स्त्रियाँ बदल सकता है और कितनी ही रखैलें रख सकता है। खुदा ने स्त्रियों को सौंदर्य भी इसलिए बख्शा है कि पुरुष उसका उपभोग कर सके। बादशाह जहाँगीर के सलाहकार भी उसे यह सलाह देते हैं कि "बेटियों की मौत पर शोक मत करो। स्त्रियों की सलाह मत मानो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुग़ल स्त्रियों के श्रम के शोषण और उच्च वर्गीय स्त्रियों के लिए भी दोयम दर्जे को ही देखते हैं। दूसरी ओर हमें उच्च वर्गीय स्त्रियों में शिक्षा को लेकर लगाव और परिवार द्वारा उन्हें इसकी सहूलियत दिए जाने के प्रमाण भी मिलते हैं।बादशाह हुमाँयू (1530-36) की बहन मुग़ल शहजादी गुलबदन बेगम शिक्षित थी और उसने हुमाँयू के जीवन चरित को भी लिखा। बादशाह जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ का जिक्र करना भी महत्वपूर्ण है। नूरजहाँ एक शिक्षित, कला प्रेमी, वास्तुशिल्पकार और बेहतर फैशन की जानकार थीं। आगरा में बना एत्माद्दौला का मकबरा जो नूरजहाँ ने अपने पिता की याद में बनाया था, वास्तुशिल्प का वह एक अद्भुत नमूना है। नूरजहाँ राजनीति में इतनी निपुण थीं कि बादशाह ने उन्हें अपने राज्य की पूरी जिम्मेदार सौंप दी थी। मध्यकाल में ही अकबर के द्वारा हिंदूओं में सती प्रथा को रुकवाने के लिए बड़े प्रयास भी किए गए। यह आदेश 1583 ई. से पूर्व आया था। अकबर का मत था कि कमजोर होने के नाते स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में पैतृक संपत्ति का बड़ा भाग मिलना चाहिए। अकबर ने यह भी न्याय संगत नहीं माना कि यदि किसी परिवार में सिर्फ लड़कियाँ ही हों तो वहाँ अन्य पुरुष विरासत के दावेदार माने जाएँ। अकबर ने 14 वर्ष से कम आयु की लड़कियों से विवाह प्रतिबंधित किया था, जो कि हिंदूओं पर भी लागू था (हबीब इ. , 2002)। इरफान साहब ने अपने इस आलेख में मध्यकाल में महिलाओं के जीवन की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिसमें श्रम, विवाह, तलाक, शिक्षा, संपत्ति जैसे तमाम मुद्दों को शामिल किया गया है। रजिया सुल्तान जैसी

शासक के बारे में भी हमें इतिहास में सीमित जानकारी मिल जाती है, जो हमें बताती है कि उसके दरबारियों को उसकी अधीनता स्वीकार्य नहीं थी और वे किसी न किसी बहाने रजिया को सत्ता से हटाना चाहते थे। दिल्ली में स्थित रज़िया के उपेक्षित मकबरे से भी हमें पता चल सकता है कि शासिका के रूप में महिलाओं की कोई विशेष स्वीकार्यता नहीं थी।

1.4.5.3 भक्त कवियित्रियाँ

मध्यकाल में महिलाओं की स्थितियों के मूल्यांकन के लिए भक्ति आंदोलन और भक्त कवियित्रियों का जीवन हमारे समक्ष कई स्थितियों को रखता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल को मुगलों के भारत में आगमन और उनके जुल्मों से उपजी निराशा के कारण एक आसरे की तलाश के रूप में देखते हैं, वहीं रामविलास शर्मा ने इस काल को समाज में फैली कूप मंडूकता, जाति व्यवस्था, सामंती मूल्यों के माध्यम से लोगों के शोषण करने वाली मान्यताओं के विरुद्ध प्रतिकार के आंदोलन के रूप में देखा। भक्ति आंदोलन को पित्रसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध के काल के रूप में भी स्त्रीवादियों द्वारा देखा गया। भक्त कवियित्रियों ने अपनी रचनाओं में कई स्तरों पर पितृसत्तात्मक का मुखर विरोध किया। तमिलनाडु की आंडाल, कर्नाटक की अक्कमहादेवी, कश्मीर की ललद्यद, राजस्थान की मीरा और महाराष्ट्र की मुक्ता बाई, जना बाई, बहिना बाई का नाम इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण है। इन सभी के जीवन की कथा काफी संघर्षपूर्ण रही है। ईश्वर के साथ प्रेम प्रकट करने के माध्यम से जहाँ इन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन का विस्तार किया, वहीं स्त्री पुरुष प्रेम संबंधों को भी पुनर्व्याख्यायित किया, जो समतामूलक संबंधों पर आधारित थे। पर इनके लिए इन संबंधों की व्याख्या करना इतना आसान भी नहीं रहा। परिवार से लेकर समाज तक लगातार ये विभिन्न प्रकार की हिंसाओं का सामना करती रहीं। रामविलास शर्मा अपने आलेख भक्ति का अखिल भारतीय प्रसार में आंडाल, अक्कामहादेवी, मीरा और ललद्यद के जीवन और रचनाओं पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। कश्मीर की ललद्यद लगातार अपनी सास की प्रताड़ना सहती रहीं। ललद्यद के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी जान बचाने के लिए एक धधकते तंदूर में छुप गईं पर उनका बाल भी बांका नहीं हुआ। उनके परिवार ने उन पर कई प्रकार के बंधन लगाने का प्रयास किया। बंधनों के विरोध में उन्होंने अपने वस्त्र त्याग दिए। लोगों को लगा कि वे पागल हो चुकी हैं। लेकिन वे अपने विचारों को कविताओं में पिरोती रहीं, जिन्हें 'वाख' भी कहा जाता है। अक्का महादेवी एक बहुत ही सुंदर महिला थीं। कौशिक नरेश उन्हें बहुत चाहते थे और उनसे विवाह करना चाहते थे। पर वे अपने इष्ट चेन्निमल्लिकार्जुन के प्रति समर्पित थीं और विवाह की इच्छुक नहीं थीं। काफी दबाव में उन्होंने विवाह के लिए हामी तो भर दी, पर राजा से शारीरिक संपर्क की मनाही कर दी। एक बार राजा ने उनके साथ जबरदस्ती करने का प्रयास किया तो उन्होंने अपने वस्त्र त्याग दिए। उनका मानना था कि अगर वे अपने घर में ही सुरक्षित नहीं हैं, तो वस्त्रों की भी क्या आवश्यकता। वे जंगलों में भटकती रहीं और लगातार अपने रचनाओं को भी लिखती रहीं। दोनों ने ही वस्त्र त्याग को एक प्रतिरोध का जरिया बनाया। मीरा का जीवन भी पितृसत्ता के विरोध का बड़ा प्रतीक रहा है। उनका विवाह राजा भोज से एक राजनैतिक संधि के रूप में किया गया, लेकिन वे कृष्ण को बचपन से ही अपना पति मान चुकी थीं और किसी भी रूप में वे किसी और के साथ अपना जीवन यापन नहीं करना चाहतीं थीं। विवाह के पश्चात् उन्होंने अपनी भावनाओं से ससुरालीजनों को अवगत कराया, जिससे वे सभी काफी नाराज हुए। परिवार ने उन्हें कुलनाशिनी कहा। राजा की मृत्यु के बाद उन्होंने सती होने से इनकार कर दिया.. उनका मानना था कि जब वे कृष्ण को अपने पति रूप में मान चुकी हैं, तो किसी और पुरुष की मृत्यु पर वे सती क्यों हों? मीरा ने रैदास को अपना गुरु माना और राजमहल से

निकलकर अलग-अलग जगहों पर संतों की स्थली के साथ भ्रमण करने लगीं। वे अपने पदों को गाती थीं, नाचती थीं। वे अपने पदों में परिवार द्वारा होने वाले अत्याचारों और निरीह लोगों पर होने वाले सामंती अत्याचारों को अपने पदों में शामिल करतीं। मीरा को पूजने वालों में एक बड़ा वंचित तबका था, जिसे अपने कष्टों की अभिव्यक्ति मीरा के पदों में मिलती। यह राजपूत परिवारों को बहुत अपमानजनक लगता था। मीरा को रोकने के लिए जहरीला नाग उन्हें डसने भेजा। मीरा को विषपान करने के लिए विवश किया गया। पर मीरा का बाल भी बांका नहीं हुआ। मीरा ने घर त्याग दिया। बाद में मीरा को घर वापस बुलाने के लिए ब्राह्मण वृन्दावन भेजे गए। उन्होंने मीरा को ले जाने के लिए अनशन प्रारंभ कर दिया। मीरा ब्रह्म हत्या का पाप नहीं लेना चाहती थीं। अतः वापस जाने के लिए हामी भर दी। आख़िरी विदाई देने कृष्ण मंदिर गईं। कहा जाता है कि वहीं वे कृष्ण की प्रतिमा में समा गईं। कुछ ऐसा ही अंत आंडाल का भी हुआ था।उनके लिए भी कहा जाता है कि वे भी विष्णु की प्रतिमा में लोप हो गईं (शर्मा, 2006)। जना बाई, मुक्ताबाई के घर काम करती थीं। कृष्ण की भक्ति उन्होंने सखा भाव के साथ की। कृष्ण में एक ऐसे साथी को ढूँढा, जो उनके हर सुख-दुःख में साथ है और रोजमर्रा के कामों में उनका हाथ भी बंटा रहा है।कृष्ण उनके साथ बर्तन भी साफ करते हैं और जुएँ भी निकाल देते हैं (Tharu & Lalita, 1991)। इस तरह से हम भक्त कवियित्रिओं की इच्छाओं को भी देख सकते हैं, वे किस तरह के संबंध अपने आस-पास के लोगों से चाहती हैं और किसी भी तरह के दबाव और जबरदस्ती अपने ऊपर सहने के लिए तैयार नहीं हैं। भक्ति काल ऐसा काल रहा है, जिसमें हाशिए के लोगों ने सबसे मुखर आवाज सामाजिक बदलाव को लेकर उठायी है। सारी रचनाएँ उन्होंने अपनी मातृ भाषा में कीं तथा ईश्वर को किसी अलौकिक सत्ता के रूप में न देख कर अपने सखा, मित्र, प्रेमी के रूप में देखा। उन्हें आसमान से उतारकर अपने पास बिठा लिया। सामंतवाद, जातिवाद और पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियों के लिए यह बड़ा प्रतिरोध है। इस काल का यह भी एक सत्य रहा है कि यह प्रतिरोध पित्रसत्तात्मक मान्यताओं के भीतर ही किया गया है। भक्त कवियित्रियों की रचनाओं में कई प्रतीक जैसे सुहागन, सती, लज्जा, पतिव्रता आदि का भी प्रयोग किया गया है। वे स्वयं को एक पतिव्रता स्त्री के ही खांचे में रखकर सारी पारंपरिक भूमिकाओं को अपने आराध्य देवता के लिए अपनाना चाहती हैं। इस तरह वे कई बार पितृसत्ता का विरोध करते हुए भी उसके मजबूत करने का भी काम करती हैं। यह हम उनकी सीमा मान सकते हैं। पर फिर भी अपने निर्णय लेना और तमाम दबावों के बाद भी उन पर अडिग रहना, अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करना और स्त्री पुरुष के बीच प्रेम में एक बराबरी के संबंधों के निर्माण की वे बड़ी वकालत करती हैं।

1.4.6. आधुनिक काल में स्त्रियाँ

आधुनिक काल का इतिहास महिलाओं की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा है। स्त्रीवादी इतिहासकारों ने इस दौर का इतिहास लेखन, महिलाओं की विभिन्न भूमिकाओं और योगदानों के कई अलग अलग पहलुओं को शामिल करके किया। महिलाओं की दृष्टि से इतिहास लेखन के लिए आवश्यक स्रोत पर्याप्त मात्रा में ढूँढे गए। काफी स्रोत मिले भी। इन स्रोतों की भाषा से भी इन इतिहासकारों की बेहतर परिचय था। अतः महिलाओं के जीवन से जुड़े पहलू विस्तृत रूप से इतिहास का हिस्सा बन पाए। समाज सुधार आंदोलनों में स्त्री प्रश्न, महिलाओं की शिक्षा में सहभागिता, आजादी के आंदोलनों में महिलाओं की सहभागिता, तवायफों के देश की आजादी को लेकर प्रयास, विभाजन की त्रासदी, दलित, किसान, आदिवासी महिलाओं के संघर्ष, महिला आंदोलनों के माध्यम से सामाजिक

और कानूनी बदलावों के लिए संघर्ष आदि इन सभी मुद्दों पर स्त्रीवादी इतिहासकारों ने अपनी कलम चलाई। इन मुद्दों पर विस्तार से जानकारी नीचे दी जा रही है।

औपनिवेशिक क़ानून, समाज सुधार आंदोलन एवं स्त्री प्रश्न

औपनिवेशिक काल में समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए लोगों में चेतना जगाने के बहुत प्रयास किए। लेकिन उससे पहले ब्रिटिश सरकार द्वारा कई ऐसे क़ानून सामने लाये गए, जिन्होंने समाज सुधार आंदोलन के लिए नींव तैयार करने का काम किया सती निरोध, विधवा पुनर्विवाह, बालविवाह पर रोकथाम, विवाह की आयु ऐसे कई मुद्दों पर क़ानून बने जिनके बार में काफी लेखन किया गया। इतिहासकार सुधीर चंद्रा का रक्माबाई पर बेहद महत्वपूर्ण शोध है, जो बाल विवाह और दांपत्य जीवन के अधिकार क़ानून को स्त्री के जीवन पर नियंत्रण के औजार के रूप में प्रस्तुत करता है (चंद्र, 2012)। समाज सुधारकों में राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर द्वारा उठाए स्त्री प्रश्न तो इतिहास का हिस्सा बने लेकिन "Herstory" में स्त्री प्रश्नों को लेकर महिलाओं का दृष्टिकोण शामिल किया गया, जिसमें पं. रमाबाई, ताराबाई शिंदे, सावित्रीबाई फुले, बेगम रुकैया सखावत हुसैन आदि जैसी स्त्रियाँ प्रमुख रहीं। जहाँ पुरुष महिलाओं के जीवन में कुछ बदलाव से ही संतुष्ट थे, वहीं इन महिलाओं ने 19 वीं सदी के इसी दौर में संरचनात्मक ढाँचे के बीच बसी पितृसत्ता की ओर तीखे शब्दों में बात रखी और ऐसी उत्पीड़नकारी व्यवस्था बदलने की बात की। रुकैया ने तो एक कदम आगे जाकर अपने आलेख 'सुल्ताना का सपना' के माध्यम से एक ऐसे काल्पनिक संसार का भी निर्माण कर लिया, जहाँ शासन महिलाओं के हाथ में है और पुरुष घरेलू जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं (हुसैन, 2011)। स्त्री पुरुष दोनों की स्त्री प्रश्नों के प्रति समझ और बदलाव की पद्धति में जमीन आसमान का फर्क है। स्त्री इतिहास की यह एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

1.4.6.1 महिलाओं की शिक्षा में सहभागिता

महिलाओं की शिक्षा को लेकर इस दौर में काफी गंभीर प्रयास किए गए। जैसा कि हमने देखा की स्त्री शिक्षा समाज सुधार आंदोलन का एक महत्वपूर्ण मुद्दा था। महिलाओं को शिक्षा भद्र पुरुष की भद्र पत्नी बनने के लिए प्रारंभ की गई, ताकि कहीं भारतीय पुरुष अपनी पत्नियों की शिक्षा और आधुनिक रहन-सहन के मामले में ब्रिटिशों से कमतर न मान लिए जाएँ। पुरुषों के आधुनिक होने की महत्वपूर्ण शर्त उनकी पत्नियों की शिक्षा थी। लेकिन सुधारकों को यह भी डर था कि शिक्षा प्राप्त करके भारतीय नारियाँ अपने तथाकथित स्त्रियोचित गुणों जैसे कि पतिव्रता धर्म, रसोई और बच्चों की जिम्मेदारी से विमुख न हो जाएँ, अतः शिक्षा को भी घरेलू बनाया गया और आदर्श भारतीय नारी का बेहतर निर्माण कैसे हो? शिक्षा के माध्यम से यही प्रयास होने लगे। इनसे अलग प्रयास ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले के रहे। उन्होंने महिलाओं को सिर्फ घरेलू नहीं बल्कि विज्ञान, तर्क शास्त्र आदि की शिक्षा की वकालत की और दलित बालिकाओं के साथ अपने स्कूल की नींव डाली। महिलाओं की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम, शिक्षिकाओं की उपलब्धता, भवन, छात्रावास आदि बहुत सारे मुद्दे थे, जिनका इतिहास 19 वीं सदी से आगे तक निर्मित किया गया। वीरभारत तलवार की रस्साकशी एवं मधु किश्वर की आर्यावृत्त की बेटियाँ इस विषय के इतिहासलेखन के महत्वपूर्ण प्रयास हैं (तलवार, 2017) (किश्वर, 2010)।

1.4.6.2 आजादी के आंदोलन में महिलाएँ

आजादी के आंदोलन के इतिहास में बड़े नेताओं, क्रांतिकारियों का समावेश किया गया। लेकिन महिलाओं की इस लड़ाई में किसी भी प्रकार के सहयोग का जिक्र नहीं था। अगर था भी तो कुछ छुटपुट

जिक्र ही शामिल थे । लता सिंह, बद्री नारायण, चारु गुप्ता, राधा कुमार, गेरोल्दीन फ़ोर्ब्स, मालविका कार्लेलकर, मधु किश्वर आदि ने अपने शोध के माध्यम से आजादी के आंदोलन में महिलाओं के योगदान को शामिल किया । इसे भी दो दौर में किया गया। 1857 की लड़ाई में महिलाओं का क्या योगदान रहा और बाद में राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता। 1857 की लड़ाई में खासतौर पर तवायफों के योगदानों पर भी शोध किए गए । कर दाता के रूप में बड़ी संपत्ति रखने वाली तवायफों ने भी आजादी के आंदोलन में न सिर्फ अपनी संपत्ति अर्पण की, वहीं दूसरी ओर महफिलों में शृंगार के गीत छोड़कर देशभक्ति की प्रेरणा वाले गीत गाने का संकल्प लिया । क्रांतिकारियों को अपने कोठों में छुपाने में मदद की । वीणा ओल्डन्बर्ग, डॉ. लता सिंह ने इसे लेकर बहुत महत्वपूर्ण शोध प्रस्तुत किए हैं । 1857 की क्रांति में दलित महिलाओं के योगदान पर भी कई शोध किए गए । चारु गुप्ता का झलकारी देवी पर किया कार्य एवं बदरीनारायण का दलित महिलाओं के 1857 के संघर्ष में योगदान पर किया शोध काफी चर्चित रहे ।

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता को लेकर भी महत्वपूर्ण कार्य किए गए । गांधी जी के विभिन्न आंदोलनों जैसे कि विदेशी कपड़ो की होली जलाना, दांडी यात्रा, घेराव, जेल जाने आदि में बड़ी संख्या में महिलाओं की सहभागिता रही । राष्ट्रीय आंदोलन की तमाम महत्वपूर्ण तस्वीरों में महिलाओं की बड़ी संख्या दिखाई देती है । फोटोग्राफ्स को भी शोध के स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया गया, जिससे महिलाओं की आजादी के आंदोलन में भूमिका को प्रकाश में लाया गया । गांधी का अहिंसक आंदोलन हो, सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज का हिस्सा रानी झांसी रेजीमेंट हो या वामपंथी दलों के प्रयास हों, महिलाएँ अपनी-अपनी राजनीति के तहत हर दल के साथ शामिल रहीं हैं । सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली, दुर्गा भाभी, रानी गिडियालू, कैप्टन लक्ष्मी सहगल, प्रीतिलता वाडेडार जैसे अनेकों नाम हैं, जिन्होंने आजादी के आंदोलन में अपनी जान पर खेलकर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। राधा कुमार, गेरॉल्डिन फोर्ब्स का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य रहा है (कुमार, 2014) (Forbes, 1998) । मालविका कार्लेल्कर ने फोटोग्राफी के माध्यम से आजादी के आंदोलन को इतिहासबद्ध किया है, जो इस काल की महिलाओं की विभिन्न भूमिकाओं को समझने हेतु काफी रोचक प्रयास है (Karlekar, 2005)।

1.4.6.3 महिलाएँ और विभाजन

आजादी का आंदोलन इतिहास का प्रमुख हिस्सा बना लेकिन आजादी मिलने के बाद हुए भारत पाकिस्तान विभाजन का महिलाओं के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा ? यह सवाल आधुनिक इतिहास का हिस्सा नहीं बना । इस विभाजन की त्रासदी पर कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ बहुत लिखी गईं। इतिहास में भी इसे बहुत दर्दनाक और दुखःद घटना के रूप में वर्णित तो किया गया, लेकिन महिलाओं और बच्चों पर इस घटना के पड़ने वाले प्रभाव नदारद रहे । ये बातें अदृश्य थीं । उर्वशी बुटालिया ने मौखिक इतिहास के माध्यम से इस सच से पर्दा हटाने की कोशिश की । विभाजन की शिकार तमाम महिलाओं एवं पुरुषों से लिए लंबे साक्षात्कारों के माध्यम से उन्होंने महिलाओं के शरीर के ऊपर गुज़री विभाजन की विभीषिका को "The Other Side of Silence" (खामोशी के उस पार) पुस्तक के माध्यम से सामने लाया । इस शोध में महिलाओं और लडकियों के ऊपर विभाजन के बाद उनके परिवार वालों द्वारा, खुद के समुदाय द्वारा और दूसरे धर्म के समुदाय द्वारा कीगई बर्बर हिंसा का लेखा जोखा दिया गया है। महिलाओं के साथ बलात्कार, उनका क़त्ल, उनका अपहरण, जबर्दस्ती शादी, बच्चे और बाद में राजनैतिक प्रयासों के माध्यम से उनकी बसी बसायी जिंदगी में से उन्हें निकालकर उनके बच्चों के बगैर

उन्हें वापस उनके मुल्क ले जाना और नई जिंदगी बसाने की बात करना बहुत ही यातानाकारी रहा (बुटालिया, 2002)। बलात्कार से गर्भवती महिलाओं के गर्भ गिराने या उनकी सुरक्षित जचकी कराने और बाद में उन बच्चों को अनाथाश्रम भेज देना ताकि उन महिलाओं का पुनर्विवाह हो सके ऐसी कई बातें थीं, जो इतिहास का हिस्सा नहीं बन पायीं। पर इस शोध के माध्यम से ये बिंदु भी राजनैतिक इतिहास का हिस्सा बने। इस शोध के माध्यम से लोगों के भीतर राजनैतिक फैसलों के महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने का भी नजरिया विकसित हुआ।

1.4.6.4 स्वायत्त महिला आंदोलनों का इतिहास

आधुनिक इतिहास का एक बहुत बड़ा पड़ाव 70-80 के दशक में चले महिला आंदोलन भी रहे। इन आंदोलनों को इतिहास में बड़ी जगह दी गई। आजादी के आंदोलन में महिलाओं के संघर्ष के इतिहास के बाद इन दशकों में स्वायत्त महिला संगठनों से उभरे आंदोलनों को प्रमुख रूप से शामिल किया गया। उसका बड़ा कारण भी रहा। महिलाओं की स्थिति में बड़े बदलाव और उन पर गंभीरतापूर्वक विचार का माहौल इन स्वायत्त महिला संगठनों द्वारा उठाए गए मुद्दों के बाद ही हुआ। 1974 में आई समानता की ओर रिपोर्ट (Towards equality report) के माध्यम से में महिलाओं की अदृश्यता, उनके प्रति शिक्षा, स्वास्थ्य, कामकाज जैसे क्षेत्रों में बढ़ते लैंगिक भेदभाव और उसे लेकर एक सामजिक चुप्पी को कटघरे में खड़ा किया गया। महिलाओं के मुद्दे केंद्र में आए। स्वायत्त महिला संगठनों ने एक ओर महिलाओं की स्थिति पर अपने शोध कार्य भी किए, वहीं महिला आंदोलन को भी खड़ा किया गया। बोधगया आंदोलन और पर्यावरण की सुरक्षा हेतु चिपको आंदोलन, बलात्कार विरोधी आंदोलन, मंहगाई विरोधी आंदोलन, दहेज़ विरोधी आंदोलन, सती प्रथा विरोधी आंदोलन, यौन उत्पीड़न के विरुद्ध आंदोलन आदि के माध्यम से महिलाओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव और पितृसत्ता के विरोध को मुखर किया गया॥ स्वायत्त महिला संगठनों ने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मुद्दे को जोस्शोर से उठाया और उसमें राज्य की भूमिका पर भी सवाल खड़े किए। महिला आंदोलन के प्रयासों से बलात्कार, सती, यौन उत्पीडन आदि को लेकर कानूनों में सुधार भी किए गए और नए क़ानून भी बने। 90 के दशक में भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकता के विरोध के साथ- साथ जाति प्रथा में फ़ैली असमानता को लेकर भी बड़े आंदोलन चले। खासतौर से जाति के मुद्दों को लेकर महिला आंदोलन पर सवर्ण मानसिकता होने के आरोप भी लगे। नॅशनल फ़ेडरेशन ऑफ़ दलित वूमेन जैसे कई संगठन अस्तित्व में आए, जिन्होंने महिला आंदोलन के सवर्ण महिला मुद्दों तक ही केंद्रित रहने की बात की। उनका मानना था कि इस आंदोलन में उनकी आवाज़ शामिल नहीं है। उन संगठनों के माध्यम से महिला आंदोलन का और भी विस्तार संगठन के अलावा मुद्दों को लेकर भी हुआ और जति, वर्ग और जेंडर के अंतर्संबंधों को समझने और शामिल करने पर जोर बढ़ा। स्वायत्त महिला संगठनों की महिलाओं के जीवन में बड़े बदलावों को लाने में अग्रणी भूमिका रही है।

1.4.7. सारांश

सार स्वरूप में हम कह सकते हैं कि इस पूरी इकाई के माध्यम से हम निष्कर्ष में एक जेंडर संवेदनशील इतिहास को प्राप्त करते हैं। इतिहास जिसमें से महिलाओं के अनुभव, उनकी भूमिकाएँ, उनके योगदान गायब थे, या बेहद पितृसत्तात्मक नजरिए के साथ सीमित मात्रा में थे, उसे स्त्रीवादी इतिहासकारों ने बिल्कुल उलट दिया है। विस्तार के साथ महिलाओं के जीवन के अनुभवों, विभिन्न स्थितियों के उनके ऊपर पड़ने वाले प्रभाव, उनके ऊपर होने वाली हिंसा, उस हिंसा का प्रतिकार, उनके भीतर चेतना की

वृद्धि, उनकी बदलती भूमिकाओं और समाज को उनके योगदानों के ज्ञान के माध्यम से एक महत्वपूर्ण स्त्रीवादी इतिहास लिखा गया है। यह इतिहास कोई खंडित ज्ञान नहीं है, बल्कि इस ज्ञान के माध्यम से इतिहास अपने समग्र ज्ञान की ओर आगे बढता है। इस इतिहास की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत एवं स्त्रीवादी शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। तीनों कालों में महिलाओं की स्थितियों के अध्ययन के माध्यम से हमें ज्ञात होता है, कि हर काल में पितृसत्ता का गठजोड़ मजबूती के साथ जाति एवं वर्ग के साथ रहा है। जिससे यह हर काल में अलग अलग रूपों के साथ महिलाओं के जीवन को नियंत्रित करती आई है, लेकिन इसके साथ महिलाओं का प्रतिरोध भी रहा है, जो संघर्ष करके शोषण और दमनकारी स्थितियों में भी अपने लिए स्पेस का निर्माण करता रहा है और समाज को अपना योगदान देता रहा है।

1.4.8. बोध प्रश्न

1. इतिहास निर्माण में किस प्रकार की कमियाँ उपस्थित रहीं?
2. महिलाओं के इतिहास से क्या तात्पर्य है?
3. 19 वीं शती में स्त्री प्रश्नों पर क्या बहस चल रही थी?, स्पष्ट करें।
4. महिलाओं का इतिहास लिखने में किस प्रकार की चुनौतियाँ इतिहासकारों के समक्ष आई?
5. मौखिक इतिहास से क्या तात्पर्य है?
6. क्या वैदिक काल स्त्रियों के लिए स्वर्ण काल था?, अपने विचार प्रस्तुत करें?
7. थेरी गाथा से आप क्या समझते हैं?
8. भक्त कवियित्रियों के लेखन में पितृसत्ता का विरोध किस प्रकार प्रकट हो रहा था?
9. तवायफें कौन थीं?, उन्हें इतिहास में क्यों जगह नहीं दी गई?
10. विभाजन का महिलाओं के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा, स्पष्ट करें?
11. महिला आंदोलन ने किन मुद्दों को प्रमुखता से उठाया?
12. इतिहास में महिलाओं के ऊपर किया गया कौन सा शोध आपको सबसे ज्यादा प्रभावशाली लगा?

1.4.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Agarwal, B. (1996). *A Field Of One's Own*। New Delhi: Cambridge University Press।
2. Chakravarti, U. (n.d.). *The Rise of Buddhism as Experienced by Women.* Retrieved from http://www।manushi-india।org/pdfs_issues/PDF%20files%208/6.%20The%20Rise%20of%20Buddhism।।।।pdf
3. chakravarti, U. (2014).Whatever happened to the Vadic dasi। In K. S. Vaid, *Recasting Women* (pp. 27-87). New Delhi : Zubaan.
4. Chakravarty, U. (n.d.). 'Re'inscribing the past: inserting women into Indian history.
5. Chakravarty, U. (1998). *Rewriting History.* New Delhi: Zuban.

6. D।D।Kosambi. (1999). Urvasi and Pururavas. In K. Roy, *Women in Early Indian Socities* (pp। 257-285). New Delhi: Manohar.
7. Dr।Swati Joshi, D. M. (2001). *"Women" in Early Indial* Delhi: Delhi University Forum For Democracy.
8. E।H।Carr. (1961). *What is History?* London: Penguin Books.
9. Forbes, G. (1998). *Women in Modern India.* Cambridge: The Press Syndicate of the University of Cambridge.
10. Javed, D. S. (2003). *Women in ancient India.* New Delhi: PUDR।
11. Joshi, s. (2001). *Women in Early Indial* New Delhi: Delhi University Forum for democracy.
12. Joshi, S. (2001). *Women in Early Indial* New Delhi: Delhi University Forum for Democracy.
13. Karlekar, M. (2005). *Visualizing Indian Women: A Documentary(1875-1947).* OUP.
14. Kumkum, R. (1999). *Women in Early Indian Societies.* New Delhi: Manohar.
15. Nevile, P. (2009). *Nautch Girls Of The Raj.* New Delhi: Penguin Books.
16. Ramaswami, V. (1999). Aspects of Women and Work in Early South India. In K. Roy, *Women in Early Indian Socities* (pp. 150-171). New Delhi: Manohar .
17. Ramaswamy, V. (2003). *Re-searching Indian Women.* Delhi: Manohar.
18. Sangari, K., & Vaid, S. (1989). *Recasting Women।* New Delhi: Kali For Women.
19. Tharu, S., & Lalita, K. (1991). *Women Writing in India.* New Delhi: Oxford University Press.
20. Urmila Pawar, M. M. (2008). *We Also Made History.* New Delhi: Zubaan।
21. ऑर्सेनी, फ. (2011). *हिंदी का लोकवृत्त* . नयी दिल्ली: वाणी।
22. किश्वर, म. (2010). आर्यावर्त की बेटियां. In र. अभिज्ञान, & प. भारद्वाज, *जेंडर और शिक्षा भाग 1* (pp। 1-22). नई दिल्ली: निरंतर।
23. कुमार, र. (2014). *स्त्री संघर्ष का इतिहास*. नयी दिल्ली: वाणी।
24. गर्ग, ड. (2014).*स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास*. नयी दिल्ली : सामयिक।
25. चंद्र, स. (2012). *रख्माबाई*. नई दिल्ली: राजकमल।
26. चक्रवर्ती, उ. (2001). अल्टेकेरियन अवधारणा के परे . In स. आर्या, *नारीवादी राजनीति* (pp। 126-136)। नई दिल्ली : केंद्रीय माध्यम निदेशालय।
27. चक्रवर्ती, उ. (2001). अल्टेकेरियनअवधारणाकेपरे:प्रारम्भिक इतिहास में जेंडर संबंधोंकी नई समझ. In स. आ. अन्य, *नारीवादी राजनीति* (pp। 126-136)। नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यांवय निदेशालय।

28. चक्रवर्ती, उ. (2006). इतिहास निर्माण में विवादी स्वर. *जनमत* , 9-15।
29. चक्रवर्ती, उ. (2011). *जाति समाज में पितृसत्ता.* नई दिल्ली: वाणी।
30. चन्द्र, स. (2012). *रख्माबाई: स्त्री अधिकार और कानून*. नयी दिल्ली: राज़कमल।
31. तलवार, व. (2017). *रस्साकशी.* नई दिल्ली: वाणी।
32. बुटालिया, उ. (2002). *खामोशी के उस पार.* नई दिल्ली: वाणी।
33. यादव, र., खेतान, प., & दुबे, अ. (2003)। *पितृसत्ता के नए रुप.* नई दिल्ली: राजकमल।
34. राजे, स. (2012). *इतिहास में स्त्री.* नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।
35. रॉय, क. (2008). कामसूत्र पर नई रोशनी. In म. ई. जॉन, & ज. नायर, *कामसूत्र से कामसूत्र तक* (pp. 37-62). नई दिल्ली: वाणी।
36. रॉय, क. (2001). जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है. In स. आर्या, न. मेनन, & ज. लोकनीता, *नारीवादी राजनीति* (pp.137-154). नई दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।
37. शर्मा, र. (2006). *भारतीय संस्कृति एवं हिंदी प्रदेश-2.* नई दिल्ली: किताब घर।
38. हबीब, इ. (2002). मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्री . In . रावत, *भारतीय इतिहास में मध्यकाल* (pp. 33-43)। नई दिल्ली : ग्रंथशिल्पी।
39. हबीब, इ. (2002). मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्री. In इ. हबीब, *भारतीय इतिहास में मध्यकाल* (pp. 33-43)। नई दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी।
40. हुसैन, र. स. (2011)। सुल्ताना का सपना. In र. भारद्वाज, & प. भारद्वाज, *जेंडर और शिक्षा भाग-2* (pp. 27-40)। नई दिल्ली: निरंतर।

1.4.10 उपयोगी ग्रंथ सूची

संगारी, कुमकुम.(2012). मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति. नई दिल्ली:राजकमल

Mukta,Parita(1997).Upholding the Common Life,New Delhi:Oxford University Press

खंड-2 : मध्यकालीन भारत और स्त्री

इकाई-1 : इस्लाम और स्त्री

इकाई की रूपरेखा

2.1.1. उद्देश्य
2.1.2. प्रस्तावना
2.1.3. इस्लाम और स्त्री : विषय का परिक्षेत्र
2.1.4. स्त्री संबंधी मूल इस्लमिक विचार
2.1.5. इस्लाम में स्त्री का महत्व एवं सम्मान
2.1.6. इस्लाम में स्त्रियों के अधिकार
2.1.6.1. जीने का अधिकार
2.1.6.2. वर चुनने का अधिकार
2.1.6.3. संपत्ति में अधिकार
2.1.6.4. लैंगिक समानता का अधिकार
2.1.7. विषय विस्तार : इस्लाम में स्त्रियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति
2.1.7.1. स्त्री-शिक्षा
2.1.7.2. स्त्री और रोजगार
2.1.7.3. विवाह (निकाह)
2.1.7.4. राजनीति में स्त्री
2.1.7.5. इस्लाम की स्त्री संबंधी पहल
2.1.8. निष्कर्ष
2.1.9. संदर्भ ग्रंथसूची

2.1.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम जान सकेंगे -

1. इस्लाम धर्म में स्त्रियों की स्थिति का आकलन करना।
2. इस्लाम (कुरान और हदीस) में स्त्रियों की स्थिति, उसके लिए नियत कर्तव्यों, उसे प्राप्त अधिकारों इत्यादि के विषय में प्रकट अभिमत का संकलन-आकलन, विवरण। इस्लाम एक विश्वव्यापी धर्म है, जिसके अनुयायी पूरी दुनिया में, प्राय: हर देश में फैले हुए हैं। आम तौर पर इस्लाम में स्त्री की स्थिति को लेकर अनेकानेक भ्रम, भ्रामक, धारणाएँ फैली हुई हैं या फैलाई जाती हैं।

इस इकाई का एक उद्देश्य इन भ्रामक धारणाओं को निर्मूल कर स्त्री-संबंधी इस्लाम धर्म के चिंतन को सामने लाना है।

इस इकाई का एक उद्देश्य इस्लाम में स्त्री को प्राप्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक-सांस्कृतिक अधिकारों एवं कर्तव्यों का विवरण देना है। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, विवाह, परिवार इत्यादि के बीच मुस्लिम स्त्री किन स्थितियों से जूझती है या अधिकारों का अनुभव करती है, यह भी इस इकाई के अंतर्गत देखा जाएगा।

इस इकाई में हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि स्त्री के अधिकारों, अस्मिता, स्वत्व इत्यादि के मामले में इस्लाम ने क्या नई पहल की। इसका तात्पर्य यह है कि इतिहास के क्रम में स्त्री-संबंधी धार्मिक चिंतन में इस्लाम ने क्या नया योगदान किया। अर्थात् स्त्री संबंधी चिंतन के संदर्भ में इस्लाम की मौलिकता क्या थी? इस हेतु हमें अब तक चले आ रहे विभिन्न धर्मों एवं सभ्यताओं, जैसे- हिंदू, यूनान, रोमन इत्यादि में स्त्री संबंधी चिंतन का आकलन करते हुए उसकी तुलना में इस्लाम के नए योगदान को देखना होगा।

इस इकाई का एक उद्देश्य यह भी है कि समय की प्रासंगिकता एवं आवश्यकता के संदर्भ में, स्त्री संबंधी नई चेतना, आंदोलनों, गतिविधियों, नई वैचारिक बहसों, उपलब्धियों इत्यादि में इस्लाम धर्म की मान्यताओं, धारणाओं, व्यवस्थाओं इत्यादि का स्वरूप और इनके बीच के द्वन्द्व का आकलन करना। इससे धार्मिक व्यवस्थाओं की पुनव्याख्या, पुनर्मूल्यांकन तथा परीक्षा भी हो सकेगी।

2.1.2. प्रस्तावना

इस इकाई में इस्लाम की स्त्री-संबंधी वे कौन-सी मान्यताएँ, धारणाएँ, व्यवस्थाएँ इत्यादि हैं, जो एक इस्लामिक स्त्री को उसके अधिकारों, उसकी अस्मिता इत्यादि की बहाली में सहयोग प्रदान कर सकती हैं। इस्लाम धर्म में स्त्री-संबंधी मान्यताओं, धारणाओं इत्यादि को लेकर अनेकानेक भ्रांतियाँ दुनिया भर में प्रचलित हैं। इस्लाम की मूल भावना स्थापनाओं मान्यताओं से ये भ्रांत धारणाएँ कितना मेल खाती हैं और ये कितना दुष्प्रचारित हैं, यह देखना भी इस इकाई में प्रस्तावित है।

संक्षेप में इस इकाई की प्रस्तावना यह है कि इस्लाम की स्त्री-संबंधी मान्यताओं, धारणाओं के सकारात्मक, गतिशील और अग्रगामी पहलुओं को सामने लाया जाए, ताकि उनकी प्रासंगिकता उद्घाटित की जा सके। इसके साथ ही यह भी कि उनमें क्या संशोधन, परिवर्द्धन, परिवर्तन इत्यादि किया जाए कि मुस्लिम स्त्री की नियति सुधर सके।

2.1.3. इस्लाम और स्त्री : विषय का परिक्षेत्र

इस्लाम में स्त्री संबंधी मान्यताओं, धारणाओं, व्यवस्थाओं, प्रावधानों, निर्देशों इत्यादि की जानकारी के मुख्यत: चार स्रोत हैं। ये चार स्रोत निम्नलिखित हैं –

(i) कुरान
(ii) हदीस
(iii) इज्मा, कियास
(iv) फतव, इज्तिहाद

इनमें प्रथम दो मूलभूत स्रोत या आधार हैं। शेष दो विभिन्न मुस्लिम धड़ों, समुदायों, स्थानों, स्कूलों इत्यादि के अंतर्गत सीमित और क्षेत्रीय स्तर पर व्यवस्था की सूचना देते हैं। ये चूँकि भिन्न समुदायों, धड़ों, स्कूलों आदि से संबंधित हैं अत परस्पर भिन्न भी हो सकते हैं।

कुरान के चौथे अध्याय 'सूरा अन-निसा' में (जिसका अर्थ होता है स्त्री) स्त्री संबंधी मान्यताएँ, धारणाएँ, व्यवस्थाएँ, प्रावधान इत्यादि बिंदु निबद्ध हैं। आगे विषय एवं संदर्भानुसार इनका विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

कुरान और हदीस की व्यवस्थाएँ एक ऐतिहासिक समय-विशेष के तहत थीं। आने वाले वर्तमान समय के संदर्भ में प्रत्येक स्थिति के लिए ये उपयुक्त हों, यह आवश्यक नहीं। इस समस्या के हल की

प्रक्रिया में विभिन्न इस्लामिक विधिशास्त्र, धार्मिक स्कूल इत्यादि बने, जिनमें इस्लाम के बुद्धिजीवी और शोधकर्ता, विद्वान सक्रिय थे और आज भी हैं। इन सबका कार्य एवं प्रयास यह रहता आया है कि कुरान के मूल प्रावधानों के आलोक में नई समस्याओं पर विचार हो, उन पर बहस हो तथा एक ऐसी उपयुक्त और सटीक धर्मसंगत व्यवस्था ईजाद की जा सके, जिस पर सब सहमत हों।

2.1.4. स्त्री संबंधी मूल इस्लमिक विचार

कुरान के चौथे अध्याय में स्त्री के संबंध में जो मान्यताएँ, व्यवस्थाएँ, धारणाएँ एवं प्रावधान इत्यादि किए गए हैं, ये प्राय: समस्त संदर्भों से जुड़े हुए हैं, वे निम्नानुसार हैं-

(i) स्त्री–पुरुष को जोड़े से पैदा किया है। (रब ने तुम्हें एक जीव से पैदा किया और उसी जाति का उसके लिए जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत सारे पुरुष और स्त्रियाँ फैला दीं। (कुरान 4:1)

(ii) कुरान के 'सूरा अन-निसा' में कहा गया है कि तुम दो-दो, तीन-तीन या चार-चार (अनाथ) लड़कियों से विवाह तो कर सकते हो, लेकिन यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम उनके साथ एक जैसा व्यवहार न कर सकोगे तो एक ही पर बस करो। (4:3)

(iii) स्त्रियों को उनके मह्र खुशी से अदा करो। (4:4)

(iv) पुरुषों और स्त्रियों का अपने माँ-बाप और नातेदारों द्वारा छोड़े गए माल में हिस्सा है। स्त्रियों का भी उस माल में एक हिस्सा है, जो माल माँ-बाप और नातेदारों ने छोड़ा हो- चाहे वह थोड़ा हो या अधिक हो, यह हिस्सा निश्चित किया हुआ है। (4:7)

(v) मरने वाले की छोड़ी हुई संपत्ति में उसकी पुत्रियों के हिस्से का यह प्रावधान कुरान में किया गया है कि अगर (मय्यत की) औलाद में सिर्फ लड़कियाँ ही हों तो दो या दो से ज़्यादा हो तो उनका मुकर्रर हिस्सा कुल तर्के का दो तिहाई है और अगर एक लड़की हो तो उसका आधा है। (4:11) यदि किसी पुरुष की मृत्यु हो जाए जिसकी कोई संतान न हो, परंतु उसकी एक बहन हो तो जो कुछ उसने छोड़ा है उसका आधा हिस्सा उस बहन का होगा। (4:176)

(vi) बीवियों के साथ अच्छा सलूक करते रहो; बावजूद इसके कि किसी वजह से तुम उन्हें नापसंद करते हो। हो सकता है, इसमें कुछ बेहतरी छुपी हो। (4:19)

(vii) पुरुषों की तरह स्त्रियों का भी उनकी कमाई पर अधिकार है- ''पुरुषों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है और स्त्रियों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है।'' (4:32)

2.1.5. इस्लाम में स्त्री का महत्व एवं सम्मान

इस्लाम ने हव्वा की बेटी को पर्याप्त सम्मान दिया है तथा उसे मर्द के समान अधिकार दिए गए हैं। कुरान की सूरा बकर (2:228) में कहा गया है कि "महिलाओं के लिए भी सामान्य नियम के अनुसार वैसे ही अधिकार हैं जैसे मर्दों के अधिकार उन पर हैं।"

इस्लाम में महिलाएँ उच्च स्थान पर हैं। जीवन के हर भाग में उन्हें महत्व दिया गया है। माँ, पत्नी, बेटी एवं बहन के रूप में उसे पर्याप्त सम्मान दिया गया है। हदीस में कहा गया है कि माता को पिता की तुलना में तीन गुना अधिकार प्राप्त हैं। इस्लाम में मुहम्मद (सल्लल्लाह अलैदि व वसल्लम) ने फरमाया है कि ''जिसने बेटियों के प्रति किसी प्रकार का कष्ट उठाया और वह उनके साथ अच्छा व्यवहार करता रहा, तो यह उसके लिए नरक से पर्दा बना जाएँगी'' इसी तरह बहन के लिए कहा गया कि ''जिस किसी

के पास तीन बेटियाँ हों अथवा तीन बहनें हों, उनके साथ अच्छा व्यवहार किया हो, तो वह स्वर्ग में प्रवेश करेगा।''

2.1.6. इस्लाम में स्त्रियों के अधिकार

2.1.6.1. जीने का अधिकार - इस्लाम ने चौदह सौ साल पहले स्त्री को वह मुकाम दिया है, जो आज के जीने का अधिकार कानून भी उसे नहीं दे पाए हैं। स्त्रियों को जीने का अधिकार इस्लाम में बाकायदा दिया गया है। कुरान (16:58-59) में उन माता-पिता को लताड़ा गया है, जो बेटी के जन्म पर दु:खी होते हैं। इसी तरह कुरान की एक आयत (81:8-9) में लड़कियों को जिंदा गाड़ देने के कृत्य की भर्त्सना की गई है। सूरतुन–नह्ल (16:58-59) में भी इसकी मलामत की गई है।

2.1.6.2. वर चुनने का अधिकार - इस्लाम ने स्त्री को यह अधिकार दिया है कि वह किसी के विवाह-प्रस्ताव को स्वेच्छा से स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। इस्लामी कानून के अनुसार किसी स्त्री की विवाह उसकी स्वीकृति के बिना या उसकी मर्जी के विरुद्ध नहीं किया जा सकता। बीवी के रूप में इस्लाम औरत को इज्जत और अच्छा ओहदा देता है। कोई पुरुष कितना अच्छा है, इसका मापदंड इस्लाम ने उसकी पत्नी को बना दिया है। इस्लाम कहता है कि अच्छा पुरुष वहीं है, जो अपनी पत्नी के लिए अच्छा है। यानि इन्सान के अच्छे होने का मापदंड उसकी हमसफर है। जैसा कि पैगंबर मुहम्मद सल्ल ने फरमाया- ''तुम में से सर्वश्रेष्ठ इन्सान वह है जो अपनी बीवी के लिए सबसे अच्छा है।'' (तरमिजी, अहमद)।

2.1.6.3. संपत्ति में अधिकार - इस्लाम में औरत को बेटी के रूप में पिता की जायदाद और बीवी के रूप में पति की जायदाद का हिस्सेदार बनाया गया है। संपत्ति के अधिकार के विषय में इस इकाई के अंश 2.1.4 में भी बात की गई है।

2.1.6.4. लैंगिक समानता का अधिकार - इस्लाम में स्त्री-पुरुष को बराबर का दर्जा हासिल है। पैगंबर सल्ल-ल्लाहू अलैहि व सल्लम ने सूचना दी है कि मानवता के अंदर स्त्री, पुरुष के बराबर है। उन्होंने फरमाया है- ''महिलाएँ पुरुषों के समान हैं।'' (इसे अहमद, अबू दाउद और त्रिमिजी ने रिवायत किया है।) (पैगंबर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और महिला का सम्मान (हिंदी), संकलन अताउर्रहमान जियाउल्लाह; इस्लामी आमंत्रण एवं निर्देश कार्यालय रब्वा, रियाज़ सऊदी अरब; (1429-2008)।

2.1.7. इस्लाम में स्त्रियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति

कुरान (7:189) में कहा गया है कि ''खुदा ने तुम्हें एक आत्मा से रचा है तथा उसी आत्मा से तुम्हारा साथी भी रचा है, जिसके साथ वह हमनवा हो सकता है। कुरान (42:11) में यह भी कहा गया है कि स्वर्ग और पृथ्वी का सृजन करने वाले खुदा ने तुम्हारे लिए तुम्हारे अंदर से ही तुम्हारा जोड़ा बनाया है।'' (द्रष्टव्य : The status of Women in Islam; Dr. Jamal Badawi; Al-Itsihad, vol.8, No.2, Sha'ban 1391/sept 1971)

कुरान की उक्त मान्यता भारतीय 'अर्द्धनारीश्वर' की अवधारणा जैसी है, जिसका सूत्रवाक्य यह है- 'एकोहं बहु:स्याम:।'

इस्लाम में यों तो स्त्री–पुरुष की समानता की बात कही गई है, लेकिन फिर भी हर धर्म की तरह यहाँ भी लैंगिक आधार पर कार्यों, श्रम का बँटवारा व्यावहारिक तौर पर मिलता है। स्त्री की जगह घर में मानी गई है; जहाँ की वह स्वामिनी है और बाह्य जगत का काम पुरुष के जिम्मे है। यह एक सामान्य परिपाटी रही है। इससे स्त्रियों के अवसर, अधिकार कम हो जाते हैं, किंतु यह अटल नियम नहीं है। समय

के अनुसार स्त्रियों की भूमिका में बदलाव आया है तथा वे घर के बाहर के कार्य- नौकरी इत्यादि- भी कर रही है तथा मौजूदा समय में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि सार्वजनिक जीवन में, प्रशासनिक पदों पर, शासनाध्यक्ष के रूप में, व्यावसायिक दुनिया में मुस्लिम स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

2.1.7.1. स्त्री-शिक्षा - कुरान तथा पैगंबर मुहम्मद दोनों ही स्त्री एवं पुरुष दोनों के शिक्षा/ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार की वकालत करते हैं। (Jawad Haifaa (1998) The Rights of Women in Islam: An Authentic Approach, Londan, Palgrave Macmillan. P. 8 ISBN 978-0333734582)। कुरान जैविक लिंग से ऊपर उठकर समस्त मुस्लिमों को ज्ञान की खोज का प्रयास करते रहने का निर्देश देती है। कुरान शरीफ़ मुस्लिमों को लगातार पढ़ने, सोचने तथा प्रकृति में खुदा के चिह्नों को अधिगमित करने की प्रेरणा देती है। (वही; पृ. 3) पैगंबर मुहम्मद स्त्री और पुरुष दोनों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने की बात करते हैं। (वही)। पैगंबर ने यह भी कहा कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी ज्ञान प्राप्त करें, अपनी बुद्धि-जीविता को विकसित करें, अपने दृष्टिकोण का विस्तार करें तथा इन सबसे लैस अपनी प्रतिभा एवं बुद्धिमत्ता का अपने स्वयं के तथा समाज के हित में इस्तेमाल करें। (वही; पृ. 20)।

2.1.7.2 स्त्री और रोजगार - इस्लाम में स्त्री को रोजगार करने की छूट है बशर्ते कि उससे उनके मूलभूत कर्तव्यों माँ एवं पत्नी के रूप में घर के दायित्व पर कोई आँच न आए। (Al Qwadawy, Yusuf. The Status of Women in Islam. Chapter : the Women as Member of the Society : when is a Women allowed work?)

कुरान (28:23) में एक वाकया आया है, जिसमें दो लड़कियाँ अपने जानवरों को पानी पिलाने एक मदयन पर मौजूद दिखाई गई हैं। इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ घर से बाहर काम पर जाती थीं।

इस्लाम के लंबे इतिहास में अनेक मुस्लिम देशों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की तरह ही अनेक तरह के काम करती रही हैं। जैसे योद्धा के रूप में इतिहास में अनेक ऐसी मुस्लिम स्त्रियाँ हुई हैं, जिन्होंने सैनिक एवं जनरल के रूप में युद्धों में भाग लिया। (Girl Power, ABC News)

आज के आधुनिक समय में दुनिया भर में मुस्लिम औरतों के लिए रोजगार के अवसर बढ़े हैं। वर्ल्ड इकॉनोमिक फोरम की 2012 की रपट तथा अभी हाल की अन्य रिपोर्ट्स के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनेक देश अपने यहाँ की मुस्लिम औरतों के लिए आर्थिक एवं नौकरी के अवसर बढ़ाने में लगे हैं। आज अनेक देशों में महत्वपूर्ण व्यावसायिक प्रबंधन पदों, जैसे- सी.ई.ओ, निदेशक, अध्यक्ष, संस्थापक सदस्य आदि के बतौर मुस्लिम महिलाएँ नियुक्त एवं कार्यरत हैं। सन् 2014 की इंटरनेशल बिजनेस रिपोर्ट से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अनेक देशों में बड़ी संख्या में मुस्लिम औरतें विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं।

2.1.7.3. विवाह - इस्लाम में स्त्री के विवाह की उम्र अनेक प्रथाओं, विद्वानों एवं मान्यताओं के हिसाब से अलग-अलग है, लेकिन अब ज्यादातर मुस्लिम विद्वान यह मानते हैं कि जब लड़की यौन रूप से परिपक्व हो जाए, वही उसकी शादी की उम्र है। हर लड़की के हिसाब से यह अलग-अलग भी हो सकती

है। 12 से लेकर 15 वर्ष तक की उम्र सामान्यत: विवाह की उम्र मानी गई है। (A.A. Ali, Child Marriage in Islamic Law, The Institute of Islamic studies, Mc Gill University (Canada), August 2000, see pages 16-18.) किंतु एक तरह से यह बाल-विवाह ही तो है।

जैसे कि पूर्व में भी कहा गया- इस्लाम में स्त्री को अपना वर चुनने का अधिकार है। उसका निकाह उसकी सहमति से ही हो सकता है। उस पर कोई विवाह थोपा नहीं जा सकता।

इस्लाम में विवाह (निकाह) एक अनुबंध है।

2.1.7.4. राजनीति में स्त्री - विश्व के अनेक देशों में मुस्लिम स्त्रियों ने राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस्लाम में स्त्रियों के राजनीति में आने की मनाही नहीं है। पहले कहा गया है कि इस्लाम के इतिहास में रज़िया सुल्तान जैसी महिला भी हुई है, जो एक समय दिल्ली की सुल्तान थी। रज़िया सुल्तान के अलावा शजारत अद्दर (मिश्र), ताज उल आलम (अक्का) ऐसे अन्य उदाहरण हैं। यह एक भ्रम है कि इस्लाम में स्त्री को नेतृत्व दिए जाने की मनाही है। कुरान (27:23) में कहा गया है- "मैंने एक स्त्री को उन पर शासन करते पाया। उसे हर चीज प्राप्त है और उसका एक बड़ा सिंहासन है।" स्पष्ट है कि स्त्री नेतृत्व हानिकारक नहीं, बल्कि बरकत देने वाला होता है। अल तबारी जैसे खाँटी इस्लामिक विद्वान भी स्त्री को नेतृत्व दिए जाने का समर्थन करते हैं। (Anne Sofia Roald, Women in islam; The western Experience, pp. 186-07)। इस्लाम के लंबे इतिहास में ऐशा (Aisha), उमे वर्क, (Ume Warqa), सामरा बिंते वहाब जैसी अनेक महिलाएँ हुई हैं, जिन्होंने राजनैतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी की थी।

आधुनिक काल में अनेक देशों में मुस्लिम महिलाएँ राजनैतिक नेतृत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुँची हैं। इनमें पाकिस्तान की प्रधानमंत्री बेनज़ीर भुट्टो, इंडोनशिया की राष्ट्रपति मैगावती सुंकर्णोपुत्री, कोसोबा की राष्ट्रपति एटीफेट जाह जगा, बाँग्लादेश की प्रधानमंत्री बेगम ख़ालिदा ज़िया तथा शेख हसीना, तुर्की की प्रधानमंत्री तानसु सिलर, किर्गीज़िस्तान की राष्ट्रपति रोज़ा ओटनबाएवा आदि-आदि उल्लेखनीय नाम हैं।

वर्तमान में अनेक मुस्लिम-बहुल देशों में ऐसे कानून हैं, जो अपने यहाँ की मुस्लिम स्त्रियों को संसदीय एवं अन्य राजनैतिक प्रक्रियाओं एवं मंचों पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करते हैं। अनेक देशों में स्त्रियों के लिए राजनैतिक नेतृत्व में आरक्षण की भी व्यवस्था है। यह आरक्षण 30 से 50 प्रतिशत तक का है। इंडोनेशिया, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, सेनेगल आदि देश इसके उदाहरण हैं। हालाँकि खाड़ी के अरब देशों में महिला-नेतृत्व की स्थितियाँ शोचनीय हैं। इनमें अनेक देशों में तो बहुत देर से महिलाओं को मताधिकार दिया गया था।

2.1.7.5. इस्लाम की स्त्री-संबंधी पहल - यह एक विचारणीय तथ्य है कि इस्लाम से पूर्व की सभ्यताओं एवं धर्मों में स्त्रियों की स्थिति क्या थी। इस संबंध में हिंदू, यूनान व रोमन सभ्यताओं पर विचार किया जा सकता है।

प्रसिद्ध इस्लामिक विद्वान डॉ. जमाल बडावी ने अपने प्रसिद्ध लेख 'The Status of Women in Islam' में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के हवाले से कहा है कि "भारत में पराधीनता एक आधारभूत सिद्धांत रहा है। मनु कहता है कि स्त्री को उसके संरक्षकों द्वारा दिन-रात निर्भरता की स्थिति में रखना चाहिए। उत्तराधिकार का नियम पितृमूलक रहा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरुषों में रहता है; स्त्रियाँ इससे बहिष्कृत हैं।" (The Encyclopedia Britannica, 11th ed1911,vol.28,p.782)

हिंदू धर्म ग्रंथों में एक श्रेष्ठ पत्नी की पहचान यह बताई गई है- "वह स्त्री जिसका मस्तिष्क, वाणी एवं देह पराधीनता में आबद्ध हो, वही श्रेष्ठ स्त्री मानी जाती है।" (Mace, David and Vera, Marriage East and west Dolphin Boobs, Doubleday and co., Inc., N.Y., 1960)

यूनानी संस्कृति में भी स्त्री की स्थिति अच्छी नहीं थी। वहाँ भी उनकी स्थिति भारतीय एवं रोमन स्त्रियों जैसी ही थी। "यूनानी स्त्रियाँ सदैव अवयस्क मानी जाती रही हैं; अपने पिता, भाई या अन्य पुरुष-सगोत्रियों के तहत।" (Allen, E.A., History of Civilization, vol. 3 p. 444)। विवाह के मामले में उसकी सहमति/स्वीकृति का अधिकार उसे प्राप्त नहीं था। उसे अपने माता-पिता की इच्छानुसार; जिस पुरुष का चुनाव उसके पति के रूप में वे करते थे, उसके साथ उसे विवाह करना पड़ता था, जो कि उसके लिए नितांत अपरिचित होता था। (वही; पृ.443)।

रोमन स्त्री/पत्नी के विषय में इस प्रकार का वर्णन आता है कि ''वह एक बच्ची, अवयस्क या एक ऐसा व्यक्ति है'' जो अपने विवेक से कोई काम करने की क्षमता नहीं रखती। वह एक ऐसा व्यक्ति है, जो निरंतर अपने पति के संरक्षण एवं अभिभावकत्वमें रहती आती है। (वही; पृ. 550)। ''अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Subjection of Women' में जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा है- "यह कहा जाता है कि सभ्यता और ईसाइयत ने स्त्रियों को उनके हक दिलाए, किंतु सच्चाई यह है कि पत्नी अपने पति की वास्तविक बँधुआ मजदूर बनी हुई है। उसकी कानूनी स्थिति गुलामों जैसी है।' (Mace david and vera, Marriage East & West-Dolfin Boobs, Doubleday and co. Inc. N.Y. 1960, पृ. 82-83)। वर्जीनिया वुल्फ ने भी अपनी पुस्तक 'द रूम ऑफ वन्स ओन' में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं।

इस्लाम ने उक्त तीनों सभ्यताओं से आगे बढ़ते हुए स्त्रियों को पर्याप्त व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अधिकार दिए तथा उसकी अस्मिता को एक नई पहचान दी।

2.1.8. निष्कर्ष

उक्त इकाई विवेचन से स्पष्ट है कि इस्लाम में स्त्री का पर्याप्त सम्मान एवं महत्व है। इस्लाम ने उसे विभिन्न व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अधिकार बख्शे। एक तरफ इस्लाम ने उसे विवाह में उसकी सहमति का अधिकार, वर चुनने का अधिकार दिया और उसके द्वारा कुबूल न किए जाने तक निकाह असंभव कर दिया। दूसरी तरफ कुरान में पारिवारिक संपत्ति में उसके हिस्से की व्यवस्था की गई। एक तरफ नवजात बच्चियों को जमीन में जिदा गाड़ देने की प्रथा की नुक्ताचीनी इस्लाम ने की तो दूसरी तरफ पुत्रियों के संपत्ति अधिकार भी सुनिश्चित किए। इस्लाम ने स्त्रियों को अपना मनोवांच्छित कार्य, नौकरी इत्यादि करने की छूट दी तथा विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ने के अवसर दिए जाने का प्रावधान किया। इस्लाम में औरतों को दिए गए इन्हीं अधिकारों का यह परिणाम है कि आज दुनिया भर में इस्लामिक औरतें राजनीति, शिक्षा, व्यवसाय, अध्यवसाय के विभिन्न विभाग, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं और करती जा रही हैं।

2.1.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

खंड-2 : मध्यकालीन भारत और स्त्री

इकाई-2 : हिंदू धर्मऔर स्त्री

इकाई की रूपरेखा

2.2.1. उद्देश्य
2.2.2. प्रस्तावना
2.2.3. वैदिक साहित्य में स्त्रियों की स्थिति
2.2.3.1. वेद
2.2.3.2. उपनिषद
2.2.4. महाकाव्य-काल में स्त्रियों की स्थिति
2.2.5. स्मृति-ग्रंथों में स्त्रियों की स्थिति
2.2.6. पुराणों में स्त्रियों की स्थिति
2.2.7. सारांश
2.2.8. बोध प्रश्न
2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम यह जान सकेंगे–

1. हिंदू धर्म में प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियों की स्थिति, हिंदू धर्म की प्राचीन विस्तृत परंपरा में स्त्रियों की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियाँ कैसी व क्या रहीं, हिंदू धर्म के विभिन्न ग्रंथों में स्त्रियों से जुड़े विभिन्न मुद्दों के विषय में व्यक्त मत एंव आधुनिक युग के संदर्भ में स्त्रियों की स्थिति के विषय स्त्री संबंधी विमर्श कीस्थिति।

2.2.2. प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत प्राचीन काल से लेकर अब तक हिंदू धर्म की परंपरा में स्त्रियों की स्थिति, महत्व, स्त्री विषयक प्रावधानों इत्यादि पर विचार किया जाना है। वैदिक साहित्य से लेकर आज तक स्त्री संबंधी चिंतन, विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों द्वारा किए गए योगदान, स्त्री-जीवन से जुड़ी समस्याओं पर किए गए विचार इत्यादि बिंदुओं पर विस्तृत विचार-विश्लेषण यहाँ प्रस्तावित है। वैदिक साहित्य, महाकाव्यों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृति-ग्रंथों आदि में स्त्री के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह आवश्यकतानुसार यहाँ उल्लेखनीय होगा। हिंदू धर्म में ईश्वर की लैंगिकता पर पर्याप्त विचार किया गया है। ईश्वर की लैंगिकता के विवेचन का दूरगामी प्रभाव हिंदू मानसिकता पर पड़ा है। यह प्रसंग बहुत ही रुचिकर और महत्वपूर्ण है। इससे स्त्री के अस्तित्व एवं महत्व पर प्रकाश पड़ता है। स्त्रियों से जुड़े विभिन्न मुद्दों; जैसे- स्त्री को प्राप्त शिक्षा का अधिकार, विवाह संबंधी व्यवस्थाएँ एवं प्रावधान, पुनर्विवाह की स्थितियाँ, दहेज की समस्या, वैधव्य की स्थिति में स्त्री की स्थिति, सती प्रथा, विवाहेतर व अन्य यौन संबंध, पहनावा एवं शरीर पर धारण किए जाने वाले सुहाग के चिह्न एवं प्रतीक, शृंगार-प्रसाधन संबंधी प्रावधान इत्यादि पर संक्षेप में विचार किया जाना प्रस्तावित है। इस क्रम एवं प्रक्रिया में समय-समय पर हुए बदलावों पर भी विचार किया जाना है।

इस इकाई में वेदों, उपनिषदों, महाकाव्य-काल, स्मृति-ग्रंथों, पुराणों इत्यादि में स्त्रियों की स्थिति पर इन बिंदुओं के संदर्भ में दृष्टिपात होगा- स्त्री-शिक्षा, विवाह, पुनर्विवाह, दहेज-प्रथा, वैधव्य, सती प्रथा, विवाहेतर संबंध, पहनावा एवं प्रतीक-चिह्न इत्यादि।

2.2.3. वैदिक साहित्य में स्त्रियों की स्थिति

प्राचीन हिंदू धर्मग्रंथों में वैदिक साहित्य परिगणित किया जाता है, जिसके अंतर्गत वेद एवं उपनिषद सम्मिलित है। वेद चार हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं- 1. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। उपनिषद 108 माने गए हैं; जिनमें ऋग्वेद के 10, सामवेद के 16, शुक्ल यजुर्वेद के 19, कृष्ण यजुर्वेद के 32, अथर्ववेद के 31 । इनमें से प्रथम दस यानी ऋग्वेद के उपनिषदों को मुख्य उपनिषद कहा जाता है।

2.2.3.1. वेद - विभिन्न वेदों में निहित स्त्री के संबंध में जो कुछ कहा गया है, जो स्थापनाएँ, प्रावधान, धारणाएँ एवं अभिमत व्यक्त किए गए हैं, उनका बिंदुवार विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. वैदिक काल में कोई भी धार्मिक कार्य स्त्री अर्थात् पत्नी की उपस्थिति के बिना प्रारंभ एवं संपन्न नहीं होता था। यह प्रथा हिंदू मतावलंबियों में आज भी यथावत् जारी है।
2. वेद स्त्रियों को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार पुरुषों के समान देता है। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

(i) जो पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञ करते हैं, उन्हें अन्न, पुष्प, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती। (ऋग्वेद 8।31।5-8)।

(ii) विवाह यज्ञ में वर-वधू उच्चारण करते हुए एक-दूसरे का हृदय-स्पर्श करते हैं। (ऋग्वेद 10।85।47)।

(iii) विद्वान लोग पत्नी सहित यज्ञ में बैठते हैं और नमस्करणीय को नमस्कार करते हैं। (ऋग्वेद 1।72।5)।

(iv) 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' अर्थात् स्त्री यज्ञ की ब्रह्मा बनें। (ऋग्वेद 8।33।19)।

3. वेदों में धर्म एवं राजनीति से जुड़े मामलों में पुरुष के समान ही महत्व एवं अवसर दिए जाने की बात कही गई है।
4. वैदिक युग में लड़कियों को लड़कों की तरह ही शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को पुरुषों की तरह ही हर प्रकार की विद्या और शिक्षा उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान था। जैसे- वेद-ज्ञान, धनुर्विद्या, नृत्य, संगीत-शास्त्र आदि। इस संबंध में निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य हैं

(1) ईस्वी सन् के आरंभ तक लड़कियों का उपनयन संस्कार होता था और उन्हें वेदों का अध्ययन करने की भी लड़कों के समान ही अनुमति होती थी। (अल्टेकर; पृष्ठ 9-10;)। उपनयन संस्कार के बाद ही लड़कियों की विधिवत शिक्षा का आरंभ होता था। वैदिक काल में उनका उपनयन संस्कार अपनी पूर्णावधि के साथ ही होता था। लड़कियाँ भी गुरुओं के आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई यज्ञोपवीत, मौंजी, मेखला और वल्कल धारण करती थीं। ऋक्-यजु - अथर्व संहिताओं में ब्रह्मचारिणी नारियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है, "ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर शिक्षा समाप्त करने वाली कन्याएँ योग्य पति को प्राप्त करती हैं।"("ब्रह्मचर्येण कन्यानम् युवाविन्दते पतिम्।'- अथर्ववेद 11/7/18) "जो छात्राएँ अधिक-से-अधिक संहिताओं के मंत्रों की पंडिता होती थीं, उन्हें 'बहुवची' की उपाधि दी जाती थी।" (चतुर्वेदी अनुराधा, 'वैदिक एवं आर्ष महाकाव्य युग में स्त्रियों की

शिक्षा' शीर्षक लेख; एचटीटीपी://feministfeministफेमिनिस्ट-पोयम्स-आर्टिकलस/ब्लागस्पाट। इन/2012/10/ब्लॉग-पोस्ट_22hmtlhmtl hmtl एचएमटीएल)।

(2) प्राचीन वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही मंत्रद्रष्ट्री होती थीं। उनमें से कुछ के नाम वैदिक संहिताओं में भी आए हैं। (अल्टेकर; पृष्ठ-10)। अनेक ऋषिकाएँ ऐसी हुई हैं, जिन्होंने ऋग्वेद के सूक्तों की रचना की, जैसे- लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता निवावरी, घोषा आदि। इनके द्वारा जिन सूक्तों की रचना की गई, उनका विवरण इस प्रकार है-

लोपामुद्रा- प्रथम मंडल का 179 वाँ सूक्त।
विश्ववारा आत्रेयी- पंचम मंडल का 28वाँ सूक्त।
अपाला आत्रेयी- अष्टम मंडल का 91वाँ सूक्त।
घोषा काक्षीवती- दशम मंडल का 39वाँ तथा 40वाँ सूक्त।
शची पौलोमी- दशम मंडल का 149वाँ सूक्त (आत्मस्तुति)।
सूर्या सावित्री- दशम मंडल का 85वाँ सूक्त।
वैदिक काल की महान दार्शनिक गार्गी ने 'गार्गी संहिता' नामक पुस्तक लिखी।

(3) वैदिक काल में विशेषतः क्षत्रिय स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् धनुर्विद्या की भी शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा युद्ध में भी भाग लेती थीं। जैसे- ऋग्वेद के दशम मंडल में 102वें सूक्त में राजा मुद्गल एवं मुद्गलानी की कथा वर्णित है। वह उसे युद्ध में विजय दिलाती है। इसी प्रकार शशीयसी का (ऋग्वेद 5।61) तथा वृत्तासुर की माता 'दनु' का (ऋग्वेद, 1/32/9) वर्णन है, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया तथा इंद्र के हाथों वीरगति को प्राप्त हुईं यजुर्वेद (11।5।18) में कहा गया है कि ''स्त्रियों की सेना हो और उन्हें युद्ध में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें''।

(4) वैदिक युग में स्त्री को यह छूट थी कि वह चाहे तो अपना जीवन बिना विवाह किए व्यतीत कर सकती थी। स्त्रियाँ बिना विवाह किए सारा जीवन शिक्षा में व्यतीत कर सकती थीं। (ऋग्वेद संहिता भाग-1, सूक्त-73 श्लोक-829)।

(5) अथर्ववेद (11।5।18) में कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'। अर्थात् एक ब्रह्मचर्य का जीवन बिता चुकी कन्या (ब्रह्मचर्य स्नातक) अपने योग्य उचित पति को प्राप्त करती है।

(6) यजुर्वेद (10।7) में लिखा गया है कि राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।

(7) ऋग्वेद (3।1।23) में कहा गया है कि विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पंडित बनाएँ, जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हों।

(8) ऋग्वेद के 1।152।6. तथा यजुर्वेद के 11।36, 6।14, 11।59 में भी स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार दिए जाने का उल्लेख है।

(9)वैदिक युग में स्त्रियों को अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार था।

(10) वेदों में पुत्रोत्पत्ति के साथ पुत्रियों के भी पैदा होने की कामना व्यक्त की गई है। कन्या का पैदा होना कलंक या दुःख का कारण नहीं, अपितु यश का हेतु माना गया था। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

(i) मेरे पुत्र शत्रु-हन्ता हों और पुत्री भी तेजस्विनी हो। (ऋग्वेद 10।159।3)

(ii) यज्ञ करने वाले पति-पत्नी और कुमारियाँ होते हैं। (ऋग्वेद 8।31।8)

(iii) प्रति पहर हमारी रक्षा करने वाला पूषा परमेश्वर हमें कन्याओं का भागी बनाएँ अर्थात् कन्या प्रदान करें। (ऋग्वेद 9।67।10)।

(iv) हमारे राष्ट्र में विजयशील सभ्य वीर युवक पैदा हों, वहाँ साथ ही बुद्धिमती नारियों के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है। (यजुर्वेद 22।22)।

(v) जैसा यश कन्या में होता है, वैसा यश मुझे प्राप्त हो। (अथर्ववेद 10।3।20)।

(vi) ऋग्वेद के देवी सूक्त (10।125।3-10।125।8) में स्त्री की शक्तिसंपन्नता और सर्वकेंद्रिकता के विषय में बहुत सारी बातें कही गई हैं।

2.2.3.2. उपनिषद

उपनिषदों में अनेक विदुषी महिलाओं का नाम आया है। जैसे - सुलभा मैत्रेयी, वडवा पार्थियेयी, गार्गी वाचकनवी। इनका अनेक ग्रंथों में बार-बार नामोल्लेख हुआ है।

उपनिषद काल में स्त्री-शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था। इस काल में महिला छात्राएँ दो श्रेणियों में विभाजित थीं- 1. सद्योद्वाहा तथा, 2. ब्रह्मवादिनी। 'सद्योद्वाहा' स्त्रियाँ वे होती थीं, जो ब्रह्मचर्य आश्रम के अनंतर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होती थीं तथा उस आश्रम के नियमों का पालन करती हुई मातृत्व के महनीय पद पर प्रतिष्ठित होती थीं। वे उन समग्र विद्याओं का शिक्षण प्राप्त करती थीं, जो उन्हें सदगृहिणी बनाने में पर्याप्त सहायक होती थीं। संगीत की शिक्षा भी उन्हें दी जाती थी। यजमान-पत्नी के रूप में वे अग्न्याधान करने वाले अपने पति के धार्मिक कृत्यों में हाथ बँटाती थीं। अग्नि के परिचरण के अवसर पर वे सतत विशिष्ट मंत्रों के उच्चारण के साथ हवन-कार्य का भी संपादन करती थीं। (उपाध्याय, आचार्य बलदेव; वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी 1998; पृष्ठ-424)। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ उपनिषद् युग की विशिष्टता मानी जा सकती हैं। ये स्त्रियाँ ब्रह्म-चिंतन में तथा ब्रह्म-विषयक व्याख्यान में अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देती थीं। वे ब्रह्मतत्व के व्याख्यान तथा परिष्कार में उस युग के महान दार्शनिकों से भी वाद-विवाद एवं शास्त्रार्थ करती थीं। बृहदारण्यकोपनिषद् ऐसी दो ब्रह्मवादिनी नारियों की विद्वत्ता का परिचय बड़े विशद शब्दों में देता है। इनमें से एक हैं- उस युग के महनीय तत्वज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी और दूसरी हैं- उसी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने वाली वाचक्नवी गार्गी। (वही; पृष्ठ-425)।

2.2.4. महाकाव्य-काल में स्त्रियों की स्थिति

महाकाव्य-काल के अंतर्गत 'रामायण' एवं 'महाभारत' शीर्षक महाकाव्यों में स्त्रियों की स्थिति के विषय में पर्याप्त चर्चा की गई है। इन दोनों महाकाव्यों के केंद्र में स्त्री है। रामायण में सीता और महाभारत में द्रौपदी।

महाकाव्य-काल में वेदकालीन स्त्री-संबंधी व्यवस्थाएँ, धारणाएँ, मान्यताएँ आदि पर्याप्त स्तर पर जारी रहती हैं यद्यपि इनमें कतिपय परिवर्तन भी उपस्थित हुए। इस विषय में निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है-

(1) शिक्षा का अधिकार – उच्च कुल की स्त्रियों को विविध प्रकार की शिक्षाएँ प्राप्त करने का अधिकार था। इस काल में उच्चकुलीन स्त्रियाँ विविध प्रकार की विद्याओं में निपुण होती थीं। इस संदर्भ में राजा भोज की पुत्री कुंती का नाम लिया जा सकता है, जो अत्यधिक विदुषी एवं गुणवती थी। उसने अपने श्रम और बुद्धिमत्ता से वशीकरण मंत्रतक प्राप्त कर लिया था। विख्यात है कि उसने अपने आतिथ्य-सत्कार से

दुर्वासा जैसे क्रोधी ऋषि को प्रसन्न किया और उनसे मनचाहा वर प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया। इसके लिए उन्होंने कुंती को वशीकरण मंत्र दिया, जिसके द्वारा वह किसी भी देवता को वश में करके उससे पुत्र प्राप्त कर सकती थी। (महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-110)।

इसका दूसरा उदाहरण द्रौपदी है, जो पांडवों की पत्नी थी। जब पांडव उसे द्यूत-क्रीडा में दाँव पर लगाकर हार जाते हैं और जब दु:शासन उसे घसीटकर सभा में लाता है, तब वह सभा में उपस्थित गुरुजनों से धर्म-विषयक प्रश्न करती है तथा उन्हें धिक्कारती है। (महाभारत, सभापर्व, अध्याय-69)। इस घटना से स्पष्ट होता है कि द्रौपदी एक उच्चशिक्षित विदुषी स्त्री थी। उसे धर्मविषयक गूढ़ बातों का व्यवस्थित ज्ञान था। इसके अतिरिक्त इस घटना से यह भी स्पष्ट होता है कि गंभीर ज्ञान से स्त्री में एक प्रकार की निर्भीकता आती है, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है व दृढ़ता आती है। द्रौपदी हस्तिनापुर की राजसभा में उपस्थित महारथियों से चुनौतीपूर्ण सवाल पूछती है तथा उन्हें निरुत्तर कर देती है।

(2) हिंदू-परंपरा में स्त्रियों के आत्मसम्मान की सुरक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था है। स्त्रियों के सम्मान की रक्षार्थ यहाँ युद्ध भी हुए हैं। महाकाव्य-काल इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। रामायण एवं महाभारत दोनों के महायुद्धों के मूल में स्त्रियाँ ही हैं। भारतीय इतिहास के ये दोनों महानतम युद्ध स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए ही किए गए थे। रामायण में राम-रावण के बीच का युद्ध सीता के कारण हुआ, जिसमें रावण मारा गया। महाभारत युद्ध द्रौपदी के सम्मान की खातिर हुआ, जिसमें कौरवों की पराजय हुई।

(3) महाकाव्य-काल में एक विशेष स्थिति दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतः यज्ञ के समय पति सपत्नीक वेदी पर बैठते थे। अकेला पुरुष/पति यज्ञ संपन्न नहीं करवा सकता था, किंतु इस काल में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि स्त्रियों ने बिना किसी पुरुष/पति की सहवर्तिता के यज्ञ कराए हैं। जैसे कि रामायण में कौशल्या ने अपने पुत्र राम के लिए अकेले यज्ञ किया तथा तारा ने अपने पति बाली के लिए अकेले यज्ञ किया। यह अधिकार स्त्रियों ने पाया, किंतु पुरुष बिना पत्नी के यज्ञ कर नहीं सकते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्त्रियाँ चाहें तो कोई भी अधिकार प्राप्त कर सकती हैं।

(4) महाकाव्य-काल में स्त्रियाँ विदुषी होने के साथ-साथ वीरांगनाएँ भी हुआ करती थीं। उस समय की युवतियाँ युवकों की भाँति ही शस्त्र-विद्या में भी निपुण पाई जाती हैं। वे पुरुषों की भाँति ही शस्त्र-विद्या का प्रशिक्षण लेती थीं और युद्ध में लड़ने भी जाती थीं। कैकेयी का उदाहरण इस संदर्भ में लिया जा सकता है। कैकेयी दशरथ के साथ न केवल युद्ध-भूमि में जाती थीं, बल्कि एक बार उन्होंने अपने शौर्य से दशरथ की प्राणरक्षा भी की थी। इस प्रकार के उदाहरण और भी हैं। इन उदाहरणों से यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि बाहुबल के आधार पर पुरुष-श्रेष्ठता की धारणा निराधार है तथा भारत में प्राचीन काल में ही इसे नकार दिया गया था। बाहुबल में स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही सक्षम थीं।

(5) महाभारत काल में स्त्रियों का सम्मान अत्यधिक था। कोई उनकी अवमानना नहीं कर सकता था। किसी पुरुष/ पति ने यदि उन्हें कोई वचन दिया है, या उनसे कोई वादा किया है, तो उसे पूरा करना पुरुष/पति के लिए अपरिहार्य होता था। यहाँ तक कि यदि इस प्रक्रिया में उसके प्राण भी चले जाएँ, तो यह आश्चर्य की बात नहीं मानी जाती थी। रामायण में दशरथ-कैकेयी प्रसंग इसका अन्यतम उदाहरण है; जिसके अंतर्गत अपने वचन की प्रतिपूर्ति की प्रक्रिया में राजा दशरथ को अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं।

(6) महाभारत काल में स्त्रियों को पर्याप्त विविध-स्तरीय सुविधाएँ, महत्व, सम्मान एवं अधिकार उपलब्ध थे, जैसे- विवाहिता के रूप में। इस संबंध में कहा गया है कि 'वह घर घर नहीं, जिसमें पत्नी नहीं।' तथा यह भी कि ''गृहिणीहीन घर जंगल है''।

इसके अतिरिक्त महाभारत काल में स्त्रियाँ सामाजिक संबंध स्थापित करने के लिए स्वतंत्र थीं। खुला यौनाचार तो नहीं था, लेकिन अपनी ओर से प्रणय-निवेदन करना स्त्रियों के लिए वर्ज्य नहीं था। वे स्वयंवर द्वारा अपना वर चुनने के लिए स्वतंत्र थीं। संतानोत्पत्ति के लिए नियोग प्रथा प्रचलित थी, जो स्त्री-स्वतंत्रता का एक प्रारूप माना जा सकता है। पर्दा प्रथा नहीं थी। स्त्रियाँ अपेक्षाकृत खुली हवा में साँस लेती थीं।

(7) महाभारत काल में स्त्रियों को राज्य-तंत्र में भी महत्वपूर्ण पद प्राप्त हो सकते थे। इसका उदाहरण पूतना है, जो मथुरा के राजा कंस के गुप्तचर विभाग की मुखिया थी।

इस काल में विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार था।

2.2.5. स्मृति-ग्रंथों में स्त्रियों की स्थिति

स्मृति-काल स्त्री-नियति की दृष्टि से एक घातक काल कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में स्त्रियों पर ऐसी-ऐसी बंदिशें लगाई गईं, जो पहले कभी नहीं लगाई गई थीं और जिनके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। स्मृति-युग में यवनों के भी आक्रमण होना शुरू हुए थे। इस युग में स्त्रियों के अधिकार अत्यधिक संकुचित कर दिए गए थे। स्मृति-काल में लगाए गए प्रतिबंधों की गणना इस प्रकार की जा सकती है-

(1) स्मृतिकारों ने स्त्री को बचपन में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के संरक्षण में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने के आदेश दिए।

(2) स्मृति-काल में स्त्री-शिक्षा पर पाबंदी लगा दी गई।

(3) कन्याओं के विवाह की आयु घटकर 10-12 वर्ष रह गई।

(4) अपने लिए स्वयं वर का चुनाव करने का अधिकार छीन लिया गया।

(5) बाल-विवाह का प्रचलन बढ़ गया।

(6) कुलीन विवाह, अनमेल विवाह तथा बाल-विवाह का महत्व बढ़ने से बहुपत्नी संप्रदाय होने लगे।

(7) रखैल रखने की प्रथा प्रारंभ हो गई।

(8) वैधव्य की स्थिति में स्त्री और पुरुष के अधिकारों में असमानता आ गई। विधुर चाहे तो 8 या 10 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता था, लेकिन 8 या 10 वर्ष की कन्या का पति मर जाए तो वह आजीवन विधवा बनकर रहने के लिए मजबूर हो जाती थी। इस कारण विधवाओं की संख्या में बढ़ोतरी होने लगी।

(9) इन नई व्यवस्थाओं के कारण स्त्री की अन्य स्थितियों एवं महत्व तथा सम्मान में भी विघटन प्रारंभ हुआ। स्त्रियाँ माता के स्थान से गिराकर सेविका बना दी गई और गृहलक्ष्मी से गिराकर याचिका बना दी गई। वह भार्या हो गई।

(10) स्त्रियों के लिए विवाह ही एकमात्र धार्मिक संस्कार रह गया। विवाह के एकमात्र धार्मिक संस्कार हो जाने का परिणाम यह हुआ कि स्त्री केवल एक देह और दैहिक उपभोग्य वस्तु बनने की प्रक्रिया में आती चली गई।

मनुस्मृति में स्त्रियों के विषय में जो प्रावधान किए गए, वे इस प्रकार हैं-

(1) स्त्री सदा किसी-न-किसी के अधीन रहती है, क्योंकि वह स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। (अध्याय-9, मंत्र-3)। पुत्री, पत्नी, माता या कन्या, युवा, वृद्धा किसी भी स्वरूप में नारी स्वतंत्र नहीं होनी चाहिए। (अध्याय-9, 2 से 6 तक)।

(2) स्त्री को घर के सारे कार्य सुपुर्द कर देने चाहिए, जिससे कि वह घर से बाहर ही नहीं निकल सके। (अध्याय-9, मंत्र-11)।

(3) स्त्रियाँ स्वभाव से ही पर-पुरुषों पर रीझने वाली, चंचल और अस्थिर अनुराग वाली होती हैं। (अध्याय-9, मंत्र-15)।

(4) पति पत्नी को छोड़ सकता है, सूद (गिरवी) पर रख सकता है, बेच सकता है, लेकिन स्त्री को इस प्रकार के अधिकार नहीं है। किसी भी स्थिति में, विवाह के बाद, पत्नी सदैव पत्नी ही रहती है। (अध्याय-9, मंत्र-45)।

(5) जो स्त्री अपने नपुंसक, आलसी, नशा करने वाले अथवा रोगग्रस्त तथा पर-स्त्रियों से संबंध रखने वाले पति की भी आज्ञा का पालन नहीं करे, उसे वस्त्राभूषण उतारकर (अर्थात् निर्वस्त्र करके) तीन माह के लिए अलग कर देना चाहिए। (अध्याय-9, मंत्र-77)।

(6) संपत्ति, मिल्कियत के अधिकार और दावों के लिए, शूद्र की स्त्रियाँ भी 'दास' हैं। स्त्री को संपत्ति रखने का अधिकार नहीं है। स्त्री की संपत्ति का मालिक उसका पति, पुत्र या पिता है। (अध्याय-9, मंत्र-416)।

(7) असत्य जिस तरह अपवित्र है, उसी भाँति स्त्रियाँ भी अपवित्र हैं। यानी, पढ़ने का, पढ़ाने का, वेद-मंत्र बोलने का या उपनयन का स्त्रियों को अधिकार नहीं है। (अध्याय-2, मंत्र-66;)।

(8) स्त्रियाँ नर्कगामिनी होने के कारण वे यज्ञ-कार्य या दैनिक अग्निहोत्र भी नहीं कर सकतीं। (अध्याय-11, मंत्र-36 एवं 37)।

(9) यज्ञ-कार्य करने वाली या वेद मंत्र बोलने वाली स्त्रियों से किसी ब्राह्मण को भोजन नहीं लेना चाहिए। स्त्रियों द्वारा किए हुए सभी यज्ञ-कार्य अशुभ होने से देवों को स्वीकार्य नहीं हैं। (अध्याय-4, मंत्र-205 एवं 206)।

(10) स्त्री केवल शैया, आभूषण और वस्त्रों को ही प्रेम करने वाली है। वह वासनायुक्त, बेईमान, ईर्ष्यालु और दुराचारी है। (अध्याय-9, मंत्र-17)।

(11) स्त्रियों को जीवन भर पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए। (अध्याय-5, मंत्र-115)। पति सदाचारहीन हो, अन्य स्त्रियों में आसक्त हो, दुर्गुणों से भरा हुआ हो , नपुंसक हो, जैसा भी हो, फिर भी स्त्री को पतिव्रता बनकर उसे देव की तरह पूजना चाहिए। (अध्याय-5, मंत्र-154)।

मनुस्मृति में स्त्रियों का जमकर चरित्रहनन किया गया है। वहाँ उसे विलासिनी, कामपिपासु, चंचलचित्त इत्यादि न जाने क्या-क्या कहा गया है। इस प्रकार स्त्री की छवि बिगाड़ने वाला सबसे बड़ा ग्रंथ बनकर मनुस्मृति सामने आता है। हिंदू धर्म में मनुस्मृति को लगभग कोड ऑफ़ कंडक्ट का दर्जा हासिल है। इसलिए सदियों से इसका प्रभाव हिंदू-समाज पर निरंतर पड़ता आ रहा है।

2.2.6. पुराणों में स्त्रियों की स्थिति

पुराण-काल में स्त्रियों को देवी के रूप में प्रकल्पित किए जाने के उदाहरण मिलते हैं। पहले मार्कंडेय पुराण के 'देवी-माहात्म्य' और फिर 'देवी-भागवत पुराण' में स्त्री को देवी के रूप में प्रकल्पित किए जाने की स्थिति देखी जाती है। इसे हिंदू धर्म की 'शक्ति-परंपरा' के बतौर देखा जाता है। इस धारणा के अनुसार इस सृष्टि की अधिष्ठात्री शक्ति देवी-स्वरूप है। उसका वर्चस्व बहुआयामी है। वह असुरों और पाप का सर्वनाश करने वाली है। उसके विभिन्न रूप हैं। वह दुर्गा भी है, चंडिका भी है, अंबिका भी है, भद्रकाली भी है, इश्वरी, भगवती, श्री व देवी भी है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रारूपों में भी स्त्री-अधिष्ठान

प्रकल्पित किया गया, जैसे- लक्ष्मी धन-संपदा और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी और सरस्वती ज्ञान, प्रतिभा, कला, संस्कृति इत्यादि की अधिष्ठात्री देवी मानी गई।

पुराणों की इस धारणा की उत्पत्ति स्त्री को शक्तिशाली बनाने एवं मानने के उद्देश्य से हुई प्रतीत होती है। जीवन की लगभग समस्त सरणियाँ इनमें सम्मिलित हैं। आगे आने वाले समय में इन रूपकों और मिथकों का भारी प्रभाव हिंदू जनमानस पर पड़ा।

2.2.7. सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि प्राचीन हिंदू धर्म-ग्रंथों में विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में स्त्रियों की स्थिति क्या थी! वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों, स्मृति-ग्रंथों, पुराणों इत्यादि में परंपरागत रूप से स्त्रियों से जुड़े विभिन्न मसलों, मुद्दों इत्यादि पर क्या मान्यताएँ प्रचलित रही हैं। ये मुद्दे हैं- स्त्री और शिक्षा, विवाह, पुनर्विवाह, दहेज़-प्रथा, वैधव्य, सती प्रथा, विवाहेतर संबंध, पहनावा एवं प्रतीक-चिह्न; इत्यादि।

इस इकाई में हमने देखा कि वैदिक काल में स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र एवं स्वायत्त थीं। उन्हें न केवल शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार था, अपितु अपने लिए अपनी स्वयं की इच्छा से वर चुनने का अधिकार भी था। स्त्रियाँ पुनर्विवाह भी कर सकती थीं और विधवा-विवाह भी प्रचलित थे। वेदों और उपनिषदों में लगभग यही स्थिति थी।

महाकाव्य-काल में भी स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी, यद्यपि धीरे-धीरे उसमें गिरावट आना शुरू हो गई। रामायण में सीता और महाभारत में द्रौपदी की स्थिति से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि स्त्रियों की स्थिति बदतर होती जा रही है, सीता और द्रौपदी दोनों पुरुष-प्रधानतावादी व्यवस्था के कष्ट भुगतती देखी जा सकती हैं। यद्यपि मोटे तौर पर स्त्रियों के अनेकानेक अधिकार महाकाव्य-काल में सुरक्षित थे। कालांतर में इन स्थितियों में परिवर्तन उपस्थित हुआ।

स्मृति-ग्रंथों में स्त्रियों के अधिकारों को एक प्रकार से नेस्तनाबूद कर दिया गया। हिंदू धर्म में पहली बार स्त्रियों को दूसरे दर्जे के नागरिक जैसी स्थिति में पहुँचा दिया गया था। स्त्रियों के वे समस्त अधिकार छीन लिए गए जो अब तक उसे प्रदत्त थे। शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार, स्वयंवर का अधिकार, पुनर्विवाह, विधवा-विवाह, इत्यादि सारे अधिकार छीन लिए गए। उसे स्वतंत्रता के अयोग्य घोषित कर दिया गया तथा पूरी तरह पुरुष के अधीन एवं अध्यधीन कर दिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण-काल में स्मृतियों की क्षति-पूर्ति करते हुए स्त्री को देवी का रूप प्रदान कर महत्व देने की कोशिशें हुईं, किंतु स्मृति-ग्रंथों की स्थापनाएँ इतनी जटिल और सर्वग्रासी रहीं कि आगे चलकर उन पर पार नहीं पाया जा सका। आज के आधुनिक युग में भी ये धारणाएँ अधिकांशतः वैसी ही चल रहीं हैं।

2.2.8. बोध प्रश्न

1. हिंदू धर्म में स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट किए जाने की रूपरेखा स्पष्ट कीजिए।

2. वैदिक युग में स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का विवरण दीजिए।

3. स्मृति ग्रंथों ने स्त्रियों के समस्त अधिकार छीनकर उन्हें पुरुषों के अधीन बना दिया। इस कथन की विवेचना
कीजिए।

4. महाकाव्यों में स्त्रियों की स्थिति पर टिप्पणी लिखिए।

5. पुराण-काल में स्त्रियों की स्थिति पर टिप्पणी लिखिए।

2.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

खंड-2 : मध्यकालीन भारत और स्त्री
इकाई-3 : भक्ति आंदोलन और स्त्री

इकाई की रूपरेखा

2.3.1. उद्देश्य
2.3.2. प्रस्तावना
2.3.3. भक्ति आंदोलन का इतिहास, उद्भव एवं विकास
2.3.4. भक्ति आंदोलन में स्त्रियाँ
2.3.5. प्रमुख स्त्री भक्त कवयित्रियों का परिचय
2.3.6. भक्ति आंदोलन और स्त्री : विभिन्न विमर्श
2.3.7. सारांश
2.3.8. बोध प्रश्न

2.3.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य भक्ति आंदोलन पर जेंडर (लिंग) की दृष्टि से विचार करना है। भक्ति आंदोलन पर जेंडर (लिंग) की दृष्टि से विचार करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं

1. भक्ति आंदोलन के विकास में स्त्रियों की भूमिका क्या थी?
2. भक्ति आंदोलन स्त्रियों में कितना लोकप्रिय था?
3. भक्ति आंदोलन में स्त्रियों के कौन-कौन से मुद्दे उभरकर सामने आए व उन पर किस प्रकार क्या विचार हुआ?
4. भक्ति आंदोलन में कौन-कौन सी प्रमुख कवयित्रियाँ हुईं? ऐतिहासिक रूप से इन कवयित्रियों का महत्व क्या है?
5. भक्ति आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी का आम जनता पर क्या प्रभाव पड़ा व इसकी क्या उपलब्धियाँ रहीं?

इन पाँच बिंदुओं के प्रकाश में इस इकाई की विषयवस्तु विश्लेषित की जा सकती है। आगे विषय-विस्तार के चारों बिंदुओं के अंतर्गत इन बिंदुओं पर चर्चा की जाएगी।

2.3.2.प्रस्तावना

इस इकाई की प्रस्तावना यह है कि भक्ति आंदोलन का जेंडर की दृष्टि से अध्ययन कैसे किया जा सकता है। भक्ति आंदोलन का स्त्री विषयक दृष्टिकोण क्या है? भक्ति आंदोलन स्त्रियों को कितना स्थान देता है? भक्ति आंदोलन के प्रभावस्वरूप स्त्रियों की नियति में क्या अंतर आया।

विज्ञ दृष्टि से परीक्षा की जाए तो ज्ञात होगा कि भक्ति आंदोलन में स्त्रियों की भी पर्याप्त महत्वपूर्ण भूमिका थी। न केवल अनेक स्त्री भक्त कवयित्रियाँ इस आंदोलन ने दीं, बल्कि भक्ति आंदोलन की अंतर्वस्तु को भी इन कवयित्रियों ने परिवर्तित किया। स्त्री के लिए बराबरी की न केवल माँग उठी, अपितु अनेकत्र इसे व्यवहार में भी लाया गया। अनेक स्त्रियों के इस आंदोलन में आने का परिणाम यह हुआ कि आम स्त्रियाँ भी भक्ति-तत्व से जुड़ीं। भक्ति आंदोलन जनतांत्रिकता की स्थापना करने में सहायक सिद्ध हुआ, यद्यपि मध्यकाल में राज्यसत्ता सामंतवादी थी, लेकिन भक्ति आंदोलन चूँकि एक जन आंदोलन था,

अतः राज्य की परवाह वह करता नहीं था। भक्ति आंदोलन की उपलब्धि ही यह है कि इसने जनता को बड़े पैमाने पर समानता और सह-अस्तित्व का संदेश दिया। इस समानता और सह-अस्तित्व में जेंडरगत समानता और सह-अस्तित्व की स्थितियाँ भी शामिल थीं।

इस इकाई की प्रस्तावना वस्तुतः यही है कि स्त्रियों के आने से इस आंदोलन की अंतर्वस्तु में पर्याप्त अंतर आया। पुरुष-वर्चस्व और पितृसत्ता को चुनौती दी गई, सामंतवाद के विरुद्ध वातावरण बना। प्रोफेसर जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है-"स्त्री कवयित्रियों ने पुंसवादी नजरिए का अपने तरीके से विरोध किया, उसका पहला प्रभावी रूप था संत समाज में स्त्रियों के रूप में मौजूदगी।" स्त्रियों की उपस्थिति किस प्रकार से सारे परिदृश्य को बदल देती है, भक्ति आंदोलन इसका अद्वितीय उदाहरण है। सामान्य तौर पर भक्ति/धर्म को स्त्री-विरोधी कहा जाता है। अनेकानेक संत और भक्त कवियों ने स्त्री को बराबर भला-बुरा कहा। स्त्री को नरक का द्वार कहा, उसे माया, ठगिनी, पापिनी और न जाने क्या-क्या कहा, लेकिन ऐसा वे तभी कहते थे, जब वहाँ कोई स्त्री न होती हो। स्त्री की उपस्थिति में उनका स्वर बदल जाता था। स्त्री संत कवयित्रियों ने इस पुरुषवादी चिंतन को चुनौती दी। हम देखते हैं कि भक्ति-काव्य में स्त्री की पीड़ा, दर्द, विडंबना, आकांक्षाएँ, स्वप्न इत्यादि अवयव पर्याप्त मात्रा और संख्या में मौजूद हैं।

2.3.3. भक्ति आंदोलन का इतिहास, उद्भव एवं विकास

भक्ति आंदोलन एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन था, जिसका उद्भव दक्षिण में हुआ। उत्तर भारत से बहुत पहले भक्ति का प्रादुर्भाव दक्षिण में हो चुका था। दक्षिण से ही यह उत्तर भारत में आया। इसके विषय में कहा गया है कि –

भक्ति द्रविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट कियो कबीर ने, सप्त द्वीप नव खंड।।

इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है "उत्तर भारत में जब वैष्णव भक्तों का जमाना आया उसके पहले ही दक्षिण के आलवार संतों में भक्ति का बहुत कुछ विकास हो चुका था और वहीं से भक्ति की लहर उत्तर भारत में पहुँची।" आलवार संतों के साथ नयनार संतों का भी उल्लेख आता है। डॉ सुनीता गुप्ता ने लिखा है, "भक्ति आंदोलन का प्रारंभ आठवीं सदी के पूर्वार्द्ध में तमिल आलवार व नयनार संतों द्वारा हुआ।" इसके बाद भक्ति आंदोलन के प्रसार और दक्षिण से उत्तर आने और अखिल भारतीय स्तर पर फैलने का विवरण देती हुई वे लिखती हैं, "तमिल के बाद बारहवीं सदी में कर्नाटक में इसका प्रसार हुआ और बारहवीं से सत्रहवीं सदी तक महाराष्ट्र में यह फैला और बंगाल, उड़ीसा व असम आदि पूर्वोत्तर प्रांतों को इसने पंद्रहवीं शताब्दी में स्पर्श किया। पंद्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच ही इसने हिंदी प्रदेशों तथा राजस्थान, गुजरात, पंजाब व कश्मीर में प्रवेश किया। इस प्रकार भक्ति आंदोलन मध्यकाल में दक्षिण से लेकर पूर्वोत्तर तथा मध्यवर्ती व उत्तर- हर दिशा को स्पर्श करता है।"

भक्ति आंदोलन के उद्भव की स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए शहनाज बानो लिखती हैं, "यह वह समय था जब भारतीय समाज इतिहास की अनेक संक्रांतियों के बीच से गुज़र रहा था। राजनैतिक अव्यवस्था एवं सामाजिक उत्पीड़न अपने चरम पर था। अनेक प्रकार की कुप्रथाओं ने जड़ें जमा ली थीं तथा धर्म बाह्याडम्बर और निरर्थक कर्मकांड से आक्रांत हो गया था। ऐसे समय में दक्षिण भारत के साथ-साथ उत्तर भारत में भी भक्ति का उन्मेष हुआ और भक्ति के विविध रूप सामने आए. रामानुज और मध्वाचार्य तथा निम्बार्क ने अद्वैतवाद-मायावाद का खंडन करते हुए भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया और अपने-अपने संप्रदायों की स्थापना करके उसके संघटित प्रचार का उपक्रम किया। इन सभी ने उत्तर भारत

में अपने केंद्र स्थापित करके भक्ति आंदोलन को गति दी। भक्ति आंदोलन एक ऐसे धार्मिक आंदोलन के रूप में सामने आया, जो भावना पर बल देता था। यह भावना के धरातल पर समानता को प्रमुख मानता था।"

दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन से उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन में कतिपय मूलगामी अंतर हैं। उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन में वर्णाश्रम व्यवस्था, जातिवाद इत्यादि पर आधारित भेदभाव का विरोध है। बाह्याडंबर तथा कर्मकांड का भी विरोध है। शोधकर्ताओं का मानना है कि ऐसा उत्तर भारत में नाथों और सिद्धों के प्रभावस्वरूप घटित हुआ। शहनाज बानो ने लिखा है, "उत्तर भारत में भक्ति की विचारधारा तो दक्षिण से आई, लेकिन वह यहाँ पर खरे, आग्रही, विद्रोही तथा आक्रामक रूप में उपस्थित हुई। इसके लिए नाथ-सिद्धों की आत्मविश्वासी और वर्णव्यवस्था का तीव्र विरोध करने वाली परंपरा उत्तरदायी है।" भक्ति काल पर हुई नवीनतम शोधों का भी यही निष्कर्ष है कि दक्षिण और उत्तर के भक्ति आंदोलन के स्वरूप और अंतर्वस्तु में अंतर है और यह अंतर नाथों और सिद्धों के प्रभावस्वरूप उपस्थित हुआ। डॉ. सेवा सिंह की पुस्तक 'भक्ति और भक्ति आंदोलन' की भूमिका 'भक्ति, भक्तीकरण और भक्तिवादी प्रतिक्रियावाद' में डॉ. विनोद शाही ने लिखा है, "भक्ति का मूल चरित्र ब्राह्मणवादी है और सत्तामूलक संस्कृतीकरण की विचारधारा की तरह अपना विकास करती है। यह बात पूर्ववत् बनी रहती है, अंतर यह सामने आता है कि उत्तर भारत में अब तक सिद्धों और नाथों के व्यापक प्रभाव के समानांतर सूफियों की मार्फत इस्लाम का प्रभाव भी जनमानस पर स्पष्ट नज़र आता है।"

भक्ति आंदोलन के उद्भव एवं विकास और व्यापक प्रसार के मूलभूत कारण अनेकानेक रहे हैं। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक इत्यादि, किंतु सामाजिक कारण अत्यंत प्रबल थे। इसके परिणाम भी मूलतः सामाजिक ही रहे। इसके मूल में वर्णाश्रम व्यवस्था एवं जाति-प्रथा का विरोध अंत:प्रेरणा की तरह काम कर रहा था। के. दामोदरन ने यह उचित ही लिखा है, "समय की माँग थी कि जाति-पांति और धर्मों के भेदभाव पर आधारित तुच्छ सामाजिक विभाजनों का, जो घरेलू बाज़ार के विकास और परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के कारण अब एकदम निरर्थक हो गये थे, अंत किया जाए। ईश्वर के सम्मुख सभी प्राणियों की समानता का सिद्धांत उस नई सामाजिक चेतना का द्योतक था, जो सामंती शोषण के विरुद्ध जूझने वाले किसानों और कारीगरों में फैल रही थी। व्यक्ति के गुणों और योग्यताओं पर जोर, जो ऊँची जाति या किसी विशिष्ट वंश में जन्म लेने के फलस्वरूप प्राप्त सुविधाओं के विपरीत था, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ऐतिहासिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति थी। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यह नारा, एक नए पूँजीपति वर्ग का, जिसका कि उदय हो ही रहा था, नारा था। ये विचार धार्मिक अर्थों में भी, निःसंदेह, मध्ययुग की उन परिस्थितियों को देखते हुए, जिनमें जाति-पाति की स्पर्धा और अंधविश्वासों के फलस्वरूप समाज का प्रगति करना असंभव हो गया था, प्रगतिशील थे।"

2.3.4. भक्ति आंदोलन में स्त्रियाँ

भक्ति आंदोलन में दो वर्गों को सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनमें एक है- दलित तथा कामगार वर्ग तथा दूसरा है- स्त्री। इस्लाम/मुसलमानों के भारत में आने का एक बड़ा परिणाम यह था कि यहाँ शिल्पकारों की माँग बढ़ी। ऐसी स्थिति में कामगारों/शिल्कारों/श्रम-शक्ति के रूप में स्त्रियों की माँग भी बढ़ी। इस संबंध में डॉ सुनीता गुप्ता ने इरफान हबीब के हवाले से लिखा है, "मुसलमानों के आगमन के साथ आर्थिक स्थितियाँ भी बदलती हैं और शिल्पकारों की माँग बढती है। इन शिल्पकारों के जीवन में आर्थिक समृद्धि भी आई थी। गैर-सवर्ण समाज में स्त्री सदैव एक उपयोगी श्रम-शक्ति के रूप में रही है।

नवीन परिस्थितियों में इस स्त्री-श्रम की माँग बढ़ी और इनकी आर्थिक दशा में सुधार भी हुआ। निश्चय ही इन नवीन परिस्थितियों ने उन्हें आत्मविश्वास से दीप्त किया।" जीवन में व्यावहारिक तौर पर भौतिक आधार उपलब्ध होने पर इन स्त्रियों की प्रतिभा का विस्फोट सामने आया। स्त्रियों के साथ दलितों में भी यहीं स्थिति देखी गई। डॉ. सुनीता गुप्ता लिखती हैं, "इन परिस्थितियों के आलोक में देखा जा सकता है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में फूट पड़ने वाला दलित स्त्री का स्वर अनायास नहीं है। स्त्रियाँ जब इस प्रकार सक्रिय होती हैं तो अपने मानवीय अधिकारों तथा समानता की माँग स्वतः उभरकर सामने आती है। पितृसत्ता को चुनौती लगभग ऐसी ही स्थितियों में दी जाती है। इस संबंध में सुसी थारु का यह अभिमत ध्यान दिए जाने योग्य है, "भक्ति आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी देखकर यह अनुमान करने को जी चाहता है कि इसके द्वारा पितृसत्ता पर सवाल उठाए गए और सामान्य स्त्रियों की ज़िंदगी बदल गई। ऐसा संभव है कि इन वर्गों की नवीन आर्थिक समृद्धि ने इनमें गरिमा और आत्मविश्वास की ताकत दी।"

भक्ति आंदोलन में अखिल भारतीय स्तर पर काव्य-सृजन में स्त्रियों की भागीदारी रही। उत्तर से लेकर दक्षिण तक सर्वत्र स्त्री-कवयित्रियों की उपस्थिति ध्यान आकृष्ट करती है। यहाँ प्रायः हर वर्ग की स्त्रियाँ देखी जा सकती हैं। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की प्रारंभिक रचनाकार स्त्रियाँ ही रही हैं, जैसे- मराठी में महदंबा, तेलुगु में मोल्ल, कश्मीर में लल्लद्यद, कन्नड़ में अक्क महादेवी, बांग्ला में माधवीदास आदि। इनके अतिरिक्त तमिल की आंडाल, कन्नड़ की कटेक्काल अम्मैयार, मराठी की मुक्ताबाई, महदायिसा और जनाबाई, तेलुगु की आतूकूरी मोल्ला, कन्नड़ की हेलवनकट्टे गिरियम्मा, बांगला की चन्द्रावती, रामी आदि स्त्री-रचनाकारों ने भारतीय भाषाओं की इस काव्य-परंपरा को आगे बढ़ाया।

इन स्त्रियों के विषय में कुछ रोचक तथ्य ध्यान देने योग्य हैं। जैसे यह कि ये स्त्रियाँ अधिकांशतः सामान्य वित्त वर्गों से जुड़ी हुई थीं। ये निर्धन वर्गों से आती थीं। ये या तो अविवाहित थीं या विवाहित थीं तो भी विवाह के घेरे को तोड़कर उससे बाहर आ गई थीं। इन स्त्रियों की रचनाओं में स्त्री होने की पीड़ा शिद्दत से महसूस की जा सकती है। इनमें प्रतिरोध का स्वर अत्यंत प्रबल है। डॉ सुनीता गुप्ता के शब्दों में, "इसमें अधिकतर स्त्रियाँ वे हैं, जो या तो आजीवन अविवाहित रहीं, या विवाह करने के बाद उसके घेरे को तोड़कर बाहर आईं स्त्री होने की पीड़ा को इन्होंने किसी-न-किसी स्तर पर अवश्य महसूस किया, चाहे वे सवर्ण वर्ग की ही क्यों न हों। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इनमें बड़ी संख्या उन स्त्रियों की है, जो सामान्य वर्ग अथवा निर्धन परिवार से आती हैं। सबसे बड़ी बात कि इन स्त्रियों का स्वर न केवल आत्मविश्वास से परिपूर्ण है, बल्कि भक्ति काल में ये स्त्रियाँ ही हैं, जिनकी रचनाओं में सामाजिक पक्ष अधिक स्पष्ट है। अन्याय के प्रति प्रतिरोध का स्वर तथा स्त्रीजनोचित मर्यादा का डंके की चोट पर उल्लंघन- ये इनकी कविताओं को समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान बना देते हैं।"

भक्तिकाल का सूत्रवाक्य था- समानता। यह समानता प्रायः सभी क्षेत्रों में थी। स्त्री के लिए यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवसर था। सामाजिक एवं जातिगत समानता के साथ-साथ लैंगिक समानता की बात भी महत्व के साथ उठी। भक्ति के आवरण में स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा सामने आई, जिसका भरपूर लाभ स्त्रियों ने उठाया। इस आंदोलन का सबसे अधिक लाभ समाज के दलित, उपेक्षित तबकों को मिला, जिनमें पुरुषों के साथ-साथ इन वर्गों की स्त्रियाँ भी थीं। अनेक उच्च वर्ग की स्त्रियों ने भी इस आंदोलन से समानता का पाठ सीखा। शहनाज़ बानो ने यह ठीक लिखा, "भक्ति आंदोलन ने जहाँ सभी वर्णों की समानता का नारा दिया, वहाँ भक्ति और आध्यात्मिकता की आड़ में स्त्री को भी अपनी आवाज सुनाने का अवसर एक सीमा तक मिला। स्त्रियों को भी 'भक्ति आंदोलन' ने अपनी आवाज को बुलंद

करने का अवसर दिया।" शहनाज बानो ने अपने शोध में ऐसी अनेकानेक गुमनाम कवयित्रियों के नाम उल्लिखित किए हैं, जिनका उल्लेख बहुधा भक्तिकाल संबंधी ग्रंथों में नहीं मिलता। उनका यह विवरण इस प्रकार है- "बड़ी संख्या में स्त्री कवयित्रियाँ हुईं सीता सहचरी, झाली, सुमति, शोभा, भटियानी, गंगा, गौरी, उबीठा, गोपाली, गनेशदेई, मानमती, सत्यभामा, यमुना, कोली, रमा, मृगा, जुगजेवा, कीकी, कमला, देवकी, हीरा, हरिचेरी, इत्यादि। इसके अलावा अलबेली अलि, इन्द्रमती, उमा, कविरानी चौबे, कृष्णावती, केशव पुत्रवधू, मुक्ताबाई, पार्वती,सहजोबाई, दयाबाई, गंगाबाई, रानी सोन कुंवरि, वृषभानु, कुंवरि, रसिक बिहारी बनी ठनी, रानी बांकावती, ताज बीबी, रत्न कुंवरि, मधुर अली, प्रताप कुंवरि बाई, प्रवीणपातुर, रूपवती बेगम, तीन तरंग इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियाँ भी आंदोलन में सामने आईं, जो समाज की दृष्टि स्व पतित थीं।"

2.3.5. प्रमुख स्त्री भक्त-कवयित्रियाँ / प्रमुख स्त्री भक्त-कवयित्रियों का परिचय

हिंदी की स्त्री भक्त कवयित्रियों को निम्नलिखित कोटियों में वर्गीकृत कर अध्ययित किया जा सकता है-

2.3.5.1. राजघरानों से जुड़ी स्त्री भक्त कवयित्रियाँ

मध्यकाल के स्त्री-लेखन का काफी बड़ा हिस्सा वह है, जो राजघरानों से जुड़ी कवयित्रियों द्वारा लिखा गया है। ये स्त्री कवयित्रियाँ भक्ति भाव या भक्ति-संवेदना से संचालित हैं। इन्हें भक्त कवयित्री कहा जाता है। राजघरानों से जुड़ी कवयित्रियों की रचनाएँ अधिकांशतः कृष्ण भक्तिपरक हैं। इनमें कुछ ही रामभक्ति काव्यधारा से जुड़ी दिखाई देती हैं। इस संबंध में डॉ. सुनीता गुप्ता का यह कथन उल्लेखनीय है, "मध्यकाल की स्त्री रचनाकारों ने कृष्ण को राम से अधिक अपने निकट पाया। इस पर उस स्त्री लोकमानस का प्रभाव माना जा सकता है, जो राम को अग्नि परीक्षा और सीता वनवास के लिए क्षमा नहीं कर पाया। इसके विपरीत कृष्ण के चरित्र ने स्त्रियों को अधिक आकृष्ट किया। कृष्ण के व्यक्तित्व में स्त्री ने अपने को सुरक्षित पाया। वे अत्याचारियों का दमन करने वाले हैं, लोकरक्षक भी हैं और स्त्रियों के सखा भी हैं।" राजघरानों से जुड़ी स्त्री भक्त कवयित्रियों में ये प्रतिभाएँ प्रमुख हैं- मीरा बाई (संवत 1573), चंपा दे (संवत 1650), छत्र कुंवरि बाई (संवत 1715), रानी बख्त कुंवरि (संवत 1734), ब्रजदासी रानी बांकावती (सं. 1760), प्रतापबाला (सं. 1813), सुंदरीकली (सं. 1900 से पूर्व), प्रताप कुंवरि बाई (सं. 1900 से पूर्व), बाघेली विष्णुप्रसाद कुंवरि (सं. 1903), जुगलप्रिया (सं. 1900), रत्नकुंवरि बाई (सं. 1900), तुलछराय, रघुवंश कुमारी, रघुराज कुंवरि; आदि.

2.3.5.2. संत कवयित्रियाँ

संत कवयित्रियों में पाँच कवयित्रियों का नाम प्रमुखता से लिया जाता है- उमा, पार्वती, दयाबाई, वीरा और सहजोबाई।

2.3.5.3. सामान्य घरों की स्त्री कवयित्रियाँ

राजघरानों से अलग सामान्य घरों की स्त्रियों ने भी बड़ी संख्या में काव्य-रचना के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। ये स्त्रियाँ समाज के विभिन्न वर्गों से संबंधित रही हैं।

इन कवयित्रियों में ये प्रमुख हैं- गंगाबाई, विट्ठल गिरधरन (विट्ठलदास की शिष्या- सं. 1600 के आस-पास), रत्नावली (तुलसीदास की पत्नी सं. 1613), अलबेली अली, रूपमती बेगम (सं. 1637), प्रवीण पातुर राय (सं. 1650), इंदुमती (सं. 1700), ताज (सं. 1700), तुलछराय, रत्नकुंवरि बीबी, कविरानी चौबे, शेख आलम रंगरेजन (सं. 1753), साईं (सं. 1770), वीरां (सं. 1800), रसिक

बिहारी/बनी ठनी (सं.1800), सुंदरकली (सं. 1900), कृष्णावती (सं.1900), चंद्रकला (सं. 1900), माधवी आदि.

2.3.5.4. चारण कवयित्रियाँ

चारण कवयित्रियों में इनके नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं- झीमा चारिणी (सं. 1460), पद्मा चारिणी (सं.1654), बिरजू बाई (1743) आदि। भक्ति आंदोलन से जुड़ी कुछ प्रमुख कवयित्रियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है -

1. मीरा बाई

मीराबाई कृष्ण भक्ति शाखा की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मानी जाती हैं। मीरा का जन्म संवत् 1573 में जोधपुर–राजस्थान के चौकड़ी गाँव में हुआ था। मीरा का विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही समय बाद इनके पति का देहांत हो गया था। किंतु परंपरानुसार मीरा ने पति की चिता के साथ सती होने से मना कर दिया। यह मीरा का विद्रोह था।

मीरा ने इन चार ग्रंथों की रचना की थी- 1. नरसी का मायरा, 2. गीतगोविंद टीका, 3. राग गोविंद 4. राग सोरठ के पद। संपूर्ण भक्ति आंदोलन में मीराबाई का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है, "इस दौर की सबसे महत्वपूर्ण कवयित्री होने के कारण मीराबाई का स्थान सबसे ऊपर है। निजी जीवन के अनुभवों एवं अनुभूतियों की सघन अभिव्यक्ति उनकी कविता में मिलती है। इनके काव्य में अपूर्व भाव-विह्वलता और आत्मसमर्पण का भाव है। इसी के कारण उनकी चारों ओर लोकप्रियता बढ़ी।"

मीराबाई की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है, उनके व्यक्तित्व में परंपर विरोधी गुणों और प्रवृत्तियों का समाहार। इस विशेषता ने उन्हें सबका प्रिय बना दिया। डॉ. सुनीता गुप्ता ने मीरा की इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "मीरा का व्यक्तित्व समूचे मध्यकालीन परिवेश में अपनी विलक्षण आभा से चमत्कृत करता है। मीरा का संघर्ष, उनकी अपराजेयता, निर्भयता व उनका साहस अद्भुत है। उनमें परस्पर विरोधी गुणों का सहज व विलक्षण समाहार दिखलाई पड़ता है- एक तरफ भक्ति-विह्वलता तो दूसरी तरफ अपराजेय जीवन-संघर्ष, एक तरफ मिलन-कातरता तो दूसरी तरफ निर्भयता, एक तरफ उनका निश्छल समर्पण है, तो दूसरी तरफ अद्भुत साहस- ये सारी चीजें मीरा के व्यक्तित्व में एकाकार हो गई हैं।"

मीरा धार्मिकता के आवरण में पितृसत्ता का विरोध करने वाली कवयित्री की प्रतीक रही हैं। भक्ति के सहारे स्त्री-चेतना और स्त्री-अस्मिता की अभिव्यक्ति मीरा ने सबसे सशक्त ढंग से की. इस संबंध में मीरा को लक्ष्य कर डॉ. शहनाज़ बानो लिखती हैं, "ये वे कवयित्रियाँ हैं, जिन्होंने अनौपचारिक और घरेलू माहौल में भक्तिपरक रचनाएँ कीं। इन्होने स्त्री चेतना और स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति के लिए 'भक्ति' का सहारा अधिकतर प्रसंगों में लिया। पितृसत्ता का विरोध धार्मिकता के आवरण में ये कवयित्रियाँ करती हैं। सामाजिक विभेद और स्त्री की अधिकार-हीनता के विरोध के लिए 'भक्ति' साधन बनी।"

मीरा भक्तिकाल की एक ऐसी कवयित्री हैं, जिनका प्रभाव एवं स्मृति समय की सीमाएँ लाँघकर चली हैं। वे आज इतने लंबे समय के पश्चात् भी न केवल साहित्य अपितु लोक की परंपरा में भी निरंतर लोकप्रिय रही हैं। मीरा की हैसियत ठीक वैसी है, जैसी कबीर की है। डॉ. सुमन राजे ने यह ठीक ही लिखा है, "हिंदी प्रदेश के एक हजार वर्षों के इतिहास में जिस तरह कबीर अकेले हैं, उसी तरह मीराबाई भी दूसरी नहीं हैं।"

उदाहरण के रूप में मीरा का यह पद उल्लेखनीय है-

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।

मोहिनी मूरत, साँवरि सुरत, नैना बने बिसाल।।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
क्षुद्र घंटिका कटि-तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

2. ताज

मीरा के बाद विद्रोहिणी कवयित्री के रूप में ताज का नाम सबसे ऊपर आता है। ये मुसलमान थीं, लेकिन कृष्ण की भक्त थी। मुसलमान होकर भी कृष्ण का भक्त होना ही एक तरह का विद्रोह है। ताज बीवी ने पद तो लिखे ही, पदों के अलावा 'बीवी बाँदी का झगरा' तथा 'बारहमासा' भी उनकी कृतियाँ मानी जाती है। ताज ने धर्म, जाति, कुल, वंश सबकी सीमाओं से ऊपर उठकर कृष्ण भक्ति में डूबने का उदाहरण प्रस्तुत किया। वह मुसलमान होकर भी परम वैष्णव थीं। पता नहीं धर्म-परिवर्तन उन्होंने किया या नहीं, लेकिन यह निश्चित है कि कृष्ण-भक्त हिंदू होना उन्हें अत्यंत प्रिय था। डॉ. शहनाज बानो ने लिखा है, "उनके लिए लोक और शास्त्र व्यर्थ था। मध्यकालीन धार्मिक संकीर्णताओं तथा सामाजिक बंधनों का अतिक्रमण ताज ने जिस रचनात्मक ढंग से किया है, वह उल्लेखनीय है।"

उदाहरण के लिए ताज की एक रचना प्रस्तुत है-

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निवाजी हूँ भुलानी,
तजे कलमा कुरान साढ़े गुनान गहूँगी मैं।।
स्यामला सलोना सिर ताज कुल्ले दिए।
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान तोरी सूरत पै,
त्वाढ़ नाल प्यारे हिंदुवानी ह्वै रहूँगी मैं।।

3. दयाबाई

दयाबाई संत चरणदास की शिष्या थीं। ये निर्गुण संत कवयित्री थीं। दयाबाई की रचनाएँ अत्यंत भावप्रवण और प्रभावपूर्ण हैं। इनके प्रमुख विषय हैं- ज्ञान, ब्रह्म, विनय, उपदेश, गुरु-महिमा, प्रेम इत्यादि। गुरु की महिमा का अत्यंत विस्तृत वर्णन इन्होंने किया है। दया बाई की दो प्रमुख रचनाएँ उपलब्ध हैं- 'दयाबोध' तथा 'विनयमलिका'। प्रभु के प्रति प्रेम तथा विनय की भाव-विह्वलता सर्वत्र उनमें मिलती है। प्रेम के साथ ज्ञान का भी महिमापूर्ण वर्णन इन्होंने किया है। डॉ. सुनीता गुप्ता ने यह ठीक ही लिखा है- "दयाबाई की रचनाओं में अनुभूति की गहराई व ज्ञान की गंभीरता- दोनों का सुंदर समन्वय हुआ है।"

उदाहरण के लिए दयाबाई का एक छंद प्रस्तुत है -

ज्ञान रूप कौ भयौ प्रकास,
भयौ अविद्या तम कौ नास।
सूझ परत निज रूप अभेद,
सजै मिट्यो जीव को खेद।।

4. सहजोबाई

सहजोबाई भी संत चरणदास की शिष्या थीं। ये दयाबाई की चचेरी बहन थीं। इन्होंने दोहा, चौपाई इत्यादि छंदों में रचनाएँ लिखीं। इन्होंने छंदों में कहीं-कहीं रागों का भी अनुपालन किया है। सहजोबाई की एक ही रचना उपलब्ध है-'सहजप्रकाश'.

सहजोबाई की रचनाएँ अनुभूति/भाव के स्थान पर ज्ञान तत्व से ओत-प्रोत हैं। सहजोबाई भी चूँकि निर्गुणवादी संत कवयित्री थीं इसलिए उनकी काव्यवस्तु भी दयाबाई की जैसी ही है।

सहजोबाई का गुरु-महिमा से संबंधित एक छंद(चौपाई) यहाँ प्रस्तुत है -

राम तजूं पै गुरु न बिसारूँ।
गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ।।
चरनदास पर तन मन वारूँ।
गुरु न तजूं हरि कूँ तजि डारूं।।

5. रसिक बिहारी /बनी ठनी

रसिक बिहारी उर्फ बनी ठनी नागरीदास की दासी थीं। इनकी रचनाएँ 'नागर समुच्चय' में संकलित हैं। बनी ठनी कृष्ण की भक्त थीं। इनकी रचनाएँ माधुर्य से भरी हुई हैं। कृष्ण की विविध लीलाएँ, जन्मोत्सव, पनघट लीला, राधा-कृष्ण का प्रेम, प्रेमावेग, परकीया भाव, रति-चेष्टाएँ, होली इत्यादि इनके प्रिय विषय हैं। स्त्री की व्यापक-शारीरिक एवं वैयक्तिक अनुभूतियों का चित्रण बनी ठनी के काव्य की विशेषता है। इस संबंध में डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है, "स्त्री के शारीरिक एवं वैयक्तिक अनुभूतियों के प्रति आग्रह वस्तुतः प्रगतिशील दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।"

बनी ठनी की कविताएँ अत्यंत ही भावप्रवण हैं। उनकी कविताएँ कृष्ण-प्रेम से ओत-प्रोत हैं। कृष्ण के प्रति उन्मुक्त प्रेम कवयित्री बनी ठनी के अपने स्वयं के उन्मुक्त व्यक्तित्व की सूचना देता है। बनी ठनी की भक्ति का स्वरूप शृंगारपरक है, जिसमें मिलन, विरह, उत्सव, उल्लास, प्रकृति-उत्फुल्लता इत्यादि की प्रधानता दिखाई देती है। राधा-कृष्ण का शृंगारपरक मनोरम वर्णन बनी ठनी में प्रकृष्ट रूप में मिलता है। बनी ठनी के छंदों में राधा और सखियों के माध्यम से स्त्री-जीवन के राग-रंग अभिव्यक्त हुए हैं।

बनी ठनी की सबसे बड़ी उल्लेखनीयता यह है कि उन्होंने 'लली' (लड़की) के जन्म पर बधाई का चित्रण किया है। इस संबंध में डॉ. सुनीता गुप्ता ने लिखा है, "मध्यकाल की समूची स्त्री-कविता पुत्र-जन्म में उल्लास से भरी पड़ी है, किंतु बनी ठनी जी लली के जन्म की बधाई को चित्रित करती हैं। कई पदों में वे राधा के जन्म और बधाई तथा उल्लास का वर्णन करती हैं।" इस संबंध में उन्होंने राधा के जन्म संबंधी यह पदांश भी उद्धृत किया है-

आज बरसाने मंगल गाई।
कुँवरलली कौ जन्म भयौ है घर-घर बाजत बधाई।।

6. शेख आलम रंगरेजन

शेख की कविताएँ 'आलम केलि' में संकलित हैं। शेख मुस्लिम रंगरेजिन थीं, जो कपड़े रँगकर जीवन-यापन करती थीं। शेख की कविता में शृंगार रस की प्रधानता है। परकीया प्रेम और विरहानुभूति इनके काव्य में बहुतायत से हैं। मांसलता अथक शारीरिक प्रेम उनके यहाँ प्रबल है। विरह की अवस्था में आध्यात्मिकता के सहारे जीने की धारणा का शेख ने खंडन किया है। अपने प्रिय से मन की बजाय शारीरिक रूप में मिलना इन्हें ज्यादा प्रिय है।

शेख आलम का यह एक छंद, जिसमें उन्होंने कृष्ण की बाल-छवि एवं बाल-जीवन का सुंदर वर्णन किया है, यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

बीस विधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,
याही काज वाही घर बांसनि की बारी है।
नेकु फिरि ऐहै कैहै दैरी दै जसोदा मोहि,
मो पै हठि माँगै बंसी और कहूँ डारी है।।
'सेख' कहै तुम सिखवौ न कछु राम याहि
झारी गारिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।
संग लाइ भैया नेकु न्यारो न कन्हैया कीजै
बलन बलैया लैकै मैया बलिहारी है।।

7. रत्नावली

प्रसिद्ध कवि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली भक्ति आंदोलन की प्रमुख कवयित्रियों में से एक मानी जाती हैं। रत्नावली की दो रचनाएँ पाई जाती हैं- 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' तथा 'दोहा रत्नावली'.

रत्नावली ने अधिकतर आत्मकथात्मक पद लिखा है। इनमें उनके निजी जीवन की पीड़ा ओर-पोर भरी पड़ी है। एतत्संबंधी उनका एक काव्यांश यहाँ उद्धृत है-

हाय बदरिका बन भई, हों वामा विष बेलि।
रत्नावलि हों नाम की, रसहि दियो बिस मेलि।।
दीनबंधु कर घर पली, दीनबंधु कर छांह।
तऊ भाई हौं दीन अति, पति त्यागी मों बांह।।
सनक सनातन सुकुल कुल, गेह भयो पिय स्याम।
रत्नावलि आभा गई, तुम बिन बन सम गाम।।

2.3.6. भक्ति आंदोलन और स्त्री : विभिन्न विमर्श

भक्ति आंदोलन की विभिन्न धाराओं / शाखाओं में स्त्री के विषय में विविध प्रकार का विचार-चिंतन हुआ है। इस चिंतन एवं विमर्श में परस्पर पर्याप्त अंतर है। इस पूरे विमर्श को निम्नलिखित बिंदुओं में संग्रंथित किया जा सकता है -

1. निर्गुण भक्ति-धारा में स्त्री संबंधी विमर्श
   इसे पुनः दो उपविभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -
   (1) संत भक्ति-धारा में स्त्री-विमर्श
   (2) सूफी भक्ति-धारा में स्त्री-विमर्श
2. सगुण भक्ति-धारा में स्त्री संबंधी विमर्श
   इसे भी दो उपविभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -
   (1) कृष्ण भक्ति-धारा में स्त्री-विमर्श
   (2) राम भक्ति-धारा में स्त्री-विमर्श

इन चारों धाराओं के स्त्री-विमर्श पर संक्षेप में निम्नानुसार अलग-अलग विचार किया जा सकता है -

(1) संत भक्ति-धारा

संत कवि स्त्री को विभिन्न रूपों में चित्रित करते हैं। इनमें से कुछ प्रशंसनीय हैं तो कुछ निंदनीय हैं।

प्रशंसनीय रूप ये हैं -

1. पतिव्रता स्त्री
2. सती
3. दांपत्य में समर्पित स्त्री

निंदनीय रूप ये हैं -

1. स्त्री कामिनी
2. मायारूपिणी स्त्री

संत कवि पतिव्रता, सती तथा दांपत्य में समर्पित स्त्री की प्रशंसा करते नहीं अघाते। लगभग समस्त संत कवि-कवयित्रियों का यही दृष्टिकोण है। वे सच्ची स्त्री उसी को मानते हैं, जो पातिव्रत का ईमानदारी से पालन करती है, और हर हाल में पति की आज्ञा का पालन करती है। यदि ऐसी स्त्री कुरूप हो, तो भी सुंदर कहलाने योग्य है। कबीर, दादू, नानक, रैदास, शेख फरीद, चरणदास, आदि समस्त संत कवियों का यही विचार है। जो स्त्री पतिव्रता नहीं है, वह निंदनीय है। संत कवियों ने पतिव्रता स्त्री पर अलग से वर्गीकृत करके साखियाँ लिखी हैं। उदाहरण के लिए दादू की ये साखियाँ प्रस्तुत हैं –

पतिव्रता ग्रह आपने करे खसम की सेव।
ज्यों राखै त्यों ही रहै, आज्ञाकारी टेव।।
दादू नीच ऊंच कुछ सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोइ सुहागिन कीजिए, रूप न पीजै धोइ।।

इसी प्रकार सती की प्रशंसा करते संत कवि नहीं अघाते। पतिव्रत की चरम स्थिति सतीत्व है। संत सतीत्व को साधना का आदर्श मानते हैं। एक प्रकार से संत कवि सतीत्व को एक प्रतीक या रूपक या दृष्टांत के रूप में ही लेते हैं, जो साधना के चरम आदर्श का प्रतीक-प्रतिरूप है। कबीरदास कहते हैं कि जिस तरह सती अपने मन में तन-मन से प्रियतम को समर्पित होने का सुनिश्चय कर घर से निकलती है, उसी प्रकार साधक को भी हरि की भक्ति में लीन हो जाना चाहिए –

सती जलन कूँ नीकली, चित धरि एकबमेख।
तन मन सौंप्या पीव कूं, अंतरि रही न रेख।।

इसी प्रकार संत साहित्य में दांपत्यभाव भी आत्मा-परमात्मा के संबंधों के वाचक के रूप में प्रचलित रहा है। संत कवियों ने परमात्मा के प्रति अपने समर्पण को अपने पति के प्रति एक स्त्री के प्रेमाकुल समर्पण के समान और परमात्मा से दूर होने की वेदना को एक स्त्री की विरह-वेदना के जैसा निरूपित किया है। संत आत्मा को स्त्री/पत्नी तथा परमात्मा को पति के रूप में चित्रित करते हैं। यहाँ भी संरचना वही परंपरावादी है, जिसमें स्त्री पुरुष का मुँह जोहती रहती है। इस संबंध में कबीर की यह साखी द्रष्टव्य है -

कबीर सुन्दरि यों कहै, सुणि हौ कन्त सुजाण।
बेगि मिलौ तुम आइ करि, नहिं तर तजौं पराण।।

कामिनी तथा मायारूपिणी स्त्री संत कवियों की दृष्टि में भारी निंदनीय है। कामिनी के रूप में प्रकारांतर से संत कवि देहवाद का निषेध करते प्रतीत होते हैं। इसे प्रगतिशील दृष्टिकोण माना जा सकता है। धार्मिक प्रतीकवाद की यह अवधारणा प्रकारांतर से स्त्री-सौंदर्य के प्रतिमानों पर भी नए सिरे से विचार

करने के लिए उत्प्रेरित करती है। इस अवधारणा के तहत कमनीयता या कामुकता स्त्री-सौंदर्य के मापदंड नहीं हैं। मूलतः ये पुरुषवादी पैमाना है।

(2) सूफ़ी भक्ति-धारा

सूफी भक्ति-धारा में स्त्री को अपेक्षाकृत अधिक महत्व का स्थान प्राप्त है। यद्यपि यहाँ भी वस्तुस्थिति से ज्यादा रूपकात्मकता की ही स्थिति है; किंतु यह अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति है। यह स्थिति यह है कि यहाँ स्त्री को आत्मा का नहीं, परमात्मा का प्रतीक-रूपक बनाया गया है। यह अन्य भक्ति-धाराओं से एकदम उलट स्थिति है। अन्य लगभग समस्त भक्ति-प्रणालियों में पुरुष की प्रधानता है। पुरुष ही वहाँ ईश्वर का प्रतीक है। स्त्री उसकी दासी या सेविका या आज्ञाकारिणी या अनुगामिनी है। स्त्री को अधिकांश भक्ति-संप्रदायों में आत्मा का प्रतीक कहा गया है, जो अप्रधान या दोयम है। सामाजिक संरचना की प्रकृति के अनुरूप भक्ति परंपरा में भी स्त्री समान और स्वतंत्र नहीं है। इस दृष्टि सेदेखा जाए तो सूफी काव्य श्लाघ्य और प्रशंसनीय है कि वहाँ उसे परमात्मा का प्रतीक बनाकर उसे सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इस संबंध में डॉ शहनाज़ बानो का यह कथन उद्धरणीय है- "सूफी काव्य में प्रेमाभिव्यंजना के व्यापार में ईश्वर को हमेशा 'स्त्री' का रूपक दिया गया। सूफी प्रेमाख्यानों में इसी प्रकार के ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं, जिनमें स्त्री को महत्ता एवं उत्कृष्ट स्थान दिया गया है।" सूफी कवि जायसी इस संदर्भ में निर्गुण भक्ति की परंपरा में स्त्री को महत्व का स्थान देने वाले सबसे गंभीर कवि के रूप में सामने आते हैं। जायसी स्त्री की पराधीनता की स्थिति का भी दुःख के साथ वर्णन करते हैं तथा इस संबंध में पुरुष-प्रभुत्व को चुनौती भी देते हैं।

(3) कृष्ण भक्ति-धारा

भक्तिकाल के कवियों में कृष्ण भक्ति धारा के कवि स्त्री की स्वतंत्र स्थिति का निरूपण करते हैं। रासलीला के रूपक के माध्यम से यह स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता सामने आई है। सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने स्त्री की इस स्वतंत्रता का वर्णन किया है। राधा तथा गोपियाँ इसकी प्रतिनिधि हैं।

कृष्ण भक्ति धारा में भी स्त्री का निरूपण कई रूपों में हुआ है। इनमें तीन रूप सर्वप्रमुख हैं- पतिव्रता स्त्री, मातृरूपा स्त्री, तथा सखी/प्रेमिका रूप स्त्री।

इन तीनों में सबसे उल्लेखनीय और कृष्ण भक्ति धारा की पहचान स्त्री का सखी या प्रेमिका का रूप है, जो स्त्री की स्वतंत्रता और निर्बंधता का सूचक है। सूरदास ने मुक्त हृदय से स्त्री की इस निर्बंधता का निरूपण किया है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस संबंध में लिखा है कि "घर के बंधन को तोड़कर बाहर निकलने की आकांक्षा का जैसा सहज, स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण सूरदास के यहाँ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।"

सूरदास में राधा परम ब्रह्म की आराध्या के रूप में मान्य है। स्वयं परम ब्रह्म राधा की आराधना करते हैं। इसे सूफी काव्य के साथ तुलना करके देखा जाना दिलचस्प होगा। कृष्ण भक्ति धारा में 'राधा-भाव' एक पारिभाषिक प्रत्यय की भाँति प्रयुक्त होता है। गोपियाँ ईश्वर की आह्लादिनी शक्तियों के रूप में मानी जाती हैं। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कृष्ण भक्त कवि भी स्त्री का इसी रूप में चित्रण करते हैं।

(4) राम भक्ति-धारा

राम भक्ति काव्य धारा में स्त्री के संबंध में लगभग वही बातें रखी गई हैं जो उक्त तीनों धाराओं में आ चुकी हैं। तुलसीदास अपने काव्य में स्त्री की पराधीनता का सहानुभूतिपूर्वक वर्णन अवश्य करते हैं, लेकिन अंततः वे वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करते देखे जाते हैं। तुलसीदास ने पीड़ा के साथ स्त्री की पराधीनता का इस प्रकार वर्णन किया है -

कत बिधि नारि सृजी जग मांही।
पराधीन सपनेहूँ सुख **नाहीं**।।

अन्य भक्त कवियों की भाँति राम भक्ति धारा के कवि भी स्त्री के कामिनी रूप की भर्त्सना करते हैं तथा उसके पतिव्रता रूप का गुणगान करते हैं। कामिनी रूप की भर्त्सना को देहवाद का निषेध माना जा सकता है।

2.3.7. सारांश

इस इकाई में सर्वप्रथम उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है । यहाँ यह प्राथमिकता के साथ देखा गया है कि इतिहास के अंतर्गत इस विषय को अध्ययित किया जाना क्यों आवश्यक है। इतिहास पर जेंडर की दृष्टि से विचार करने पर इस तरह के विषय सामने आते हैं।

उद्देश्य के पश्चात् इस इकाई की प्रस्तावना पर विचार किया गया है। इस इकाई को हम किस विचार-दृष्टि से अध्ययित करें? अर्थात् हमारा प्रस्थान-बिंदु (स्टैंड-पॉइंट) क्या हो? किसी भी विषय पर विचार करने के लिए दृष्टि स्पष्ट व प्रासंगिक होनी चाहिए।

इस इकाई के अगले चार अध्ययन-बिंदुओं पहले भक्ति आंदोलन का इतिहास, उद्भव एवं विकास कब और किन स्थिति-परिस्थितियों में हुआ। दूसरे में भक्ति आंदोलन में स्त्रियों की स्थिति/भूमिका पर विचार किया गया है। भक्ति आंदोलन में स्त्रियाँ क्यों सक्रिय थीं व भक्ति आंदोलन के प्रति उनमें क्या व क्यों आकर्षण था? तीसरे में प्रमुख भक्त कवयित्रियों का परिचय दिया गया है। भक्ति आंदोलन एक देशव्यापी आंदोलन था। हर भाषा और क्षेत्र में इसका प्रभाव और व्याप्ति थी। इसलिए हर भाषा और क्षेत्र में भक्त कवियित्रियाँ उभरकर सामने आई। यहाँ इकाई की सीमा को देखते हुए हिंदी भक्ति काव्य से जुड़ी कवयित्रियों को ही लिया गया है। यहाँ स्थान की सीमा को देखते हुए सर्वप्रमुख सात कवियित्रियों का उनके काव्यांश के साथ परिचय दिया गया है। चौथे भक्ति आंदोलन की विभिन्न धाराओं के कवियों के स्त्री संबंधी विचारोंविमर्श को आख्यायित किया गया है। भक्ति आंदोलन के प्रभावस्वरूप स्त्रियों के जीवन में क्या परिवर्तन आए, भक्ति आंदोलन ने स्त्रियों को किस तरह सशक्त किया, भक्ति आंदोलन में स्त्रियों की समस्याओं पर किस तरह गौर किया गया; इत्यादि का वर्णन किया गया है।

2.3.8. बोध प्रश्न

1. जेंडर के आधार पर भक्ति काव्य का अध्ययन किस प्रकार किया जा सकता है, स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी की प्रमुख स्त्री कवियित्रियों का उदाहरण सहित परिचय दीजिए।
3. भक्ति काव्य में स्त्री की स्थिति पर बहुविध विचार किया गया है. उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. भक्ति-काव्य में मीरा के महत्व का प्रतिपादन कीजिए।
5. भक्ति-काव्य में उपस्थित स्त्री-स्वातंत्र के विचार को विभिन्न काव्यधाराओं के विवेचन के माध्यम से विवेचित कीजिए।

खंड-2 : मध्यकालीन भारत और स्त्री

इकाई-4 : विभिन्न धर्मों में स्त्री

इकाई की रूपरेखा

2.4.1. उद्देश्य
2.4.2. प्रस्तावना
2.4.3. भारत के प्रमुख धर्म
2.4.3.1. हिंदू धर्म
2.4.3.2. इस्लाम धर्म
2.4.3.3. ईसाई धर्म
2.4.3.4. बौद्ध धर्म
2.4.3.5. जैन धर्म
2.4.3.6. सिख धर्म
2.4.4. धर्म और स्त्री
2.4.5. विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति एवं महत्व
2.4.5.1. हिंदू धर्म में स्त्री
2.4.5.2. इस्लाम धर्म में स्त्री
2.4.5.3. ईसाई धर्म में स्त्री
2.4.5.4. बौद्ध एवं जैन धर्मों में स्त्री
2.4.5.5. सिख धर्म में स्त्री
2.4.6. सारांश
2.4.7. बोध प्रश्न

2.4.1. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विश्व के विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति की जानकारी व आकलन करना है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न धर्म प्रचलन में हैं। प्रत्येक धर्म का स्वरूप भिन्न है। यों तो कहा जाता है कि समस्त धर्म एक जैसी सीख देते हैं, किंतु वास्तविकता यह है कि हर धर्म की आचार-संहिता एक दूसरे से भिन्न है इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक धर्म का अलग-अलग अध्ययन किया जाए, ताकि हर धर्म की अलग-अलग स्थिति स्पष्ट हो सके।

इस इकाई का उद्देश्य यह है कि विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन व आकलन किया जाए तथा कुछ ऐसे सामान्य सूत्र अवाप्ति किए जाएँ, जिनसे यह स्पष्ट हो सके कि सामान्यतः स्त्री के प्रति धर्म का रवैया / दृष्टिकोण क्या है? विभिन्न धर्मों का इस दृष्टि से आकलन करने पर ज्ञात होता है कि इस मामले में पर्याप्त विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

2.4.2. प्रस्तावना

संसार के प्रत्येक धर्म में स्त्रियों को पर्याप्त महत्व की दृष्टि से देखा गया है। स्त्री को पुरुष के समान ही विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं। विभिन्न अधिकारों की स्थितियों में यत्किंचित अंतर हो सकता है, किंतु अधिकारों का प्रावधान प्रायः हर धर्म में किसी-न-किसी रूप में उपलब्ध मिलता है।

इतिहास के लंबे दौर में यह देखा गया है कि धार्मिक ग्रंथों एवं संगठनों में औपचारिक रूप से प्रावधान होने के बावजूद व्यावहारिक तौर पर वे अमल में नहीं आते। अनेक धर्मों में ऐसी स्थिति देखने में आई है कि वहाँ सिद्धांत और व्यवहार में जमीन-आसमान का अंतर है। धर्माचार्य, संगठन तथा इनके पदाधिकारी कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऐसी स्थिति में दिग्भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। इस दिग्भ्रम की स्थिति का खामियाजा स्त्रियों को ही भुगतना पड़ता है। इस इकाई में एतत्संबंधी सिद्धांत एवं व्यवहार के अंतर पर भी यथास्थान प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

2.4.3. भारत के प्रमुख धर्म

संसार में अनेकानेक धर्म पाए जाते हैं। दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ कोई-न-कोई धर्म न हो। धर्मों के भी उपधर्म या शाखाएँ पाई जाती हैं। जहाँ तक भारत की बात है, यहाँ भी अनेकानेक धर्म पाए जाते हैं। मोटे तौर पर भारत में प्रमुखतः छह धर्म पाए जाते हैं- हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म।

संक्षेप में इनका परिचय इस प्रकार है-

2.4.3.1. हिंदू धर्म

हिंदू धर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। माना जाता है कि यह भारत का ही नहीं, अपितु दुनिया के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। हिंदू धर्म किसी एक विशिष्ट सिद्धांत या मतवाद पर आधारित नहीं है, अपितु यह एक बहुलतामूलक धर्म है। यहाँ जो जिस पर चाहे विश्वास कर सकता है। कोई चाहे तो एकेश्वरवादी हो सकता है, कोई चाहे तो बहुदेववादी हो सकता है और कोई चाहे तो नास्तिक भी हो सकता है।

हिंदू धर्म के समस्त प्राचीन पवित्र ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। इनमें 'वेद' सर्वप्रमुख एवं प्राचीनतम हैं। वेद का अर्थ है- ज्ञान। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इसमें अनेक ईश्वरों, ब्रह्मांडों की चर्चा की गई है। वेदों के अतिरिक्त उपनिषद दूसरे बड़े हिंदू धर्म-ग्रंथ माने जाते हैं। इनमें ब्रहमांड की उत्पत्ति पर विचार कियागया है। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा के संबंधों पर विचार किया गया है। महाकाव्यों में रामायण एवं महाभारत भी हिंदू धर्म से जुड़े ग्रंथ हैं। महाभारत का एक अंश 'गीता' हिंदुओं का बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। इन सबके अलावा पुराण– जिनकी संख्या अट्ठारह मानी जाती है, हिंदुओं के महत्वपूर्ण ग्रंथ माने जाते हैं। हिंदू धर्म की तीन प्रमुख धाराएँ मानी जाती हैं- वैष्णव, शैव एवं शाक्त।

हिंदू धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था, सोलह संस्कार, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नर्क, आवागमन-चक्र, नवग्रह जैसी अवधारणाएँ पाई जाती हैं।

2.4.3.2. इस्लाम धर्म

इस्लाम धर्म की स्थापना सातवीं शताब्दी में अरब में हजरत मुहम्मद द्वारा की गई थी। इस्लाम दुनिया के सबसे बड़े धर्मों में से एक है। मक्का और मदीना इस्लाम के सबसे बड़े धर्म-स्थल माने जाते हैं, जहाँ हजरत मुहम्मद रहे और आवाजाही करते रहे।

इस्लाम एकेश्वरवादी धर्म है। इस्लाम को मानने वाले मुसलमान कहलाते हैं। मुसलमान हजरत मुहम्मद को अल्लाह का पैगंबर / नबी मानते हैं। पैगंबर हजरत मुहम्मद के इंतकाल के एक सौ साल के अंदर-अंदर इस्लाम पूरी दुनिया में फैल गया।

'कुरान' इस्लाम धर्म का मूल ग्रंथ है। कुरान को ईश्वरीय क्तिाब माना जाता है, जिसे स्वयं अल्लाह ने फरमाया है। मुसलमानों का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है, 'हदीस', जिसमें पैगंबर के कथन-अभिकथन हैं।

एक धारणा के अनुसार 'इस्लाम' का अर्थ है- 'अल्लाह की मर्ज़ी के प्रति समर्पण'। इस्लाम के अनुसार अल्लाह सर्वशक्तिमान है। वही मनुष्यता का भविष्य तय करता है, भाग्य का फैसला करता है। अच्छे, पुण्य के काम / नेकी करने वालों को वह जन्नत बख्शता है जबकि पाप कर्म / बदी करने वालों को दोजख में भेज देता है। यह अल्लाह का फैसला होता है।

इस्लाम के सच्चे अनुयायी मुसलमान के पाँच करणीय कर्तव्य माने गए हैं; अल्लाह पर भरोसा, पाँच वक्त की नमाज, गरीबों और मस्जिदों की मदद, रमजान के महीने में रोजेदारी और यदि स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिति इजाजत दे तो जिंदगी में कम-से-कम एक बार हज यात्रा।

मुसलमान लोग हफ्ते में एक दिन–शुक्रवार(जुम्मा)-को सामूहिक नमाज के लिए मस्जिद में इकट्ठा होते हैं। इमाम उनका धार्मिक नेतृत्वकर्ता होता है, जो धार्मिक शिक्षा देता है। इस्लाम मुख्यतः दो धड़ों में बँटा हुआ है- शिया और सुन्नी। इस्लाम में सुन्नी बहुसंख्या में पाए जाते हैं।

2.4.3.3. ईसाई धर्म

ईसाई धर्म एकेश्वरवादी धर्म है, जिसकी स्थापना यीशु (जीसस) के अनुयायियों ने उनको सूली पर चढ़ाए जाने के बाद की। 'द न्यू टेस्टामेंट गोस्पेल्स' में यीशु (जीसस) को एक शिक्षक/उपदेशक तथा चमत्कारी शख्सियत कहा गया है। लिहाजा जेरुसलम में उन्हें क्रूरतापूर्वक सजा देते हुए सूली पर टांगकर मार दिया गया था।

यीशु (जीसस) ने ईश्वर की बादशाहत की उद्घोषणा की थी, जो रोमन साम्राज्य पर भारी पड़ती थी। जीसस ने हृदय-परिवर्तन, अपने पापों के लिए पश्चाताप, ईश्वर और पड़ोसियों के प्रति प्रेम तथा न्यायप्रियता को ईश्वर की सत्ता में भागीदारी के लिए आवश्यक अर्हता माना था। तत्कालीन रोमन साम्राज्य इसे अपने लिए चुनौती मानता था तथा इससे भयभीत था।

यीशु (जीसस) की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उन्हें क्राइस्ट/मसीहा घोषित कर दिया। ईसाई धर्म यहूदीवाद/यहूदी धर्म से निकला था। ईसाई मूलतः एक मिशिनरी धर्म रहा है। ईसाई धर्म की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है- "ईसाई धर्म को जनसाधारण की उस हताशा की मनःस्थिति ने जन्म दिया, जिसे वे रोमन प्रभुत्व तथा शोषक वर्गों के विरुद्ध दासों के विद्रोहों, गरीबों तथा पराधीन जनगण की कार्रवाइयों के दमन के बाद विशेष तीक्ष्णतापूर्वक अनुभव कर रहे थे।" (फ्रोलोव, आई. टी.; संपादक, दर्शनकोश; हिंदी अनुवाद; प्रगति प्रकाशन, मास्को/सो.सं.; 1988; ISBN 5-01000907-2; पृष्ठ-93)।

अगले मात्र दो सौ वर्षों में ईसाई धर्म दुनिया के अनेक देशों तक फैल गया। आगे चलकर यह रोमन साम्राज्य का राजकीय धर्म बना। ईसाई धर्म का धार्मिक स्थल चर्च कहलाता है। बाइबिल ईसाईयों का धर्मग्रंथ है।

ईसाई धर्म दो धाराओं में बँटा है - कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट।

ईसाई धर्म दुनिया का सर्वाधिक प्रचलित धर्म है। बहुत सारे चर्च तथा पंथ उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। ईसाई धर्म पर्याप्त जनतांत्रिक धर्म माना जाता है। यह धर्म जन-आकांक्षाओं का खयाल रखने वाला धर्म माना जाता है। ईसाई धर्म के "विशिष्ट कार्यकलाप तथा राजनैतिक दिशाएँ उनके अस्तित्व की ठोस सामाजिक अवस्थाओं से निर्धारित होती हैं।" (वही; पृष्ठ-वही)।

2.4.3.4. बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म विश्व के अनेकानेक देशों में फैला हुआ है। एशिया के अनेक देशों/भागों का यह सर्वप्रमुख धर्म है।

बौद्ध धर्म की स्थापना ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत में सिद्धार्थ/गौतम बुद्ध द्वारा की गई थी। मनुष्य-जीवन के विभिन्न कष्टों, जैसे- वृद्धावस्था, शवयात्रा, अस्वस्थता इत्यादि, को देखकर उन्हें वैराग्य हो गया तथा वे इन समस्याओं के निदान के लिए घर से निकल पड़े। उनतीस साल की उम्र में बोधि वृक्ष के नीचे उन्हें अंतर्दृष्टि, ज्ञान की प्राप्ति हुई।

बुद्ध के उपदेश हिंदू धर्म के उपदेशों से तत्वतः भिन्न थे। हिंदू धर्म ब्राह्मण वर्चस्ववादी धर्म था। हिंदू धर्म में समस्त धार्मिक आयोजनों के संयोजन का दायित्व एवं अधिकार केवल ब्राह्मण जाति से जुड़े लोगों को था। माना जाता था कि ब्राह्मण ईश्वर का प्रतिनिधि है और वही ज्ञानदृष्टि से संपन्न हो सकता है, जबकि बुद्ध ने कहा कि कोई भी व्यक्ति, जो ऐसा चाहे, वह ज्ञानदृष्टि प्राप्त कर सकता है। बुद्ध की दृष्टि में ज्ञान/अध्यात्म पर किसी एक व्यक्ति या जाति या समूह/नस्ल का एकाधिकार नहीं है। इसके दरवाजे हर किसी के लिए खुले हैं। बौद्ध धर्म के व्यापक प्रसार के पीछे बुद्ध का यही समतामूलक दृष्टिकोण रहा है।

बुद्ध ने चार महानतम सत्यों का प्रतिपादन किया था जिन्हें चार आर्य सप्पती कहा जाता है - 1. समस्त प्राणी दुःख के भागी होते हैं 2. दु :ख की उत्पत्ति का कारण काम/इच्छाएँ हैं 3. इच्छाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है और 4. इच्छाओं से मुक्त होने का एक निश्चित मार्ग है। यह मार्ग महान अष्टांगिक मार्ग है; जो इस प्रकार है- सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाचा, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

गौतम बुद्ध ने 'अनात्मन' और अस्तित्व की नश्वरता की अवधारणाओं का प्रतिपादन किया था। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'मध्यमार्ग' का प्रतिपादन किया। मध्यमार्ग एक अनुशासित जीवन-चर्या का नाम है। बौद्ध धर्म में 'निर्वाण' की अवधारणा का प्रतिपादन भी हुआ है, जिसका तात्पर्य, समस्त सांसारिक वस्तुओं, लालसाओं इत्यादि के प्रति पूर्ण अरुचि, संबंधविच्छेद । अन्य शब्दों में इसे लोकोत्तरता/इंद्रियातीतता कहा जा सकता है।

बौद्ध धर्म दो शाखाओं में विभाजित हुआ। हीनयान तथा महायान। आगे चलकर एक तीसरी शाखा का भी उद्भव हुआ- वज्रयान। वज्रयान को मंत्रयान या तांत्रिक बौद्ध धर्म भी कहा जाता है।

2.4.3.5. जैन धर्म

हिंदू एवं बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भारत के प्रमुख धर्मों में से एक है। जैन धर्म में हिंदू एवं बौद्ध दोनों धर्मों के तत्व पाए जाते हैं। बौद्ध धर्म की भाँति जैन भी एक नास्तिक धर्म है। जैन धर्म का अपना अलग अस्तित्व है।

जैन संस्कृत धातु 'जि' से व्युत्पन्न है। इसका संबंध उस तपश्चर्या से है जो अपनी इंद्रियों, वासनाओं, इच्छाओं इत्यादि के विरुद्ध लड़ने, उन्हें जीतने तथा तत्पश्चात प्रबोध/ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से की जाती है। जो तपस्वी इस तपश्चर्या को सफलतापूर्वक पूर्ण कर लेते हैं, वे 'जिन' (जितेंद्रिय) कहलाते हैं। जो इनके अनुयायी होते हैं, वे जैन कहलाते हैं।

महावीर स्वामी ने जैन धर्म की स्थापना की थी। महावीर स्वामी वर्ण-व्यवस्था एवं जातिवाद के विरोधी थे। जैन मुनि सुशील कुमार ने महावीर स्वामी के विषय में लिखा है, "भगवान महावीर विश्व के अद्वितीय क्रांतिकारी महापुरुष थे। उनकी क्रांति एक क्षेत्र तक सीमित नहीं थी। उन्होंने प्रभावकारी क्रांति

का मंत्र फूँका था। आध्यात्मिक, दर्शन, समाज-व्यवस्था यहाँ तक कि भाषा के क्षेत्र में भी उनकी देन थी।" (मुनि, सुशील कुमार; जैन धर्म; जैन कांफ्रेंस भवन; नई दिल्ली; 1958: पृष्ठ-29)।

जैन धर्म में मनुष्य को उच्च स्थान प्राप्त है। यह श्रमण-संस्कृति के अंतर्गत है। श्रमण-संस्कृति साम्य पर आधारित है। इस साम्य के तीन आयाम हैं- समाज विषयक, साध्य विषयक तथा प्राणि जगत के प्रति दृष्टि विषयक। जहाँ तक सामाजिक साम्य की बात है, उसमें वर्ण एवं लिंग संबंधी भेदभाव को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इस संबंध में मोहनलाल मेहता ने लिखा है, "(जैन धर्म) समाज रचना में धर्म विषयक अधिकार की दृष्टि से जन्मसिद्ध वर्ण और लिंग भेद को महत्व न देकर व्यक्ति द्वारा समाचारित कर्म और गुण के आधार पर ही समाज रचना करता है।" (मेहता, मोहनलाल; जैन धर्म-दर्शन;पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी; 1973; पृष्ठ-103).

2.4.3.6. सिख धर्म

सिख धर्म भारत के प्रमुखतम धर्मों में से एक है। इसकी स्थापना पंजाब में गुरु नानक द्वारा की गई। गुरु नानक सिख धर्म के दस गुरुओं की पाँत में सर्वप्रथम गुरु हैं। सिख धर्म में हिंदू भक्ति आंदोलन तथा सूफी धर्म के अनेक तत्व सम्मिलित हैं।

गुरु नानक एकेश्वरवादी थे। उन्होंने हिंदुओं के बहुदेववाद, हिंदू-मुस्लिम-वाद आदि का खंडन किया। उन्होंने घोषणा की कि न कोई हिंदू है, न मुसलमान। सारा संसार एक ही 'नूर' की पैदाइश है। गुरु नानक ने हिंदुओं की मूर्ति-पूजा का भी विरोध किया। गुरु नानक ने हिंदुओं की वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-प्रथा का खंडन किया। सिख धर्म की लंगर व्यवस्था जाति-प्रथा के खात्मे के लिए उठाया गया सबसे महत्वपूर्ण कदम था। यह व्यवस्था आज भी जारी है। सिखों के पाँचवे गुरु, अर्जुन देव ने अपने से पहले के सिख गुरुओं तथा मध्यकाल के हिंदू और मुस्लिम संतों के भजनों, पदों इत्यादि को 'आदि ग्रंथ' में संग्रहीत किया, जिसे 'गुरु ग्रंथ साहब' कहा जाता है। यह सिख धर्म का पवित्र धर्म-ग्रंथ है। गुरु गोविन्द सिंह ने इसे अंतिम रूप दिया. पूजा-स्थलों पर जीवित गुरु के बतौर माना जाता है। गुरुद्वारा सिखों का पूजा-स्थल है, जहाँ 'गुरु ग्रंथ साहब' स्थापित होते हैं। अमृतसर का स्वर्ण मंदिर सिखों का सबसे बड़ा धर्म-स्थल माना जाता है।

सिख धर्म में खालसा पंथ का विशेष महत्व है। सिखों के दसवें और अंतिम गुरु गुरु गोविन्द सिंह ने इसकी स्थापना की। 'खालसा' का अर्थ है, 'पवित्र लोगों का समुदाय'। 'खालसा' एक ऐसा धर्मसंघ है, जिसमें आध्यात्मिक समर्पण, व्यक्तिगत अनुशासन (आत्मानुशासन) तथा सैन्य पराक्रमशीलता का समुच्चय रहा है।

2.4.4. धर्म और स्त्री

धर्म का रवैया स्त्रियों के प्रति मिला-जुला है। धर्म स्त्रियों को सबसे अधिक सीख देता है। हर धर्म स्त्रियों को उसके कर्तव्य-कर्म के प्रति सचेत-सावधान करता है। धर्म की सबसे अधिक शिक्षाएँ उनके लिए ही हैं। एक प्रकार से धर्म स्त्रियों को नियंत्रित करने के लिए ये सारी शिक्षाएँ देता है। इसका कारण क्या यह है कि धर्म की रचना पुरुषों ने की है? इस संदर्भ में डॉ. निवेदिता ने अपने लेख 'धर्म और स्त्री' में लिखा है, "इतने लंबे अनुभवों के बाद मैंने यही पाया है कि धर्म स्त्रियों के जीवन में दुःख लेकर आता है। धर्म स्त्रियों को अपवित्र समझता है और उनके शरीर से घृणा करता है। धर्म स्त्री के शरीर पर कब्जा जमाता है। सवाल यह है कि जिस धर्म की रचना पुरुषों ने की उस धर्म में स्त्री के लिए क्यों जगह होगी। दुनिया का कोई धर्म ऐसा नहीं है जहाँ स्त्री का दर्जा कमतर हो फिर भी स्त्रियाँ अपने जीवन में धर्म के नाम पर पुरुषों द्वारा किए

जा रहे इस विभेद को झेलती रहती हैं।" अपने इस लेख में आगे वे लिखती हैं, "धर्म ने स्त्री के लिए शुचिता जैसे शब्दों का ईजाद किया। उसकी रक्षा के लिए नई-नई तरकीबें निकालीं। इतिहास बताता है कि दुनिया में स्त्री पर एकाधिकार के लिए धर्म का सहारा लिया गया। मनुस्मृति से लेकर अनेक ग्रंथों में इसकी चर्चा है कि स्त्रियों को क्या करना है और क्या नहीं? और जब स्त्री का सवाल हो तो धर्म सबसे वीभत्स रूप में सामने आता है। सती प्रथा से लेकर मंदिरों की दासियों की अनगिनत गाथाएँ हमारे पास हैं। सामंतवादी व्यवस्था में सबसे ज्यादा इसकी शिकार औरतें होती रही हैं।" (वही)। निवेदिता जी हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के उदाहरण से स्पष्ट करती हैं कि इन दोनों ही धर्मों में स्त्रियों के प्रति हद दर्जे की क्रूरताएँ और अमानवीयताएँ विद्यमान हैं। वे लिखती हैं-"धर्म के नाम पर जब मुसलमान औरतों को सार्वजनिक रूप से कोड़े से उधेड़ा जाता है और हिंदू स्त्रियों को नंगा कर घुमाया जाता है या एक स्त्री को डायन, चुड़ैल कहकर मारा जाता है, तो उसके पीछे कहीं न कहीं धर्म काफी सहारा लिया जाता है।" (वही)

धर्म के स्त्री के प्रति रवैये के बारे में और भी कई लोगों, संस्थाओं, इकाइयों के लगभग ऐसे ही विचार हैं। जैसे कि नेल्सन मंडेला द्वारा दुनिया के सेवानिवृत्त नेताओं को लेकर बनाई गई संस्था Elders, जिसके एक सदस्य अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर भी रहे हैं, के सदस्यों का अधिकांशतः यही सोचना है। आस्ट्रेलिया में आयोजित विश्व धर्म संसद में भाषण देते हुए जिम्मी कार्टर ने कुछ समय पहले कहा था, "अनेक धर्मों में स्त्रियों को संपूर्ण और बराबरी की भूमिका निभाने से रोका जाता है। एक ऐसा माहौल बनाया जाता है कि जिसमें स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा जायज़ लगे।" आगे अपने भाषण में उन्होंने कहा कि "ईश्वर की निगाह में औरत एक कमजोर मनुष्य है; यह मान्यता पति द्वारा अपनी पत्नी को क्रूरतापूर्वक पीटे जाने को, एक सैनिक द्वारा किसी स्त्री का बलात्कार किए जाने को, नियोक्ता द्वारा स्त्री कर्मचारियों को अपेक्षाकृत कम वेतन दिए जाने को और माँ-बाप द्वारा कन्या भ्रूण की हत्या करा देने को क्षम्य बना देती है।" जिम्मी कार्टर का यहाँ तक मानना था कि "स्त्रियों के अधिकारों के हनन के पीछे के मूलभूत कारणों में धर्म रहा है।" (क्रिस्टोफ निकोलस; रिलीजन एंड वीमेन; द न्ययार्क टाइम्स, 9 जून, 2010। निकोलस क्रिस्टोफ ने अनेकानेक धर्मग्रंथों का हवाला देते हुए अपने इस लेख में लिखा है कि औरतों को दोयम दर्ज़े का ही माना गया है। कोई भी धर्म/समाज अपनी संरचनाएँ बदलने को तैयार नहीं है। (वही; पृष्ठ- 3-4)।

2.4.5. विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति एवं महत्व

2.4.5.1. हिंदू धर्म में स्त्री

हिंदू धर्म में स्त्री का स्थान विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रहा है। प्राचीन काल से उत्तरोत्तर उसमें क्षरण की स्थितियाँ देखी गई हैं। हिंदू धर्म में स्त्रियों की स्थिति का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है-

2.4.5.1.1. वैदिक काल

2.4.5.1.2. उत्तर वैदिक काल

2.4.5.1.3. स्मृति-युग

2.4.5.1.1. वैदिक काल

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी। उसे सर्वत्र सम्मान और अधिकार प्राप्त थे। लड़कियाँ ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। उस समय सह-शिक्षा के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा का भरपूर अधिकार था। ऋग्वेद एवं

यजुर्वेद में अनेक विदूषियों के उल्लेख मिलते हैं। वेदों में स्त्रियों को अबला नहीं, सबला के रूप में देखा गया है। वेदों में स्त्री संबंधी स्थापनाएँ प्रावधान, धारणाएँ एवं अभिमत निम्नानुसार हैं -

1. वैदिक काल में समस्त धार्मिक कार्य स्त्री अर्थात् पत्नी की उपस्थिति में प्रारंभ एवं संपन्न होते थे। यह प्रथा हिंदू मतावलंबियों में आज भी यथावत् जारी है।
2. वैदिक काल में स्त्रियों को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण व पुरुषों के समान अधिकार था।
3. धर्म एवं राजनीति से जुड़े मामलों में स्त्रियों को पुरुष के समान ही महत्त्व एवं अवसर दिए जाते थे।
4. वैदिक युग में लड़कियों को लड़कों की तरह ही शिक्षा-प्राप्ति का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को पुरुषों की तरह ही हर प्रकार की विद्या और शिक्षा जैसे कि वेद-ज्ञान, धनुर्विद्या, नृत्य, संगीत-शास्त्र आदि उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान था।
5. लड़कियों का भी उपनयन संस्कार होता था। इसके बाद ही लड़कियों की विधिवत शिक्षा आरंभ होती थी। ऋक-यजुः-अथर्व संहिताओं में ब्रह्मचारिणी नारियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है, "ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर शिक्षा समाप्त करने वाली कन्याएँ योग्य पति को प्राप्त करती हैं।''("ब्रह्मचर्येण कन्यानम युवाविन्दते पतिम।''- अथर्ववेद, कांड-11, सूक्त-7, मंत्र-18)।
6. प्राचीन वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही मंत्रद्रष्ट्री होती थीं। उनमें से कुछ के नाम वैदिक संहिताओं में भी आए हैं, जैसे- लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता निवावरी, घोषा आदि।
7. वेदों (यजुर्वेद ; 10.7) में इस प्रकार का उल्लेख आता है कि राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।
8. वैदिक युग में स्त्रियों को अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार था।
9. वैदिक युग में पुत्र की तरह पुत्रियों के भी पैदा होने की कामना व्यक्त की गई है। कन्या का पैदा होना कलंक या दुःख का कारण नहीं, अपितु यश का हेतु माना गया था।
10. यजुर्वेद (22.22) में विजयशील सभ्य वीर युवकों की भाँति बुद्धिमती नारियों के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है।

2.4.5.1.2. उत्तर वैदिक काल

1. उत्तर वैदिक काल के प्रारंभिक वर्षों में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की तरह ही बेहतर थी।
2. उत्तर वैदिक काल में उन्हें शिक्षा का अधिकार प्राप्त था और वे वेदों का अध्ययन कर सकती थीं।
3. उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को अपना वर चुनने का अधिकार था।
4. उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार वैदिक काल की तरह ही जारी थे।
5. उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के बिना कोई भी मंगल कार्य पूर्ण नहीं होते थे।

2.4.5.1.3. स्मृति-युग

1. स्मृति युग तक आते-आते स्त्रियों के समस्त अधिकारों पर कुठाराघात होने लगा.
2. स्त्री की परतंत्रता की कहानी स्मृति युग से ही शुरू होती है। मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। बाल्यावस्था में उसे पिता के, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्रों के संरक्षण में रहना चाहिए।

3. स्मृति युग में स्त्री को पूरी तरह पति/पुरुष के अधीन बना दिया गया।मनु स्मृति में कहा गया है कि पति की सेवा करना तथा हर हाल में उसकी आज्ञा का पालन करना स्त्री का धर्म है।
4. पति चाहे नपुंसक हो, आलसी हो, नशेड़ी हो, रोगग्रस्त हो या परस्त्रीगामी हो, पत्नी उसकी हर आज्ञा का पालन करे।
5. मनु स्मृति में कहा गया है कि पति चाहे स्त्री को बेच दे या उसका परित्याग कर दे, किंतु वह उसकी पत्नी ही कहलाएगी।

आज भी लगभग यही धारणाएँ समाज में प्रचलित हैं।

2.4.5.2. इस्लाम धर्म में स्त्री

इस्लाम में स्त्री संबंधी मान्यताओं, धारणाओं, व्यवस्थाओं, प्रावधानों, निर्देशों इत्यादि की जानकारी के लिए कुरान, हदीस, इज्मा कियास और फतव इज्तिहाद है। इनमें प्रथम दो मूलभूत स्रोत या आधार है। कुरान के चौथे अध्याय 'सूरा: अन-निसा' में (जिसका अर्थ होता है स्त्री) स्त्री संबंधी मान्यताएँ, धारणाएँ, व्यवस्थाएँ, प्रावधान दिए गए हैं।

इस्लाम के स्त्री संबंधी विचारों को निम्न बिंदुओं में समेकित किया जा सकता है-

1. स्त्री–पुरुष जोड़े से पैदा हुए हैं। उनका जोड़ा स्थायी है।
2. कुरान में कहा गया है कि तुम दो-दो, तीन-तीन या चार-चार (अनाथ) लड़कियों से विवाह तो कर सकते हो, लेकिन यदि तुम्हें आशंका हो कि तुम उनके साथ एक जैसा व्यवहार न कर सकोगे तो एक ही पर बस करो। (4:3)
3. अपने माँ-बाप और नातेदारों द्वारा छोड़े गए माल में स्त्रियों का भी एक निश्चित हिस्सा होता है। यह हिस्सा निश्चित किया हुआ है। (4:7) मरने वाले की छोड़ी हुई संपत्ति में उसकी पुत्रियों के हिस्से का यह प्रावधान कुरान में किया गया है। यहाँ तक कि संतान के न होने पर संपत्ति का आधा हिस्सा उसकी बहन को दिए जाने का निर्देश है।
4. स्त्रियाँ यदि कुछ कमाती हैं तो पुरुषों की तरह उनका भी अपनी कमाई पर अधिकार है- 'पुरुषों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है और स्त्रियों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है।' (4:32).
5. इस्लाम ने औरत को मर्द के समान ही अधिकार दिए हैं। कुरआन की सूरा: अल-बक़रा (2:228) में कहा गया है, "महिलाओं के लिए भी सामान्य नियम के अनुसार वैसे ही अधिकार हैं जैसे मर्दों के अधिकार उन पर हैं।"
6. इस्लाम में महिलाओं को माँ, पत्नी, बेटी एवं बहन के रूप में उसे पर्याप्त सम्मान दिया गया है। हदीस में कहा गया है कि माता को पिता की तुलना में तीन गुना अधिकार प्राप्तहैं।
7. इस्लाम में बेटियों को भी महत्व दिया गया है। कहा गया है कि बेटियाँ तुम्हें नर्क से बचाएँगी।
8. इस्लाम में बेटियों के जन्म पर दु:खी न होने का निर्देश है। कुरआन (16:58-59) में उन माता-पिता को लताड़ा गया है जो बेटी के जन्म पर दु:खी होते हैं। इसी तरह कुरान की एक आयत (81:8-9) में लड़कियों को जिंदा गाड़ देने के कृत्य की भर्त्सना की गई है।
9. इस्लाम में स्त्री को अपना वर चुनने का अधिकार दिया गया है। वह किसी के विवाह-प्रस्ताव को स्वेच्छा से स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। उसका विवाह उसकी स्वीकृति के बिना या उसकी मर्जी के विरुद्ध नहीं किया जा सकता।

10. इस्लाम में किसी पुरुष की अच्छाई का निर्धारण पत्नी के प्रति उसके व्यवहार को माना जाता है। अच्छा पुरुष वही है, जो अपनी पत्नी के लिए अच्छा है।
11. इस्लाम में औरत को बेटी के रूप में पिता की जायदाद और बीवी के रूप में पति की जायदाद का हिस्सेदार बनाया गया है।
12. इस्लाम में स्त्री के शिक्षा/ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार की वकालत की गई है। पैगंबर ने कहा है, "पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी ज्ञान प्राप्त करें, अपनी बुद्धि-जीविता को विकसित करें, अपने दृष्टिकोण का विस्तार करें तथा इन सबसे लैस अपनी प्रतिभा एवं बुद्धिमत्ता का अपने स्वयं के तथा समाज के हित में इस्तेमाल करें।" (वही; पृ. 20)।

2.4.5.3. ईसाई धर्म में स्त्री

ईसाई धर्म में स्त्रियों के स्थान के संबंध में भी कई प्रकार की मान्यताएँ तथा परंपराएँ मिलती हैं। ईसाई बाईबिल के अनुसार स्त्रियों से अपेक्षा की गई है कि वे हर प्रकार से विनम्र और आज्ञाकारी हों। वे न केवल अपने पति बल्कि चर्च, अपने समुदाय तथा ईश्वर के प्रति भी विनम्र और आज्ञाकारी हों।

परंपरागत रूप से ईसाई धर्म में नेतृत्वकारी भूमिका में पुरुष ही रहे हैं। रोमन कैथोलिक तथा आर्थोडोक्स चर्चों में पादरी के रूप में केवल पुरुष ही सेवाएँ दे सकते हैं। पोप, पेट्रियार्क, बिशप इत्यादि उच्चस्तरीय पदों पर पुरुष ही बैठे दिखाई देते हैं। अब कहीं-कहीं स्त्रियाँ मुख्यधारा में आने लगी हैं।

आदर्श रूप में ईसाइयत में स्त्री को सम्मान का स्थान प्राप्त है। ईसाइयत में स्त्रियों को संपत्ति का अधिकार दिया गया है। मिशनरियों में स्त्रियों का योगदान सर्वाधिक देखा गया है।

परंपरागत ईसाई धर्म के अंतर्गत अधिकांश स्त्री संबंधी मान्यताएँ पुरुषवर्चस्ववादी रहीहैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. ईश्वर ने पुरुष को अपने स्वरूप से उत्पन्न किया। बाद में गॉड ने प्रथम 'मैन' एडम की एक पसली से स्त्री 'ईव' बनाई, जो 'मैन' के मनबहलाव के लिए बनाई गई थी। इस प्रकार 'मैन' इस दुनिया का लार्ड है। स्त्री का स्थान उसके बाद है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह पुरुष का ही एक अंश है।
2. वुमैन शैतान की बेटी है। शैतान के कहने पर उसने मैन को फुसलाया। क्रिस्चियनिटी के अनुसार, ''स्त्री-पुरुष का परस्पर स्वेच्छा और उल्लास से मिलना ही 'ओरिजनल सिन' है। स्त्री पुरुष को सम्मोहित कर शैतानियत के चंगुल में फँसाती है। वह सम्मोहक है और 'एडल्टरी' की दोषी है।''
3. परंपरागत ईसाइयत में विवाहित स्त्री को 'अपवित्र' माना जाता है। पवित्र स्त्री तो वह है, जो किसी क्रिश्चियन मठ में दीक्षित मठवासिनी अर्थात् 'नन' है, जिसने गरीबी, चेस्टिटी तथा क्रिश्चियन पादरियों और चर्च की आज्ञाकारिता की शपथ ली है।
4. परंपरागत ईसाइयत में स्त्री को शापग्रस्त माना गया है। पुरुष को ओरिजिनल सिन में फँसाने के दंडस्वरूप उसे मासिक धर्म, प्रसव पीड़ा, गर्भ-धारण तथा सदा पुरुष की अधीनता में रहने और दंडित किए जाने आदि का शाप दिया गया है।
5. परंपरागत ईसाइयत में स्त्री का माँ बनना भी एक पाप है।

2.4.5.4. बौद्ध एवं जैन धर्मों में स्त्री

बौद्ध धर्म में स्त्री की स्थिति पर विचार करने पर सबसे पहले थेरीगाथाओं का ध्यान आता है, जिनमें तत्कालीन स्त्री-जीवन के अनेक उज्ज्वल व यथार्थ पक्ष अंकित मिलते हैं। थेरीगाथाएँ प्रव्रजित बौद्ध भिक्षुणियों की आपबीती कथाएँ हैं। ये कथाएँ इन थेरियों की निजी आत्मकथाएँ तो हैं ही, साथ ही इनसे तत्कालीन परिस्थितियों में स्त्री की स्थिति, परवशता, दुःख, कातरता, मुक्ति की कामना इत्यादि से संबंधित प्रामाणिक जानकारियाँ भी हमें मिलती हैं।

विद्वानों ने लिखा है कि गौतम बुद्ध ने उस समय पुरुषों को यह निर्देश दिया था कि वे अपनी पत्नी का सम्मान करें। इससे संकेत मिलता है कि उस समय पति अपनी पत्नी का अनादर किया करते थे।

बौद्ध धर्म में स्त्री को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। संघ में स्त्रियों को स्थान देकर गौतम बुद्ध ने स्त्रियों की मुक्ति का द्वार खोल दिया। संघ में प्रवेश मिलने से समाज में भी उनका सम्मान बढ़ा और उनकी पीड़ा कम हुई। इस संबंध में डॉ रजनीश कुमार ने लिखा है, "जिन स्त्रियों ने भिक्षुणी की दीक्षा ली, उनमें से अधिकांश ऊँची आध्यात्मिक पहुँच के लिए और नैतिक जीवन के लिए प्रसिद्ध हुईं कुछ स्त्रियाँ तो न केवल पुरुषों की शिक्षिका तक बन गईं, धर्म की बारीकियों को समझने वाली, बल्कि उन्होंने उस चिरंतन शांति को भी प्राप्त कर लिया था, जो आध्यात्मिक उड़ान और नैतिक साधना के ही फलस्वरूप प्राप्त की जा सकती है।" (www.streekal.com/2014/07/blog- post_14.html तथा स्त्रीकाल अंक-9)।

जैन धर्म में स्त्रियों को समुचित स्थान दिया गया है। उन्हें पुरुषों के बराबर ही धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं। जैन धर्म में स्त्रियों का आज वही स्थान है, जो प्राचीन काल में हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में स्त्री का था। यानी उन्हें शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। धार्मिक कार्यों में वे पुरुष के समान ही भागीदारी करती हैं। बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म में भी स्त्रियों का संघ है। स्त्रियाँ भी प्रवचन करती हैं और समाज में उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

2.4.5.5. सिख धर्म में स्त्री

सिख धर्म में स्त्री को पर्याप्त उच्च स्थान प्राप्त है। सन् 1499 में गुरु नानक ने कहा था, ''स्त्रियाँ ही नस्ल को आगे बढ़ाती हैं। हमें स्त्रियों के प्रति अवमाननापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। अनेक ऐसी स्त्रियाँ भी हुई हैं, जिन्होंने नेतृत्व एवं राज किया है।''

सिख धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों को मनुष्य रूपी सिक्के के दो पहलू कहा गया है। दोनों के बीच परस्पर अंतर्संबंधों एवं अंतरनिर्भरता की एक व्यवस्था है। इस कर्म के अनुसार स्त्री-पुरुष दोनों की अपनी-अपनी भूमिका और महत्ता है।

सिख धर्म में व्यावहारिक तौर पर स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार और महत्व प्राप्त है। सिख पुरुष स्त्रियों को अपने समान ही समझते हैं। सिख धर्म में लैंगिक असमानता की भावना नहीं मिलती।

सिख धर्म के समय समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। सिख धर्म में हिंदू एवं मुसलमानों में स्त्रियों पर जो पाबंदियाँ और अनधिकार थे, उनसे अपनी स्त्रियों को मुक्त रखने की कवायद की गई। हिंदुओं की सती प्रथा तथा मुसलमानों की पर्दा प्रथा से सिख स्त्रियाँ मुक्त रखी गईं उस समय यह एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम था। सिख धर्म में बालविवाह का प्रचलन नहीं था। सिख धर्म में स्त्रियों को संपत्ति में उत्तराधिकारिता प्राप्त थी। स्त्रियों की खरीद-फरोख्त पर भी सिख धर्म ने रोक लगाई।

सिख धर्म में लड़कियों/स्त्रियों के नाम के साथ 'कौर' जुड़ता है, जिसका अर्थ है, 'राजकुमारियाँ'। गुरु नानक और उनके पश्चात् गुरु गोविन्द सिंह ने स्त्रियों के नाम के आगे अनिवार्यतः 'कौर' लगवाकर स्त्रियों को पुरुषों के समान बराबरी और महत्व देने का काम किया।

2.4.6. सारांश

इस इकाई का उद्देश्य विश्व के विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति की जानकारी व आकलन करना रहा है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न धर्म प्रचलन में हैं। प्रत्येक धर्म का स्वरूप भिन्न है। हर धर्म की आचार-संहिता दूसरे से भिन्न है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक धर्म का अलग-अलग अध्ययन किया जाए, ताकि हर धर्म की अलग-अलग स्थिति स्पष्ट हो सके तथा कुछ ऐसे सामान्य सूत्र अवाप्ति किए जाएँ, जिनसे यह स्पष्ट हो सके कि सामान्यतः स्त्री के प्रति उस धर्म का रवैया / दृष्टिकोण क्या है? विभिन्न धर्मों का इस दृष्टि से आकलन करने पर ज्ञात होता है कि इस मामले में पर्याप्त विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

उद्देश्य के पश्चात् प्रस्तावना में यह दिग्दर्शित किया गया है कि संसार के प्रत्येक धर्म में स्त्री को पर्याप्त महत्व की दृष्टि से देखा गया है। स्त्री को पुरुष के समान ही विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं। विभिन्न अधिकारों की स्थितियों में यत्किंचित् अंतर हो सकता है, किंतु अधिकारों का प्रावधान प्रायः हर धर्म में किसी-न-किसी रूप में उपलब्ध मिलता है।

किंतु इतिहास के लंबे दौर में यह देखा गया है कि धार्मिक ग्रंथों एवं संगठनों में औपचारिक रूप से प्रावधान होने के बावज़ूद व्यावहारिक तौर पर वे अमल में नहीं आते। अनेक धर्मों में ऐसी स्थिति देखने में आई है कि वहाँ सिद्धांत और व्यवहार में जमीन-आसमान का अंतर है। धर्माचार्य, संगठन तथा इनके पदाधिकारी कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऐसी स्थिति में दिग्भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। इस दिग्भ्रम की स्थिति का खामियाज़ा स्त्रियों को ही भुगतना पड़ता है। इस इकाई में एतत्संबंधी सिद्धांत एवं व्यवहार के अंतर पर भी यथास्थान प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

प्रस्तावना के पश्चात् तीन प्रमुख बिंदुओं में इस इकाई के विषय का विस्तार किया गया है। ये तीन बिंदु हैं- भारत के प्रमुख धर्म, धर्म और स्त्री तथा विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति एवं महत्व. भारत के प्रमुख धर्मों का परिचय देते हुए प्रमुखतः छह धर्मों को लिया गया- हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म। यहाँ संक्षेप में इनका परिचय दिया गया है। परिचय के साथ-साथ इनकी ऐतिहासिक उल्लेखनीयताएँ तथा महत्व एवं योगदान इत्यादि का उल्लेख भी किया गया है। दूसरे बिंदु में सामान्यतः धर्म स्त्रियों के विषय में क्या सोचते हैं, यथार्थ के धरातल पर वस्तुस्थिति क्या है, इसकी विवेचना की गई है। यहाँ स्पष्टतः कहा जा सकता है कि स्थितियाँ ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं हैं। तीसरे बिंदु में विभिन्न धर्मों में स्त्रियों की स्थिति का आकलन किया गया है। इसे पाँच उपबिंदुओं में विभाजित किया गया है- हिंदू धर्म में स्त्री, इस्लाम धर्म में स्त्री, ईसाई धर्म में स्त्री, बौद्ध एवं जैन धर्मों में स्त्री तथा सिख धर्म में स्त्री।

2.4.7. बोध प्रश्न

1. भारत के प्रमुख धर्म कौन-कौन से हैं? संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. धर्म में स्त्री की स्थिति पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. हिंदू धर्म में स्त्री की स्थिति क्या व कैसी रही है? स्पष्ट कीजिए।
4. इस्लाम धर्म में स्त्री को पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं, क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने विचार लिखिए।
5. सिख धर्म में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत उत्तम है, तथ्यों के आधार पर उत्तर दीजिए।

2.4.8. संदर्भ ग्रंथ सूच

खंड- 3 आधुनिक काल और स्त्री

इकाई-1. सामाजिक सुधार आंदलनों और स्त्री मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

3.1.1. इकाई का उद्देश्य
3.1.2. प्रस्तावना
3.1.3. विषय-विस्तार एक : सामाजिक सुधार आंदलनों का अर्थ एवं विविध आयाम
3.1.4. विषय-विस्तार दो : भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों की परंपरा और स्त्रियों के मुद्दे
3.1.5. विषय-विस्तार तीन : सामाजिक सुधार आंदोलनों का स्त्री-जीवन पर प्रभाव : एक आकलन
3.1.6. सारांश
3.1.7. प्रश्न

3.1.1. इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुख्यतः यह प्रतिपादित करना है कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में भारत में जो सामाजिक सुधार आंदलनों या कार्यक्रम हुए, उनमें स्त्रियों के मुद्दे कितने, कैसे और क्या थे. यह नवजागरण काल कहा जाता है. इस काल-खंड में राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि सभी मोर्चों पर सुधारों, संशोधनों, नवाचारों की स्थापना की कोशिश की गई. इन सुधारों, संशोधनों, नवाचारों इत्यादि में स्त्रियों के मुद्दे कितने, कैसे और क्या थे, इसी पर इस इकाई में विचार किया जाना है.

इस इकाई को विषय-विस्तार के तीन प्ररूपों में विभाजित करके अध्ययित किया गया है. प्रथम विषय-विस्तार के अंतर्गत सामाजिक सुधार आंदलनों का अर्थ प्रतिपादित किया गया है. इसके अंतर्गत समाज-सुधार आंदलनों क्या है व इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है, इसके क्या लाभ, उपपत्तियां, परिणाम इत्यादि होते हैं, इस सब पर विचार किया गया है. इसके साथ ही समाज-सुधार आंदोलनों के अन्यानेक एवं विविध आयाम क्या हैं, इस पर भी विचार किया गया है.

द्वितीय विषय-विस्तार के अंतर्गत भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों की परंपरा और इतिहास पर विचार किया गया है. इन सुधारों में स्त्रियों के मुद्दे किस रूप में, कितने और क्या-क्या आए, इस पर विचार है. किंतु साथ ही इस बिंदु पर पहले विचार किया गया है कि स्त्रियों के मुद्दे वस्तुतः हैं क्या और वे क्यों जरूरी हैं? इतिहास में ऐसा आखिर क्या हुआ है कि स्त्रियों के मुद्दे अलग से उठाने पड़ गए !

तृतीय विषय-विस्तार के अंतर्गत समाज-सुधार आंदोलनों का स्त्रियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका आकलन है. इन समाज-सुधार आंदोलनों के केंद्र में चूँकि स्त्री रही है, स्त्रियों के मुद्दे रहे हैं, अतः उनका उनसे प्रभावित होना तो स्वाभाविक ही था. इस प्रसंग में आकलन इस बिंदु का किया गया है कि इन सुधार आंदोलनों से वास्तव में, यथार्थ के धरातल पर क्या सुधार समाज में हुए? ये सुधार चूँकि स्त्रियों से सम्बन्धित थे, अतः स्त्रियों के जीवन में वास्तव में कुछ परिवर्तन आया या नहीं?

3.1.2. प्रस्तावना

इस इकाई की प्रस्तावना लीक से थोडा हटकर है. वह प्रस्तावना यह है कि स्त्रियाँ अरसे से इतिहास की परिधि से बाहर रही चली आ रही हैं. उन्हें इतिहास से बाहर किया गया है. चूँकि वे समाज

की मुख्यधारा से बाहर कर दी गई थीं, और दोयम दर्जे का जीवन जीती रहीं थीं, अतः उनकी समस्याओं, उनके संकटों, दुखों, अभावों, अपेक्षाओं इत्यादि पर कभी ध्यान ही नहीं दिया गया. पितृसत्तावादी राजनैतिक व सामाजिक, आर्थिक संरचनाओं के चलते स्त्री की आवाज़ सदैव दबा दी जाती रही है.

नवजागरण के सुधारवादी दौर में पहली बार स्त्री की समस्याओं तथा मुद्दों पर लोगों का ध्यान गया. शिक्षा, स्वास्थ्य, सहमति का अधिकार और आयु, विवाह की आयु, संपत्ति में अधिकार, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा-अनिच्छा, गर्भपात, भ्रूण हत्या, लैंगिक अनुपात, दहेज और स्त्री-धन, सती प्रथा, देवदासी प्रथा, तलाक आदि-आदि अनेकानेक ऐसे मुद्दे हैं, जिनका संबंधस्त्रियों से है. नवजागरण कल में इन समस्त मुद्दों पर समाजसुधारकों का ध्यान गया और आवश्यक कदम उठाए गए. स्त्री-नियति की दृष्टि से इन समाजसुधार आंदोलनों का अत्यधिक महत्व है. इन आंदोलनों के परिणाम और प्रभावस्वरूप स्त्री इतिहास में पुनर्स्थापित होना शुरू हुई.

3.1.3. विषय-विस्तार एक : सामाजिक सुधार आंदलनों का अर्थ एवं विविध आयाम

सामाजिक सुधार आंदलनों का अर्थ है, समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों, कुप्रथाओं, धारणाओं, मान्यताओं इत्यादि का उन्मूलन तथा उनके स्थान पर विवेक और विचार-संपन्न प्रथाओं, परंपराओं, मान्यताओं इत्यादि की शुरुआत. यह एक लंबी प्रक्रिया है, जिसके मोटे तौर पर दो पक्ष हैं. पहला यह कि समाज में व्याप्त व अरसे से चली आ रही कुरीतियों, कुप्रथाओं, रूढ़ियों, धारणाओं इत्यादि का उन्मूलन. तथा दूसरा यह कीं सड़ी-गली कुरीतियों, कुप्रथाओं, रूढ़ियों, धारणाओं इत्यादि के विकल्प के तौर पर नई धारणाओं, प्रथाओं, परंपराओं इत्यादि की शुरुआत. यह किसी भी जाति के नवजागरण या पुनर्जागरण की प्रक्रिया की शुरुआत है. यह एक सामूहिक उपक्रम या कार्यवाही है. आन्दोलनात्मकता इस सारी प्रक्रिया की केंद्रीय प्रवृत्ति होती है. इस अन्दोलनात्मकता के भी दो पक्ष हैं. पहला रूढ़ियों और यथास्थितिवाद का विरोध और प्रतिरोध और दूसरा वैकल्पिक विचार का प्रस्ताव या कार्यक्रम (एक्शन प्लान) की घोषणा.

सामाजिक सुधार की इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि बहुत सारी अवांछित सामूहिकताएँ इनमें अपना अनधिकृत हस्तक्षेप करने लगती हैं. कुछ स्वयम्भू समूह या समुदाय ऐसे होते हैं, जो संपूर्णसमाज पर अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए यथास्थिति को क़ायम रखे रखना चाहते होते हैं. ये समूह या समुदाय रूढ़ियों से मुक्ति को अनिष्टकारी बताते हुएनिरंतर भ्रम फैलाते हैं और परिवर्तन की प्रक्रिया को रोकने की कुचेष्टा करते हैं. जैसा कि भारत में रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने सुधारवादियों के कार्यक्रमों में निरंतर रोड़े अटकाए- "सुधारवादी आंदोलनों को हर कदम पर रूढ़िवादी ब्राह्मणों से टकराना पड़ा. उदारवादी सुधारकों को ब्राह्मणों से सामाजिक बहिष्कार से लेकर जन से मारने की धमकियों तक का सामना करना पड़ा." (शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ-06).

सुधारवादी आंदोलनकर्ताओं को अपने समय के शासक-वर्गों से अनिवार्यतः टकराना होता है. शासक-वर्ग वह समुदाय होता है, जो सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में वर्चस्वकारी स्थिति में होता है. जैसा कि पूर्व में कहा गया, वर्चस्वशाली वर्ग सदैव यथास्थिति बनाए रखने में विश्वास रखता है. यह एक वास्तविकता है कि सुधार चाहे किसी भी क्षेत्र के हों, वे प्रायः अन्य क्षेत्रों से जुड़े होते हैं. जैसे सामाजिक का संबंधराजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों से होता है तथा

आर्थिक का संबंधसामाजिक एवं अन्य क्षेत्रों से. इस प्रकार समस्त संदर्भ एक-दुसरे से जुड़े हुए हैं. एक क्षेत्र में यदि सुधार होता है तो, उसका प्रभाव दुसरे क्षेत्रों पर भी पड़ता है. उदाहरण के लिए यदि लड़कियों के लिए शिक्षा सम्बन्धी समस्त आवश्यक उपलब्ध कराई जाएँ और उनकी शिक्षा सुचारु रूप से निरंतर चलती रहे तो इसका प्रभाव उनके समूचे जीवन पर पड़ेगा. उनकी सोचने की दिशा बदल जाएगी; उसमें विवेक और तर्क का समावेश होगा. शिक्षित होने का परिणाम यह भी होगा कि वे अंधविश्वासों, सड़ी-गली रूढ़ियों, परंपराओं, अनुत्पादक कार्यों इत्यादि से धीरे-धीरे अपना पीछा छुड़ाने लगेंगी. उनमें राजनैतिक जागरूकता आएगी और वे आत्मनिर्णय ले सकने की स्थिति में आने लगेंगी. इससे उनमें आर्थिक आत्मनिर्भरता की चाह पैदा होगी और वे स्वयं आजीविका अर्जित किये जाने की ओर आगे बढ़ेंगी. उनके पास आर्थिक आत्मनिर्भरता होगी तो वे पराधीनता से उत्पन्न दंशों से मुक्त हो सकने की स्थिति में आने लगेंगी. इससे उनका शारीरिक-मानसिक शोषण कम होगा और वे उसके स्वरूप तथा कारणों की पहचान में सक्षम होंगी. स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होंगी तो कानून/संविधान में प्रदत्त अपने अधिकारों के प्रति सजग और सक्रिय होंगी और अपने लिए एक बेहतर विकल्प पर विचार कर सकेंगी! इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री-शिक्षा से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी स्थितियों में बदलाव और गतिशीलता आती है. इससे यह प्रमाणित होता है कि सुधार के सभी क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे को अनिवार्यतः प्रभावित करते हैं.

3.1.4. विषय-विस्तार दो : भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों की परंपरा और स्त्रियों के मुद्दे

भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत 19 वीं सदी में होती है, जब स्त्रियों की समस्याएँ केंद्र में आने लगती हैं. 19 वीं सदी में कानूनी और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर स्त्रियों की स्थिति विश्व-स्तर पर मजबूत होना शुरू होती है 19 वीं सदी में बंगाल और महाराष्ट्र प्रांतों में सुधारवादी समूह अधिक सक्रिय थे. इस समय इन आंदोलनों में स्त्री सम्बन्धी जो मुद्दे उठे, वे इस प्रकार थे- 1. सतीप्रथा, 2. कन्या भ्रूण हत्या, 3. बहुविवाह, 4. बालविवाह, 5. बेमेल विवाह, 6. दहेज प्रथा, 7.पर्दा प्रथा, 8. देवदासी प्रथा, 9. बेटियों को न पढ़ाने की प्रथा, 10. पितृसत्तामूलक संयुक्त परिवार

19 वीं शताब्दी के इन आरम्भिक सुधार आंदोलनों की विशेषता यह है कि इनमें नेतृत्व पुरुष ब्राह्मणों के हाथ में था, जिसका यह नतीजा सामने आया कि ये सुधार केवल उच्च जाति की स्त्रियों के लिए किये गए. इनके चलाए जाने का तरीका भी पर्याप्त शांतिपूर्ण व अहिंसात्मक था. हस्ताक्षर अभियान, जनसभा व बैठक बुलाकर, अंग्रेज़ सरकार के साथ सुधार की बातचीत जारी रखना; इत्यादि तरीके प्रमुख थे.

आगे चलकर इन आंदोलनों में अनेकानेक वर्गों के लोग शामिल हुए और इनका प्रभाव-क्षेत्र भी काफी व्यापक हुआ. आगे इनमें स्त्रियाँ भी पर्याप्त संख्या में सम्मिलित हुईं. पुरुषों के साथ स्त्रियों के आने से आंदलनों का स्वरूप बदला और उसमें स्त्रियों की आवाज़ बुलंद हुई. इन आंदोलनों में शामिल अनेक स्त्री कार्यकर्ता आगे चलकर राष्ट्रीय नेताओं के रूप में उभरीं. इन राष्ट्रीय नेत्रियों ने भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों में भी बढ़चढ़कर हिस्सा लिया और उच्च पदों पर रहीं.

स्त्री-केंद्री सामाजिक सुधार आंदोलनों पर सिलसिलेवार प्रमुखतःनिम्नानुसार विचार किया जा सकता है-

1. सती प्रथा उन्मूलन आंदलनों
2. विधवा पुनर्विवाह आंदलनों

3. बाल विवाह विरोधी आंदलनों
4. स्त्री शिक्षा हेतु आंदलनों
5. देवदासी प्रथा के विरुद्ध आंदलनों
6. मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा हेतु आंदलनों

1. सती प्रथा उन्मूलन आंदलनों

"ऐतिहासिक तौर पर यह कुप्रथा भारत के कुछ खास प्रांतों में ही प्रचलित थी. जहाँ पर उच्च वर्णों में संपत्ति में विधवा स्त्रियों को अधिकार था, वहीं पर यह प्रथा प्रचलित थी." (शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ-09). इससे यह स्पष्ट होता है कि सती प्रथा का संबंधआर्थिक कारणों से रहा है. पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी को उसका वैध साम्पत्तिक हिस्सा न देना पड़े, इसलिए उसी को समाप्त कर दो! यह ब्राह्मणवादी व्यवस्था में ही सम्भव है! मूलतः यह हत्या है लेकिन यह हत्या न लगे, इसके लिए इसके चारों ओर धर्म की 'कोटिंग' की गई कि पति की चिता के साथ सती होना स्त्री के पतिव्रता होने का प्रमाण है. जो स्त्री ऐसा करती है, वह अखंड सौभाग्यवती कहलाती है. मृत्यु के उपरान्त परमधाम को प्राप्त करती है. वही नहीं, उसके सारे कुटुंब का ही उद्धार हो जाता है; इत्यादि-इत्यादि. इस धार्मिक वैधता के तहत सती प्रथा चल निकली. प्रारंभ में यह विधवा स्त्रियों के संपत्ति में अधिकार वाले उच्च वर्णों में रही होगी, लेकिन बाद में यह एक आम परंपरा बन गई.

सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलनों और इस प्रथा को क़ानूनन समाप्त करने का श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है. राजा राममोहन राय ने निरंतर इस आंदलनों को आगे बढ़ाया और सबसे ज्यादा सक्रियता दिखाई. सती प्रथा के विरुद्ध चलाए गए आंदलनों और इस संबंधमें अंग्रेज सरकार, हिंदूवादी समुदाय, ईसाई पादरियों तथा अन्य अनेक लोगों व वर्गों की क्या भूमिका रही तथा किस-किसने क्या-क्या स्टैंड लिए और पैंतरे बदले; इस सबके विस्तृत विवरण के लिए डा. राधा कुमार की 'स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990' देखी जा सकती है. (कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास; अनुवाद एवं सम्पादन – रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि'; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ- 26-38).

2. विधवा पुनर्विवाह आंदलनों

सती प्रथा की तरह विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध भी सिर्फ उच्च जातियों में ही प्रचलित था. किंतु यह भी एक गलत प्रथा थी, जिसके विरुद्ध समाज सुधारकों ने आंदलनों चलाए.

विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबन्ध को समाप्त करने के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1850 ई. में अभियान चलाया. इस संबंधमें कई स्तरों पर उन्होंने प्रयास किए. एक तरफ उन्होंने विधवा पुनर्विवाह को शास्त्रसम्मत ठहराते हुए बंगला भाषा में एक पुस्तिका लिखी. दूसरी ओर हिंदू पंडितों के साथ इस विषय पर संस्कृत में शास्त्रार्थ किया. तीसरी तरफ अपनी पुस्तिका का अंग्रेजी अनुवाद कर उसे अंग्रेजों तक पहुँचाया. इस सब के अतिरिक्त उन्होंने 1855 में विधवा पुनर्विवाह के लिए कानून बनवाने के लिए भारत के गवर्नर जनरल को देने को एक याचिका तैयार की. इस सबका परिणाम यह हुआ कि 1856 में विधवा पुनर्विवाह का कानून पारित हो गया.

विधवा पुनर्विवाह के लिए वास्तविक आंदलनों महाराष्ट्र में चला जहाँ महात्मा फुले के सत्यशोधक समाज ने अनेकानेक विधवा पुनर्विवाह करवाए.

3. बाल विवाह विरोधी आंदलनों

बाल विवाह का मुद्दा विवाह की उम्र तथा सहमति की उम्र से जुड़ा मुद्दा भी है. बाल विवाह एक ऐसी कुरीति रही है, जिसने स्त्रियों के लिए मुसीबतें ही मुसीबतें पैदा की हैं. बाल विवाह प्रकारान्तर से लड़की से सहवास की उम्र भी तय करता है, जिसके अन्य दूरगामी परिणाम होते हैं.

इस मुद्दे को भी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उठाया और उन्हीं के प्रयासों से 1860 में 10 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों की शादी को गैर-कानूनी करार दिया गया था. उम्र सहमति कानून के अंतर्गत 10 वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ सहवास को बलात्कार बताया गया. बाद में इन कानूनों में बराबर फेरबदल होते रहे और विवाह तथा सहमति की उम्र बढ़ती रही. अनेक लोगों ने हिंदू धर्म की संरचना का हवाला देते हुए बाल विवाह पर लगाई जाने वाली रोक का विरोध किया किंतु अनेक लोगों ने बाल विवाह पर प्रतिबन्ध का समर्थन किया. अंततः अक्टूबर 1929 में शारदा एक्ट पारित हुआ, जो '30 में लागू हुआ.

4. स्त्री शिक्षा हेतु आंदलनों

स्त्री शिक्षा की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में अंग्रेजों तथा ईसाई मिशनरियों ने की. 19 वीं सदी के मध्य तक आते-आते उदार हिंदुओं, ब्राह्मणों तथा कुछ प्रगतिशील छात्रों का ध्यान स्त्रियों की शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ. इसका कारण यह भय था कि ईसाई मिशनरियाँ शिक्षा के बहाने स्त्रियों का धर्म न परिवर्तित करा दें. 19वीं सदी के मध्य में स्त्री शिक्षा आंदलनों पूरे देश में फ़ैल गया.

इस संबंध में महात्मा ज्योतिबा फुले को याद करना आवश्यक है, जिन्होंने पहले अपनी पत्नी सावित्रीबाई को शिक्षित-प्रशिक्षित किया और फिर अपने स्कूल में शिक्षिका बनाया. सावित्रीबाई आधुनिक भारत की पहली शिक्षिका मणि जाति हैं. महात्मा फुले ने 19 वीं सदी के मध्य में अतिशूद्रों, महारों, मांग आदि जातियों के लिए स्कूल खोले.

महात्मा फुले के आलावा दादाभाई नौरोजी, सरलादेवी चौधरानी, दयानंद सरस्वती, केशवचन्द्र आदि का अपने-अपने क्षेत्र में स्त्री शिक्षा के उन्नयन में उल्लेखनीय योगदान रहा है.

5. देवदासी प्रथा के विरुद्ध आंदलनों

भारत में धर्म की आड़ में देवदासी प्रथा प्रचलित रही है. येल्लम्मा देवी को पहली बेटी समर्पित की जाती थी, बाद में जिससे वेश्यावृत्ति कराई जाती थी. 1909 में मैसूर संस्थान ने देवदासी प्रथा पर रोक लगाने का क़ानून लागू किया. बाद में 1929 में मद्रास तथा उसके कुछ समय पश्चात् मुम्बई सरकार ने अपने यहाँ इस तरह का क़ानून लागू किया.

देवदासी प्रथा के उन्मूलन में विरशालिंगम ने अपने यहाँ मुजरेवाली नर्तकी प्रथा का विरोध किया और राजमहेंद्री में वेश्यायों के लिए एक पुनर्वसन गृह की स्थापना की. कृष्णा जिले की मक्कुला जाति में मुजरा व्यवसाय के लिए बड़ी बेटी को समर्पित करने की प्रथा थी. यह प्रथा आगे चलकर समाप्त हुई.

आन्ध्रा के समाज सुधारक और स्वतंत्रता सेनानी दारसि चेंचैप्या ने एक वेश्यपुत्री के साथ मिलकर एक पत्रिका निकाली और पूरे आंध्र प्रदेश में देवदासी प्रथा के खिलाफ सभाएं कीं इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक स्त्रियों ने इस पेशे को तिलांजलि दे दी. उन्होंने पढना-लिखना सीखा, शादी की और इज्जत की बितानी शुरू की.

6. मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा हेतु आंदलनों

हिंदुओं की तरह मुस्लिम सुधारवादियों ने भी अपनी जाति की स्त्रियों की शिक्षा के समुचित प्रबंध किये. ये प्रबंध भी आन्दोलनात्मक थे जिसके तहत अलीगढ़ और लाहौर में स्त्रियों की शिक्षा के बड़े केंद्र स्थापित किए गए. सर सैयद ने अलीगढ़ में सुधारवादी आंदोलनों के तहत शिक्षा के क्षेत्र में

उल्लेखनीय काम किया. हालाँकि सर सैयद लड़कियों के लिए पाश्चात्य ढंग की शिक्षा के विरोधी थे. किंतु यह भी सच है कि उन्होंने स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार खोले.

3.1.5. विषय-विस्तार तीन : सामाजिक सुधार आंदोलनों का स्त्री-जीवन पर प्रभाव : एक आकलन

भारत में सुधारवादी आंदोलनों में स्त्रियों के मुद्दों का शामिल होना एक प्रकार से फ्रांस की राज्यक्रांति तथा इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के बुद्धीजीवियों के नारीवादी विचारों के प्रभावस्वरूप था. 19 वीं सदी में यूरोप में भी 'महिला प्रश्न' वहाँ के सुधारवादियों के एजेंडे में आ गया था. भारत में इन सबके प्रभावस्वरूप स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व इत्यादि का नारा बुलंद हुआ. कालान्तर में स्त्री-पुरुष संबंधोंके संदर्भ में स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व इत्यादि की बात उठने लगी और इसने ज़ोर पकड़ा. इसके परिणामस्वरूप स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और स्त्री-अस्मिता जैसे प्रत्यय उभरे, जिन्होंने आगे चलकर एक गम्भीर विमर्श का रूप ग्रहण किया. सुधारवादी आंदोलनों के एजेंडे में स्त्री-प्रश्नों का सम्मिलित होना इसी के परिणामस्वरूप सम्भव हुआ. 19 वीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों में स्त्रियों से जुड़े मसले पर्याप्त प्रमुखता से उभरे थे, हालाँकि वस्तुस्थिति यह भी है कि इनका संबंध अधिकतर उच्च वर्गीय हिंदू समाज से ही था. किंतु चूँकि ये मुद्दे स्त्रियों से जुड़े थे, अतः इनसे समस्त स्त्रियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था.

उक्त समाज सुधार आंदोलनों के परिणामस्वरूप जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं, उन्हें निम्नानुसार आकलित किया जा सकता है-

1. स्त्री-शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ.
2. स्त्री की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक भूमिका में वृद्धि हुई.
3. जातिवादी व्यवस्था और अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष तथा दलित आंदलनों का उदय.
4. लिंग-भेद सम्बन्धी सचेतनता तथा लैंगिक भेदभाव के प्रति सजगता का उदय.
5. महिला संगठनों का उदय.
6. मुस्लिम समाज सुधारक महिलाओं का उदय.

उक्त उपलब्धियों में से सबसे बड़ी उपलब्धि महिला संगठनों का उदय मानी जा सकती है. महिला संगठन एक सामूहिक और समेकित आवाज़ में अपनी बात रख सकते हैं. स्त्रियों के मुद्दों को जितनी शिद्दत और स्पष्टता के साथ महिलाओं के संगठन उठा सकते हैं, उस तरह से कोई और नहीं उठा सकता. समाज सुधार आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी और कई जगह नेतृत्व ने स्त्रियों को अलग से संगठित होने की प्रेरणा दी. इन्हीं के परिणामस्वरूप पूरे देश में विभिन्न प्रकार के महिला संगठन व महिला संस्थाएँ उभरकर सामने आईं, जिन्होंने आगे चलकर स्वाधीनता आंदलनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. डा. राधा कुमार का यह कथन इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है- "बीसवीं सदी के आरंभ में महिलाओं के स्वायत्त संगठन बनने शुरू हो गए तथा कुछ ही दशकों में मसलन तीस और चालीस के दशक तक 'नारी सक्रियता' की एक विशेष श्रेणी का निर्माण हो गया." (कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास; अनुवाद एवं सम्पादन – रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि'; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ- 12).

3.1.6. सारांश

इस इकाई को कुल पाँच बिंदुओं में विभाजित कर अध्ययित किया गया है. सबसे पहले इस इकाई के उद्देश्य निरूपित किया गया है, जिसके अंतर्गत कहा गया कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में भारत में जो सामाजिक सुधार आंदलनों या कार्यक्रम हुए, उनमें स्त्रियों के मुद्दे प्रमुखता के साथ उनकी कार्यसूची में थे. इस काल-खंड में राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि सभी मोर्चों पर सुधारों, संशोधनों, नवाचारों की स्थापना की कोशिश की गई. इन सुधारों, संशोधनों, नवाचारों इत्यादि में स्त्रियों के मुद्दे कितने, कैसे और क्या थे, इस पर यहाँ विचार किया गया.

इस इकाई के विषय को विषय-विस्तार के तीन प्ररूपों में विभाजित करके अध्ययित किया गया है. पहले विषय-विस्तार के अंतर्गत सामाजिक सुधार आंदलनों का अर्थ प्रतिपादित किया गया. दूसरे विषय-विस्तार के अंतर्गत भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों की परंपरा और इतिहास पर विचार किया गया. इन सुधारों में स्त्रियों के मुद्दे किस रूप में, कितने और क्या-क्या आए, इस पर विचार किया गया है. तीसरे विषय-विस्तार के अंतर्गत समाज-सुधार आंदोलनों का स्त्रियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका आकलन किया गया. इन समाज-सुधार आंदोलनों के केंद्र में चूँकि स्त्री रही है, स्त्रियों के मुद्दे रहे हैं, अतः उनका उनसे प्रभावित होना तो स्वाभाविक ही था. इस प्रसंग में आकलन इस बिंदु का किया गया कि इन सुधार आंदोलनों से वास्तव में, यथार्थ के धरातल पर क्या सुधार समाज में हुए? और स्त्रियों के जीवन में वास्तव में क्या परिवर्तन आया?

इस इकाई की लीक से थोडा हटकर की गई प्रस्तावना में कहा गया है कि स्त्रियाँ अरसे से इतिहास की परिधि से बाहर रही चली आ रही हैं. उन्हें इतिहास से बाहर किया गया है. चूँकि वे समाज की मुख्यधारा से बाहर कर दी गई थीं, और दोयम दर्जे का जीवन जीती रहीं थीं, अतः उनकी समस्याओं, उनके संकटों, दुखों, अभावों, अपेक्षाओं इत्यादि पर कभी ध्यान ही नहीं दिया गया. पितृसत्तावादी राजनैतिक व सामाजिक, आर्थिक संरचनाओं के चलते स्त्री की आवाज़ सदैव दबा दी जाती रही है. इसलिए उनकी समस्याओं पर अलग से और विशेष रूप से विचार किये जाने की ज़रूरत है. इस इकाई का तर्क है कि नवजागरण के सुधारवादी दौर में पहली बार स्त्री की समस्याओं तथा मुद्दों पर लोगों का ध्यान गया. शिक्षा, स्वास्थ्य, सहमति का अधिकार और आयु, विवाह की आयु, संपत्ति में अधिकार, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा-अनिच्छा, गर्भपात, भ्रूण हत्या, लैंगिक अनुपात, दहेज और स्त्री-धन, सती प्रथा, देवदासी प्रथा, तलाक आदि-आदि अनेकानेक ऐसे मुद्दे हैं, जिनका संबंध स्त्रियों से है. नवजागरण कल में इन समस्त मुद्दों पर समाजसुधारकों का ध्यान गया और आवश्यक कदम उठाए गए. स्त्री-नियति की दृष्टि से इन समाजसुधार आंदोलनों का अत्यधिक महत्व है. इन आंदोलनों के परिणाम और प्रभावस्वरूप स्त्री इतिहास में पुनर्स्थापित होना शुरू हुई

3.1.7. प्रश्न

इस इकाई के आधार पर निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं-

1. उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख समाज सुधारों का परिचय दीजिये.
2. उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलनों में स्त्रियों से सम्बन्धित कौन-कौन से मुद्दे उभरक सामने आए थे?
3. समाज सुधार का अर्थ स्पष्ट कीजिए.
4. समाज सुधार आंदोलनों की स्वतंत्रता आंदलनों में क्या भूमिका रही है, स्पष्ट कीजिए.
5. समाज सुधार आंदोलनों का स्त्री-जीवन पर पड़े प्रभाव का आकलन कीजिए.

खंड- 3 आधुनिक काल और स्त्री
इकाई-2 राष्ट्रीय आंदलनों और स्त्री

इकाई की रूपरेखा

3.2.1. इकाई का उद्देश्य
3.2.2. प्रस्तावना
3.2.3. विषय-विस्तार एक : राष्ट्रीय आंदलनों और स्त्री
    3.2.3.1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और महिलाएँ
    3.2.3.2. बंगाल विभाजन के विरोध में महिलाएँ
    3.2.3.3. महिला मताधिकार का संघर्ष
3.2.4. विषय-विस्तार दो : राष्ट्रीय आंदलनों और महिला संगठन
    3.2.4.1. वीमेंस इंडियन एसोसिशन (डब्ल्यू. आई. ए.) (भारतीय नारी संघ)
    3.2.4.2. अखिल भारतीय महिला परिषद (ऑल इंडिया विमेंस कॉन्फ्रेंस–ए. आई. डब्ल्यू. सी.)
    3.2.4.3. महिला संगठन और मुस्लिम स्त्रियों के मुद्दे
3.2.5. विषय-विस्तार तीन : राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों और महिलाएँ
    3.2.5.1. गाँधी और स्त्री
    3.2.5.2. असहयोग आंदलनों और महिलाएँ
    3.2.5.3. सविनय अवज्ञा आंदलनों और महिलाएँ
    3.2.5.4. दांडीमार्च और महिलाएँ
    3.2.5.5. भारत छोड़ो आंदलनों और महिलाएँ
    3.2.5.6. क्रान्तिकारी आंदोलनों में महिलाएँ
3.2.6. सारांश
3.2.7. प्रश्न

3.2.1. इकाई का उद्देश्य

जैसा कि स्पष्ट है, इस इकाई का उद्देश्य है, राष्ट्रीय आंदोलनों में स्त्रियों की भूमिका का अवलोकन करना. भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में स्त्रियों ने बराबर का हिस्सा लिया था. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही जैसे-जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों आगे बढ़ा, स्त्रियों की सकारात्मक, सहयोगी एवं नेतृत्वकारी भूमिका उसमें निरंतर बढ़ती जाती है. इस आंदलनों में स्त्रियों की भूमिका बहुविध थी. राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों की प्रायः समस्त धाराओं में स्त्रियों ने अपनी महती भूमिका का निर्वाह किया था. इस इकाई का उद्देश्य उनकी इसी भूमिका का आकलन करना है.

3.2.2. प्रस्तावना

इस इकाई की प्रस्तावना यह है कि भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदलनों में स्त्रियों ने पुरुषों के समान ही यथाशक्ति बराबर की हिस्सेदारी निभाई है. स्त्रियाँ किसी भी मोर्चे पर पीछे नहीं थीं. जब भी, जैसा भी, जो भी अवसर उन्हें मिला, उन्होंने उसे बखूबी निभाया और अपना योगदान किया. इतिहास में पहली बार स्त्रियों को घर से बाहर निकलने और राष्ट्रीय मुद्दों पर संघर्ष का अवसर मिला, जिसे पूरी लगन और

समर्पण के साथ उन्होंने उत्तरदायी ढंग से पूरा किया इससे यह स्पष्ट होता है कि इतिहास में स्त्रियों को लैंगिक भेदभाव के आधार पर हीन मानकर चला गया है. उन्हें किसी लायक नहीं समझा गया और सदैव पीछे धकेला गया. भारत के स्वाधीनता संग्राम में उनकी व्यापक भूमिकाओं को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ किसी से किसी माने में कम नहीं हैं. बल्कि वे कई बार पुरुषों की अपेक्षा अधिक धैर्य और व्यवस्थित तरीके से काम को अंजाम देती हैं, जिसका परिणाम अपेक्षाकृत बेहतर होता है. स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न धाराओं में इतनी अधिक संख्या में स्त्रियों की उपस्थिति इसका अचूक प्रमाण है.

3.2.3. विषय-विस्तार एक : राष्ट्रीय आंदलनों और स्त्री

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों की मुख्यतः तीन धाराएँ भारत में रही हैं-

(1). गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का स्वतत्रता आंदलनों

(2). स्वदेशी क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष

(3). कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मजदूर-किसान वर्ग का सशत्र आंदलनों

इन तीनों ही धाराओं के आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी भरपूर रही है. इन सभी आंदोलनों में सभी वर्गों व जातियों की महिलाओं ने भारी संख्या में हिस्सेदारी की थी. दरअसल बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत में एक 'नई स्त्री' का उदय हो गया था. यह नई स्त्री रूढ़ीमुक्त, शिक्षित, सामूहिक गतिविधियों में हिस्सा लेने वाली, प्रगतिशील, घर से बाहर निकली हुई, लैंगिक समानता की पैरोकार, अपने निर्णय स्वयं लेने वाली, स्वतंत्र-स्वायत्त चेतना से संपन्न स्त्री थी, जो स्वयं आंदोलनों की दें थी तथा अब आंदोलनों में कूदने को तत्पर थी. आज़ादी के आंदलनों के दौरान इस नई स्त्री की उपस्थिति हम हर जगह देखते हैं.

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों में स्त्रियों की भूमिका के एक पक्ष को निम्नानुसार देखा जा सकता है-

3.2.3.1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और महिलाएँ

3.2.3.2. बंगाल विभाजन के विरोध में महिलाएँ

3.2.3.3. महिला मताधिकार का संघर्ष

3.2.3.1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और महिलाएँ

सन 1980 में पहली बार कांग्रेस के किसी अधिवेशन में महिलाओं को बोलने का अधिकार दिया गया था. 1890 में महिला उपन्यासकार स्वर्णकुमारी घोषाल और कादम्बिनी गांगुली प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुईं. उसके बाद लगातार कांग्रेस अधिवेशनों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ता गया. कांग्रेस अधिवेशनों में महिलाएँ स्त्रियों से जुड़े मुद्दे उठती थीं. जैसे 1900 के कलकत्ता अधिवेशन में कादम्बिनी गांगुली ने वेश्यावृत्ति का मुद्दा उठाया. कांग्रेस का संबंध स्त्रियों के कई संगठनों से था, जिनकी महिलाएँ कांग्रेस के कार्यक्रमों में सम्मिलित होती थीं. कांग्रेस से महिलाओं को जोड़ने का काम रमाबाई के प्रयासों द्वारा सम्भव हुआ. कांग्रेस के अधिवेशनों में महिलाओं ने मातृभूमि के लिए अपने समर्पण का प्राण लिया था.

3.2.3.2. बंगाल विभाजन के विरोध में महिलाएँ

अंग्रेजों द्वारा 1905 में किए गए बंगाल के विभाजन का आम जनता के साथ महिलाओं ने भी जबर्दस्त विरोध किया था. विभाजन की घोषणा के विरोध में मुर्शिदाबाद जिले के जावीकांडा गाँव में

500 महिलाएँ एकत्र हुईं. विभाजन के खिलाफ आंदलनों को तेज करने के लिए महिलाओं ने चंदे के रूप में अपने गहने तक दान कर दिए. बंगाल की औरतें अपने घूंघट खोल, परदा छोड़ विरोध में सडकों पर निकल आईं थीं.

1905 में ही विभाजन के खिलाफ आंदलनों की दिशा यह भी थी कि विदेशी सामान का बहिष्कार किया जाए तथा केवल बंगाल में निर्मित स्वदेशी सामान का उपयोग किया जाए. इस आंदलनों में महिलाओं ने भी पुरुषों की तरह और उनके साथ बड़ी संख्या में भागीदारी की.

3.2.3.3. महिला मताधिकार का संघर्ष

भारतीय स्त्रियों को मताधिकार देने न देने का निर्णय करने और रिपोर्ट देने के लिए अंग्रेज़ सरकार द्वारा गठित की गई साऊथबोरो कमेटी के समक्ष यहाँ की महिलाओं ने जोरदारी से अपना पक्ष रखा. जब यह कमेटी मुम्बई गई तो वहाँ आठ सौ महिलाओं ने हस्ताक्षर सहित एक प्रतिवेदन सौंपा. इसी प्रकार के प्रतिवेदन मुम्बई की स्नातक महिला संगठन, होमरूल लीग की सभी शाखाओं, भारत स्त्री मंडल और अखिल भारतीय महिला प्रतिनिधि मंडल की सदस्याओं की ओर से भी सौपे गए थे. जब इस कमेटी ने मताधिकार के खिलाफ फैसला दिया तो उसके विरोध में पूरे देश में सभाएँ हुईं और प्रस्ताव पास हुए. भारतीय महिला प्रतिनिधि मंडल की सदस्य के रूप में इंग्लैण्ड में एनी बेसेंट और सरोजिनी नायडू ने इस मुद्दे को उठाया.

महिलाओं ने लिंगभेद के आधार पर मताधिकार से वंचित रखने के कानून को चुनौती दी. एक समय था जब इन तीन आधारों पर स्त्रियों को मत देने का अधिकार मिलता था- 1. संपत्ति की योग्यता के आधार पर, 2. पत्नीत्व की योग्यता के आधार पर; तथा 3. साक्षरता/शिक्षा की योग्यता के आधार पर . ये तीनों ही आधार पुरुषकेन्द्रिकता से उत्प्रेरित थे. यानी कि स्त्री के अपने व्यक्तित्व की कोई महत्ता या पहचान तब नहीं थी. तीसरे आधार में स्त्री के व्यक्तित्व की थोड़ी-बहुत पहचान थी. आगे चलकर विभिन्न महिला संगठनों के प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ.

3.2.4. विषय-विस्तार दो : राष्ट्रीय आंदलनों और महिला संगठन

भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों में महिला संगठनों की महती भूमिका रही है. प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् विभिन्न महिला संगठन स्थापित हुए. 1917 से ’20 के तीन-चार सालों में तीन प्रमुख महिला संगठन बने- 1. वीमन्स इंडियन एसोसिएशन (डब्ल्यू. आई. ए – भारतीय नारी संघ) 2. नेशनल काउन्सिल ऑफ़ वीमेन इन इंडिया (एन. सी. डब्ल्यू. आई.) तथा 3.ऑल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस (ए. आई. डब्ल्यू. सी.). इनमें नेशनल काउन्सिल ऑफ़ वीमेन इन इंडिया (एन. सी. डब्ल्यू. आई.) अधिकतर अंग्रेज़परस्ती में लगा रहा तथा उच्च वर्गीय स्त्रियों का जमावड़ा बना रहा. इसका आज़ादी की लड़ाई और स्त्रियों के सामान्य मुद्दों से कोई ज्यादा सरोकार नहीं था. अतः यहाँ पहले और तीसरे संगठन पर ही संक्षेप में विचार किया जाना उचित होगा-

3.2.4.1. वीमेंस इंडियन एसोसिशन (डब्ल्यू. आई. ए.) (भारतीय नारी संघ)

भारतीय नारी संघ की गतिविधियाँ यों तो कुलमिलाकर रूढ़िवादी ही रही, हालाँकि कुछ क्षेत्रों एवं बिंदुओं पर उसकी भूमिका अग्रगामी थी. जैसे 19 वीं सदी उत्तरार्द्ध और 20 वीं सदी पूर्वार्द्ध के पुरुष समाज सुधारवादी थे, उसी प्रकार महिलाओं का यह संगठन था. यह सीता, सावित्री, दमयन्ती जैसे पौराणिक चरित्रों से प्रेरणा प्राप्त करता था. यह स्त्री शिक्षा का समर्थक था किंतु लड़कियों के लिए गृहविज्ञान जैसे विषयों की पढ़ाई की वकालत करता था.

हालाँकि, जैसा कि कहा गया, भारतीय नारी संघ ने पुरुषों और स्त्रियों को तलक के समान अधिकार, तलाक़ के समान क़ानून और समान नैतिक मूल्यों की माँग भी की. भारतीय नारी संघ स्त्री-शिक्षा पर सबसे ज्यादा ज़ोर देता था. स्त्रियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने तथा राजनैतिक रूप से सजग और सक्रिय बनाने के लिए अनेक योजनाएँ भारतीय नारी संघ चलाता था. स्त्रियों को मत देने के अधिकार के सिलसिले में भी भारतीय नारी संघ ने सक्रियता दिखाई. एनी बेसेंट इसकी पहली अध्यक्ष थीं.

3.2.4.2. अखिल भारतीय महिला परिषद (ऑल इंडिया विमेंस कॉन्फ्रेंस – ए. आई. डब्ल्यू. सी.)

देश के विभिन्न महिला संगठनों के बीच सम्पर्क तालमेल बनाए रखने, जागरूकता लाने तथा कार्यक्रमों को तेज और व्यापक बनाने के उद्देश्य से सन 1925 में नेशनल काउंसिल ऑफ़ वीमेन की स्थापना हुई. उसके बाद 1926 में ऑल इंडिया वीमेंस कॉन्फ्रेंस की स्थापना हुई. जिसका पहला सम्मेलन पूना में हुआ.

ए. आई. डब्ल्यू. सी. ने लड़कियों की शिक्षा पर सबसे ज्यादा ज़ोर दिया. इस संगठन से जुड़ी महिलाओं का यह मानना था कि बाल विवाह जैसी प्रथा को दूर करने के लिए लड़कियों का शिक्षित होना जरूरी है, शिक्षा के अलावा समाज कल्याण से सम्बन्धित मुद्दों पर आम लोगों में जागरूकता पैदा करने, एक तरह से जनमत तैयार करने सम्बन्धी कार्यक्रम भी चलाए. इस संगठन ने आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया और साथ ही जन सामान्य की जिंदगी से जुड़े मुद्दों को अपने एजेंडे में लिया. जैसे महिला श्रम, ग्रामीण पुनर्निर्माण, स्वदेशी उद्योग, पाठ्यपुस्तक, अफीम और शारदा कानून से सम्बन्धित बिंदु.

3.2.4.3. महिला संगठन और मुस्लिम स्त्रियों के मुद्दे और अलगाववाद

सन 1936 में पंजाब प्रांतीय मुस्लिम लीग की साधारण सभा में जो तय हुआ, उसके अनुसार ए. आई. डब्ल्यू. सी. मुस्लिम महिला लीग की एक उपसमिति के बतौर कम करने लगी. इसका लक्ष्य था, मुस्लिम महिलाओं की राजनैतिक चेतना को जागृत करना. इस संगठन से जुड़ी कार्यकर्ताओं ने परदा प्रथा का विरोध किया व स्वयं भी परदे का परित्याग किया. इस संगठन से जुड़ी कार्यकर्ता जन्म नियन्त्रण के पक्ष में भी बोलती थीं. इस संगठन से जुड़ी बेगम शरीफा हाफिज अली भारत विभाजन की राजनीति का विरोध करती थीं. आगे चलकर हालाँकि इस महिला संगठन पर भी अलगाववादी तत्वों ने अपना कब्जा जमाना शुरू किया. अंततः विभाजनकारी तत्व प्रभावी हुए और 1944 आते-आते मुस्लिम महिला कार्यकर्ता ए. आई. डब्ल्यू. सी. को छोडकर चली गयीं और आगे चलकर विभाजन के बाद इन्होंने पाकिस्तान महिला परिषद का गठन कर लिया.

3.2.5. विषय-विस्तार तीन : राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों और महिलाएँ

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों के विभिन्न कार्यक्रमों में महिलाओं ने प्रारंभ से ही बढ़-चढकर हिस्सा लिया था. इसकी तीन धाराओं का उल्लेख ऊपर किया गया. यहाँ महात्मा गाँधी के कार्यक्रमों / आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी पर विचार अपेक्षित है. इस बिंदु पर निम्न उपबिंदुओं के बतौर चर्चा की जा सकती है-

3.2.5.1. गाँधी और स्त्री

3.2.5.2. असहयोग आंदलनों और महिलाएँ

3.2.5.3. सविनय अवज्ञा आंदलनों और महिलाएँ

3.2.5.4. दांडीमार्च और महिलाएँ

3.2.5.5. भारत छोड़ो आंदलनों और महिलाएँ

3.2.5.6. क्रान्तिकारी आंदोलनों में महिलाएँ

इन पर बारी-बारी से विचार किया जा सकता है.

3.2.5.1. गाँधी और स्त्री

महात्मा गाँधी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्त्रियों को बड़े पैमाने पर उद्वेलित किया. स्त्रियाँ गाँधी के आंदोलनों में पहली बार इतनी बड़ी संख्या में घरों से निकलकर बाहर आईं. दक्षिण अफ्रीका से लौटने और स्वाधीनता आंदलनों की शुरुआत में गाँधी महिला समाज सुधार में सक्रिय महिला नेताओं और कार्यकर्ताओं से मिले थे. अपनी एक बातचीत में गांधीजी ने महिलाओं का आह्वान इस तरह किया था- "भारत को प्राचीन काल की वीरांगनाओं की तरह पवित्र, दृढ़ और आत्मसंयमी महिलाओं की आवश्यकता है, जो सीता, दमयन्ती और द्रौपदी जैसी हों." (शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ- 68).

गाँधीजी ने महिलाओं को राष्ट्रीय आंदलनों में शामिल किये जाने का आह्वान करते हुए कहा था कि महिलाएँ इसमें बड़ी संख्या में शामिल हों ताकि पुरुषों की संपूर्ण भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा सके. गांधीजी ने महिलाओं को विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने, स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल की शपथ लेने का आह्वान किया. इसी क्रम में रोज़ सूत कातने का आह्वान भी किया. गांधीजी के इस आह्वान का गहरा और व्यापक असर हुआ और घर-घर में चरखा पहुँच गया. अपने चरखे पर सूत कातना एक ओर स्वदेशी को बढ़ावा देना था तो दूसरी ओर यह घरेलू महिलाओं के लिए आमदनी का एक लोकप्रिय स्रोत भी बन गया.

गाँधीजी ने हिंदू औरतों का यह कहकर आह्वान किया कि वे पुरुषों का साथ सीता की तरह वीर और विश्वासपात्र बनकर दें. और मुस्लिम औरतों से कहा कि वे भी चरखा कातें और अपने शौहरों को आंदलनों में शामिल होने के लिए प्रेरित करें. उन्होंने इस्लाम को बचाने की खातिर विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का मुस्लिम औरतों से आह्वान किया. किंतु गाँधी ने यह भी कहा कि स्त्रियाँ अपने घर के दायित्व से मुँह न मोड़ें और उसे पूर्ण करते हुए ही आंदलनों में सहयोग करें. इसका अर्थ यह भी हुआ कि महिलाएँ एक सीमा से आगे आंदलनों में आगे नहीं बढ़ सकती थीं. गाँधी स्त्रियों के लिए सहायक की भूमिका की ही उम्मीद करते थे.

किंतु गांधीजी को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने, जैसा कि पूर्व में कहा गया, स्त्रियों को घरों की चारदीवारी से बाहर निकालकर राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ा. यह एक प्रकार से स्त्रियों का इतिहास में लौटना, इतिहास में उनकी पुनर्वापिसी भी कही जा सकती है. डा. राधा कुमार ने लिखा है- "गाँधी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने सार्वजनिक गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता के औचित्य को सिद्ध करते हुए उसे विस्तार दिया ताकि वे वर्ग एवं सांस्कृतिक बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ सकें." (कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास; अनुवाद एवं सम्पादन – रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि'; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ- 175). राष्ट्रीय आंदलनों की विभिन्न गतिविधियों और कार्यक्रमों से जुड़कर और उनमें सक्रिय भागीदारी करके महिलाओं को एक मुक्ति के जैसा अनुभव होता था. गाँधी का स्त्री-मुक्ति की प्रकिया में उस समय यह बहुत बड़ा योगदान था, जब स्त्रियाँ ज्यादातर घूँघट और पर्दों में घर की चारदीवारी में लगभग क़ैद थीं- "महात्मा गाँधी के आह्वान पर ब्रिटिश शासित भारत के सभी प्रांतों से महिलाएँ ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदलनों में आगे आईं.

गाँधी ने महिलाओं से कहा कि वे विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करें. खुद उम्र में छोटी होने के कारण स्वयंसेविका नहीं बन पाई महिलाओं के लिए घर-गाँव छोड़कर आंदलनों में शामिल होने का अनुभव मुक्ति के अनुभव जैसा ही था." (शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ- 73-74).

3.2.5.2. असहयोग आंदलनों और महिलाएँ

1920-21 के असहयोग आंदलनों में महिलाएँ बड़े पैमाने पर शामिल थीं. रौलक एक्ट के पास होने के बाद शुरू हुए असहयोग आंदलनों में संगठित रूप से पहली बार महिलाएँ शामिल हुईं. इससे पहले भी महिलाएँ राष्ट्रीय आंदलनों के कार्यक्रमों में शामिल थीं. लेकिन असहयोग आंदलनों में एक संगठित शक्ति और सशक्त नेतृत्व के रूप में महिलाएँ पहली बार व्यापक रूप में उभरकर सामने आईं. असहयोग आंदलनों में महिलाओं को अपेक्षाकृत ज्यादा स्पेस मिला. ज्यादा स्पेस मिलने पर व्यापक और विश्वसनीय रूप में उनकी संगठन एवं नेतृत्वक्षमता का विकास हुआ जो बहुत कम का साबित हुआ. इससे गाँधी की वह आकांक्षा पूरी हुई कि स्त्रियाँ अपने पतियों को मन लगाकर राष्ट्रीय आंदलनों में हिस्सा लेने को उत्प्रेरित करें.

असहयोग आंदलनों का स्वरूप अखिल भारतीय था. उत्तर से लेकर दक्षिण तक यह आंदलनों फैला था. तदनुसार महिलाएँ भी उत्तर से लेकर दक्षिण तक इसमें शामिल थीं. पंजाब, बंगाल, बम्बई, आसाम, पश्चिमोत्तर प्रांत, लखनऊ, नागपुर, आन्ध्र प्रदेश, अहमदाबाद आदि समस्त प्रांतों में स्थानीय स्तर पर तथा बाहर से आकर भी, महिलाओं ने जी-जान से इस आंदलनों में हिस्सा लिया. अनेक महिला कार्यकर्ताओं ने इस आंदलनों में गिरफ्तारी दी. असहयोग आंदलनों में भाग लेने वाली असंख्य महिलाओं में प्रायः सभी वर्गों की महिलाएँ थीं.

असहयोग आंदलनों ब्रिटिश कानूनों की खिलाफ़त, शराबबंदी आंदलनों, झंडा सत्याग्रह, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रचार, खादी के इस्तेमाल पर बल, ब्रिटिश सरकार द्वारा अनर्गल तरीके से थोपे गए करों का विरोध इत्यादि सबको समेटे था. इस प्रकार कहा जा सकता है कि असहयोग आंदलनों विविधायामी था और उसमें महिलाओं की भागीदारी भी विविधस्तरीय रही.

3.2.5.3. सविनय अवज्ञा आंदलनों और महिलाएँ

सविनय अवज्ञा आंदलनों में महिलाओं की भागीदारी असहयोग आंदलनों से भी अधिक थी. यह भी अखिल भारतीय स्तर का आंदलनों था और अखिल भारतीय स्तर पर ही महिलाओं ने इसमें भागीदारी की थी. राष्ट्रीय आंदलनों सार्वजनिक जीवन में आने का एक माध्यम या प्लेटफार्म था. इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि स्त्रियों के बिना कोई आंदलनों न तो पूर्ण हो सकता है और न उसे अपेक्षित सफलता ही मिल सकती है. गाँधी के अहिंसात्मक आंदलनों के लिए स्त्रियाँ सबसे उपयुक्त उपादान थीं. स्त्रियों की कष्ट सहन करने की अकूत क्षमता उन्हें इस योग्य बनाती थी. सम्भवतः यही कारण था कि गांधीजी के आंदोलनों में स्त्रियों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी. यह केवल संख्या का बढ़ना नहीं था, आंदलनों की गुणात्मकता और गुणवत्ता भी उनके कारण बढ़ रही थी. वे अब अपरिहार्य और आवश्यक हो गई थीं. स्त्रियों के इस महत्व के पीछे कस्तूरबा का बड़ा भारी योगदान था. गाँधी की तरह बा भी राष्ट्रीय आंदलनों का अपरिहार्य हिस्सा बन गई थीं. अब प्रचार और संचार के माध्यमों ने भी इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया था. कहीं-कहीं तो पुरुषों से ज्यादा संख्या स्त्रियों की होती थी. स्त्रियाँ अब इतनी बड़ी संख्या में सकिय थीं कि वे अलग से एक इकाई बन चुकी थीं. ऐसा प्रायः पूरे देश में था.

स्त्रियों के नेतृत्व वाले कार्यक्रम – धरने, जुलूस, प्रदर्शन, हड़ताल इत्यादि – अपेक्षाकृत ज्यादा व्यवस्थित, अनुशासित और प्रभावशाली होते थे. स्त्रियाँ प्रबंधन में पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा कुशल होती हैं. उनके इस स्वाभाविक गुण का राष्ट्रीय आंदलनों को पूरा लाभ मिल रहा था. इस समय तक स्त्रियों का एक नया संघ 'देश सेविका संघ' बन गया था, जिसकी सदस्याएँ जैसे देश-सेवा के लिए ही पूरी तरह समर्पित थीं.

इस समय तक राष्ट्रीय आंदलनों में सक्रिय महिलाओं के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरुआत हो गई थी. इस हेतु शिविर लगाए जाते थे. जैसे कि हिंदुस्तानी सेवा दल के तहत संचालित महिला संगठन की प्रभारी कमलादेवी 1930 में ऐसे शिविरों का आयोजन करती थीं. इन शिविरों में महिलाओं को प्रचार गीत गाने, गाँवों में सभाएँ आयोजित करने, सभाओं में शांति कायम रखने, कानून व्यवस्था सँभालने, साफ-सफाई करके स्वच्छता रखने, घायलों को प्राथमिक चिकित्सा, सेवा सुश्रुषा करने और सूत कातने का प्रशिक्षण दिया जाता था. (द्रष्टव्य : (शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ- 76-77).

3.2.5.4. दांडीमार्च और महिलाएँ

मार्च 1930 में अंग्रेज़ों के नमक क़ानून को तोड़ने, अंग्रेज़ों के एकाधिकार को तोड़कर स्वयं नमक का उत्पादन करने के लिए नागरी अवज्ञा आंदलनों के तहत गांधीजी ने अहमदाबाद से दांडी तक की 240 मील की यात्रा शुरू की थी. यही यात्रा दांडी मार्च के नाम से जानी जाती है.

यात्रा शुरू करते समय स्त्रियों को इसमें शामिल नहीं किया गया था. गांधीजी का तर्क था कि "उन्होंने 'नमक कानून' तोड़ने की तुलना में महिलाओं के लिए कहीं ज्यादा बड़ी जिम्मेदारी के कम की व्यवस्था कर रखी है." इसके अलावा उनका यह भी सोचना था कि कहीं ऐसा न हो कि इससे अंग्रेज़ उन्हें औरतों की आड़ में छिपने वाला कायर कहने लगें!

लेकिन कांग्रेस से जुड़ी महिला आंदलनोंकारियों, कार्यकर्ताओं, पदाधिकारियों आदि ने लगातार इसका विरोध किया. भारतीय नारी संघ (डब्ल्यू. आई. ए.) ने गाँधी से दांडी मार्च में महिलाओं को शामिल करने की अपील की, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया. मार्गरेट बहनों ने 'स्त्री-धर्म' में लिखकर गाँधी के इस फैसले का विरोध किया. दादा भाई नौरोजी की पौत्री खुर्शीद नौरोजी ने इस पर एक नाराज़गी भरा पत्र गांधीजी को लिखा. कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने बार-बार गांधीजी से महिलाओं को इस आंदलनों में शामिल करने का आग्रह किया. बार-बार के आग्रह पर गाँधी ने आखिरकार उनकी बात मान ली.

नमक सत्याग्रह में भारी संख्या में स्त्रियों ने भाग लिया. यह आंदलनों इतना व्यापक था कि पूरे देश में जगह-जगह नमक बनाने का काम हुआ. इस काम में स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया. अनेकानेक महिलाएँ इस आंदलनों में गिरफ्तार हुईं. नमक सत्याग्रह में लगभग अस्सी हजार लोग गिरफ्तार हुए. इनमें लगभग सत्रह हज़ार महिलाएँ थीं. इनमें सामान्य तथा उच्च प्रायः सभी वर्गों की महिलाएँ शामिल थीं. नमक सत्याग्रह में शामिल प्रमुख महिला नेत्रियाँ ये थीं- सरोजिनी नायडू, लाडो रानी जुत्शी, कमला नेहरू, हंसा मेहता, अवन्तिका बाई, गोरपले, सत्यवती, होशिबेन कैंटन, पार्वतीबाई, लीलावती मुंशी, दुर्गावती देशमुख, कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि. नमक सत्याग्रह से जुड़ी महिलाओं ने नमक बनाया भी और बेचा भी.

नमक सत्याग्रह में महिलाओं के आंदलनों कौशल का अभूतपूर्व विकास हुआ. वे सफल नेतृत्वकर्त्री के रूप में उभरीं. इस मामले में पुरुषों को भी इन्होने पीछे छोड़ दिया. स्त्रियों की इस सफलता के पीछे उनका असीमित धैर्य, संघर्षशीलता, कष्ट सहन करने की क्षमता इत्यादि गुण थे.

3.2.5.5. भारत छोड़ो आंदलनों और महिलाएँ

1942 के भारत छोड़ो आंदलनों में स्त्रियों ने काफी बड़ी संख्या में भाग लिया. इस बार महिलाओं को आंदलनों में शामिल होने की मिन्नतें नहीं करनी पड़ीं बल्कि स्वयं आंदलनों के लिए महिलाओं का आह्वान किया गया. अरुणा आसफ़ अली इस आंदलनों की सबसे महत्वपूर्ण नेता थीं. उन्हीं ने बम्बई के टैंक मैदान में 9 अगस्त 1942 को तिरंगा फहरा कर इसका ऐलान किया. 'करो या मरो' की उद्घोषणा के साथ भारत छोड़ो आंदलनों की शुरुआत इसी मैदान से हुई थी. घोषणा के बाद कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए, किंतु स्वयं अरुणा आसफ़ अली भूमिगत हो गईं. तीन-चार साल भूमिगत रहते हुए भी वे लोगों को विदेशी शासन से मुक्त होने के संघर्ष की प्रेरणा देती रहीं. इस समय सुचेता कृपलानी ने महिला संगठनों को एकसूत्रता में पिरोने का काम शुरू किया सुचेता कृपलानी विशुद्ध गाँधीवादी थीं. उन्होंने अहिंसा का मार्ग अपनाया, जबकि अरुणा आसफ़ अली का रास्ता हिंसाचार का निषेध नहीं करता था.

भारत छोड़ो आंदलनों में हजारों महिलाओं ने भाग लिया. भारत छोड़ो आंदलनों से जुड़ी अनेक महिलाएँ आगे चलकर आंदलनों की क्रान्तिकारी धारा से जुड़ीं और सक्रिय रहीं. क्रांतिकारी आंदलनों की धारा के कार्यक्रम उन्होंने अपनाए; जैसे कि भूमिगत होना, समानान्तर सरकार बनाना, गैरकानूनी गतिविधियों में शामिल होना, आदि. किसान आंदलनों से जुड़ी अनेक महिलाएँ इस आंदलनों में थीं. भारत छोड़ो आंदलनों ने प्रकारान्तर से आज़ादी की क्रान्तिकारी आंदलनों की धारा को प्रशस्त किया.

3.2.5.6. क्रान्तिकारी आंदोलनों में महिलाएँ

गाँधीवादी / कांग्रेसी महिला कार्यकर्ताओं, संगठनों के अतिरिक्त इन्हीं के समानान्तर क्रान्तिकारी महिला कार्यकर्ताओं, संगठनों का सशक्त अस्तित्व लगातार मौज़ूद रहा आया है. दरअसल कांग्रेस की महिला नीति ही इनके अलग संगठन के लिए ज़िम्मेदार रही है. 1928 में सुभाषचन्द्र बोस तथा बाद में कमलादेवी चट्टोपाध्याय और लतिका घोष ने यह प्रस्ताव रखा और इसके लिए बहुत कोशिश की कि कांग्रेस के अन्दर ही अलग से एक महिला संगठन बनाया जाए किंतु कांग्रेस नेतृत्व ने कभी इसकी इजाज़त नहीं दी. इसका नतीज़ा यह हुआ कि उन्होंने अलग से 'नारी सत्याग्रह समिति' बना ली तथा साथ ही कांग्रेस के साथ मिलकर बहिष्कार, धरना, स्वदेशी प्रचार, चरखा चलाना, सभाओं तथा जुलूसों के आयोजन इत्यादि के काम करने के लिए एक 'महिला धरना बोर्ड' भी बनाया.

बंगाल में महिलाओं का क्रान्तिकारी आंदलनों बहुत मजबूत रहा है. असल में गाँधी से मोहभंग के उपरान्त महिलाएँ क्रान्तिकारी आंदलनों की धारा से जुड़ी थीं. ये अधिकांशतः युवा महिलाएँछात्राएँ थीं. इन छात्राओं ने 1928 में कलकत्ता में 'छात्री संघ' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य क्रान्तिकारी तरीके से अंग्रेजों से संघर्ष करना चाहता था लड़कियों की स्टडी क्लास, उन्हें लाठी तलवार बन्दूक चलाना सिखाना, भूमिगत साहित्य, हथियार उग्रवादी सोसाइटी के सदस्यों को पहुँचाना आदि इसके कार्य थे. इस संगठन में बड़ी संख्या में लडकियाँ शामिल थीं. ये सीधी कार्रवाई में विश्वास रखती थीं. इस संगठन की स्त्रियों के कार्यों को देखकर लोग पहली बार इस तथ्य से सहमत हुए कि स्त्रियाँ भी वह काम कर सकती हैं,जो पुरुष करते हैं. वे भी पुरुषों की भांति देश के ऊपर अपना जीवन न्यौछावर कर सकती हैं. (द्रष्टव्य :

(शुक्ला, प्रो. आशा, कुसुम त्रिपाठी; उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेंडर, महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल; 2014; ISBN 978-81-905131-7-19; पृष्ठ- 93-94).

उक्त तथा अन्य संगठनों के क्रान्तिकारी आंदलनों से जुड़ी महिलाओं में अनुजा सेन, शांति घोष, सुनीति चौधरी, बीना दास, कल्याणीश्री मजूमदार, कमला दासगुप्ता, सुहासिनी देवी, प्रीतिलता वाडेकर, प्रकाशवती, सुशीलादेवी, रूपवती जैन, दुर्गा भाभी आदि के नाम सर्वप्रमुख हैं. इनमें प्रीतिलता वाडेकर पुरुष वेश में भी सकिय रहती थीं.

क्रान्तिकारी महिला आंदलनों की परंपरा में सुभाषचन्द्र बोस की रानी झाँसी रेजिमेंट एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में सामने आती है. कैप्टन लक्ष्मी सहगल के नेतृत्व में बनी रानी झाँसी रेजिमेंट का इतिहास में उल्लेखनीय स्थान है. इसमें स्त्रियाँ पुरुष सैनिकों के वेष में रहती थीं और उन्हें कठोर अनुशासन के साथ हर प्रकार का सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था. इस रेजिमेंट में 150 महिला सैनिक थीं.

3.2.6. सारांश

जैसा कि हमने देखा, इस इकाई का अध्ययन हमने इकाई का उद्देश्य, इकाई की प्रस्तावना, विषय-विस्तार- एक, विषय-विस्तार- दो तथा विषय-विस्तार- तीन के रूप में किया है. इस इकाई का उद्देश्य था, राष्ट्रीय आंदोलनों में स्त्रियों की भूमिका का अवलोकन. भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में स्त्रियों ने बराबर का हिस्सा लिया था. जैसे-जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों आगे बढ़ा, स्त्रियों की सकारात्मक, सहयोगी एवं नेतृत्वकारी भूमिका उसमें निरंतर बढ़ती जाती है. इस आंदलनों में स्त्रियों की भूमिका बहुविध थी. राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों की प्रायः समस्त धाराओं में स्त्रियों ने अपनी महती भूमिका का निर्वाह किया था. इस इकाई की प्रस्तावना यह रही है कि भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदलनों में स्त्रियों ने पुरुषों के समान ही यथाशक्ति बराबर की हिस्सेदारी निभाई है. स्त्रियाँ किसी भी मोर्चे पर पीछे नहीं थीं. जब भी, जैसा भी, जो भी अवसर उन्हें मिला, उन्होंने उसे बखूबी निभाया और अपना योगदान किया. इतिहास में पहली बार स्त्रियों को घर से बाहर निकलने और राष्ट्रीय मुद्दों पर संघर्ष का अवसर मिला, जिसे पूरी लगन और समर्पण के साथ उन्होंने उत्तरदायी ढंग से पूरा किया भारत के स्वाधीनता संग्राम में उनकी व्यापक भूमिकाओं को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ किसी से किसी माने में कम नहीं हैं. बल्कि वे कई बार पुरुषों की अपेक्षा अधिक धैर्य और व्यवस्थित तरीके से काम को अंजाम देती हैं.

विषय-विस्तार एक का शीर्षक दिया गया है- राष्ट्रीय आंदलनों और स्त्री. इसमें राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों की तीन प्रमुख धाराओं- गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का स्वतत्रता आंदलनों, स्वदेशी क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष तथा कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मजदूर-किसान वर्ग का सशत्र आंदलनों का परिचय दिया गया है. आगे फिर इसे चार भागों में वर्गीकृत करके देखा गया है- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और महिलाएँ, बंगाल विभाजन के विरोध में महिलाएँ, तथा महिला मताधिकार का संघर्ष. इन तीनों ही धाराओं के आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी भरपूर रही है. इन सभी आंदोलनों में सभी वर्गों व जातियों की महिलाओं ने भारी संख्या में हिस्सेदारी की थी. इस समय भारत में एक 'नई स्त्री' का उदय हो गया था. यह नई स्त्री रूढ़ीमुक्त, शिक्षित, सामूहिक गतिविधियों में हिस्सा लेने वाली, प्रगतिशील, घर से बाहर निकली हुई, लैंगिक समानता की पैरोकार, अपने निर्णय स्वयं लेने वाली, स्वतंत्र-स्वायत्त चेतना से संपन्न स्त्री थी, जो स्वयं आंदोलनों की देन थी तथा अब आंदोलनों में कूदने को तत्पर थी. आज़ादी के आंदलनों के दौरान इस नई स्त्री की उपस्थिति हम हर जगह देखते हैं.

विषय-विस्तार दो का शीर्षक है- राष्ट्रीय आंदलनों और महिला संगठन. इसमें भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों में महिला संगठनों की जो महती भूमिका रही है, उस पर प्रकाश डाला गया है. इनमें वीमन्स इंडियन एसोसिएशन (डब्ल्यू. आई. ए – भारतीय नारी संघ), नेशनल काउन्सिल ऑफ़ वीमेन इन इंडिया (एन. सी. डब्ल्यू. आई.) तथा ऑल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस (ए. आई. डब्ल्यू. सी.) शामिल हैं. यहाँ इन तीनों पर विस्तार से चर्चा की गई है. इनकी उपलब्धियों की चर्चा की गई है.

विषय-विस्तार तीन में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों में महिलाओं की भागीदारी पर बहुविध चर्चा है. इसे पाँच उपबिंदुओं में विभाजित कर देखा गया है व विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है- गाँधी और स्त्री, असहयोग आंदलनों और महिलाएँ, सविनय अवज्ञा आंदलनों और महिलाएँ, दांडीमार्च और महिलाएँ, भारत छोड़ो आंदलनों और महिलाएँ तथा क्रान्तिकारी आंदोलनों में महिलाएँ. राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदलनों के इन समस्त कार्यक्रमों में महिलाओं ने प्रारंभ से ही बढ़-चढकर हिस्सा लिया था. इस विवरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आंदलनों में स्त्रियों की भागीदारी यह सिद्ध करती है कि वे पुरुषों से किसी भी रूप में पीछे नहीं थीं बल्कि कई मोर्चों पर उनसे आगे ही थीं. उन्होंने गाँधी के अहिंसात्मक आंदलनों में भी हिस्सा लिया तो कम्युनिस्टों के क्रान्तिकारी आंदोलनों में भी और सुभाषचन्द्र बोस की सशस्त्र स्त्री टुकड़ी रानी झाँसी रेजिमेंट में भी पुरुष सैनिकों के वेष में वे रहीं.

3.2.7. प्रश्न

1. गाँधीवादी आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका स्पष्ट कीजिए.
2. क्रान्तिकारी आंदोलनों में स्त्रियों ने बढ़-चढकर हिस्सा लिया था, उदाहरण सहित लिखिए.
3. राष्ट्रीय आंदलनों के दौरान बने व सक्रिय रहे विभिन्न महिला संगठनों का परिचय देते हुए उनके कार्यक्रमों का ब्यौरा दीजिए.
4. महिला-नवजागरण में महात्मा गाँधी के महत्व को व्याख्यायित कीजिए.
5. मताधिकार के लिए किये गए महिलाओं के संघर्ष का विवरण दीजिए.

खंड- 3 आधुनिक काल और स्त्री
इकाई-3 स्त्री शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

3.3.1. इकाई का उद्देश्य
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. विषय-विस्तार एक : नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा- एक ऐतिहासिक पुनराकलन
3.3.3.1. हिंदी-प्रदेश
3.3.3.2. हिंदी-इतर प्रदेश
3.3.4. विषय-विस्तार दो : स्त्रीशिक्षा की अंतर्वस्तु
3.3.4.1. स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु
3.3.4.2. स्त्रीशिक्षा के विविध आयाम और अंतर्सम्बद्धताएँ
3.3.5. विषय-विस्तार तीन : स्त्रीशिक्षा की उपलब्धि – एक नई स्त्री
3.3.6. सारांश
3.3.7. प्रश्न

3.3.1. इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य यह बताना है कि आधुनिक काल में स्त्रीशिक्षा का इतिहास क्या व कैसा रहा है? आधुनिक काल एक प्रकार से भारत में अंग्रेज़ी राज के प्रारंभ से माना जाता है. अंग्रेज़ी राज के प्रारंभ का समय भारतीय नवजागरण की शुरुआत का समय भी है. भारतीय नवजागरण भारतीय इतिहास का एक बहुत ही विवादास्पद परिवर्तन काल रहा है. इसमें सन्देह है कि क्या सचमुच यह नवजागरण था या था तो कितना था? कुछ लोगों का आरोप है कि यह मात्र उच्चकुलीन हिंदू पुनरुत्थान था, इसे नवजागरण कहना नवजागरण की अवधारणाओं को झुठलाना है . जो हो. किंतु यह पूरा समय भारतीय समाज के काफी बड़े हिस्से के वास्तविक पुनर्जागरण का समय है. कई क्षेत्रों में नवजागरण की स्थितियाँ भी उपस्थित हुईं. स्त्री सम्बन्धी इतिहास इसका साक्षी है.

इस इकाई में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि नवजागरण काल में भारत के विभिन्न प्रांतों में स्त्रियों की शिक्षा की क्या स्थिति थी तथा स्त्रीशिक्षा के प्रति सैद्धान्तिक रूप से समाज के विभिन्न वर्गों एवं समूहों में क्या धारणाएँ प्रचलित थीं? इस संबंध में लोगों की क्या मान्यताएँ, पूर्वावधारणाएँ, परंपराएँ, सोच इत्यादि क्या थीं? वे अपनी महिलाओं की शिक्षा-व्यवस्था के बारे में कितना चिन्तित थे, उन्हें समय के साथ चलाने के हिमायती थे या, उनके पिछड़ेपन को बनाए रखना चाहते थे; इन सब स्थितियों पर यहाँ विचार होगा.

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम यह जान सकेंगे कि नवजागरण काल में हिंदी तथा हिंदी-इतर प्रदेशों में स्त्रीशिक्षा को लेकर क्या व कैसी स्थितियाँ थीं. हिंदी प्रदेश के इलाक़े इस मामले में पर्याप्त पिछड़े रहे हैं. इन क्षेत्रों में स्त्री सम्बन्धी स्मृतिकालीन मान्यताओं का बोलबाला रहा है, जिनके अंतर्गत स्त्रीशिक्षा एक अनावश्यक उपक्रम है. यदि वह आवश्यक है भी तो उसकी पाठ्यवस्तु धार्मिक, गार्हस्थिक, पौराणिक सांस्कारिकतावादी इत्यादि ही होनी चाहिए. आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, तार्किकता, सामान्यता, वैश्विकता, समानता इत्यादि से उसका कोई संबंधन हो! इसके विपरीत हिंदी-इतर क्षेत्रों में न केवल स्त्रियों

की औपचारिक शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया गया बल्कि उसकी पाठ्यवस्तु में ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी विषय, तार्किक अध्ययन-पद्धति, वैश्विकता आदि तत्वों का बराबर ध्यान रखा गया तथा स्त्रियों क भी वही शिक्षा दी गई, जो पुरुषों को दी जाति थी. इसका परिणाम यह रहा कि एक नई स्त्री का अविर्भाव सम्भव हुआ. एक ऐसी स्त्री जो एक व्यक्ति के रूप में स्वतन्त्र और समानतावादी विचारों की पैरोकार थी. वस्तुतः स्त्रीशिक्षा का संबंध केवल स्त्रीशिक्षा से नहीं है, बल्कि एक स्त्री के पुनर्संस्कार से भी है. शिक्षा व्यक्ति के मनोविज्ञान का पुनर्गठन करती है. स्त्रीशिक्षा ने भी नवजागरण काल में भारतीय स्त्री का इसी तरह मनोवैज्ञानिक पुनर्गठन किया था. इस इकाई में हम इस प्रकिया का भी अध्ययन करेंगे.

3.3.2. प्रस्तावना

इस इकाई की प्रस्तावना यह है कि स्त्रीशिक्षा सभ्यता के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है. जिस देश की स्त्रियाँ अनपढ़ या अशिक्षित होती हैं, वह हर प्रकार के विकास में पीछे रह जाता है. स्त्री भी एक व्यक्ति है, एक मनुष्य है, अपने समाज का वह एक स्वाभाविक हिस्सा होती है अतः सभी मामलों में उसके साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए, जो औरों यानी कि पुरुष के साथ किया जाता है. शिक्षा या ज्ञान मनुष्य की एक अप्रतिम खोज है. इसे प्रकृति और निसर्ग के साथ अपने लंबे संघर्ष और साहचर्य में मनुष्य ने अवाप्त किया है. इस संघर्ष में पुरुष के साथ-साथ स्त्रियों ने भी बराबर का सहयोग किया है. अतः संघर्ष की इस प्रक्रिया की उपलब्धियों में भी उसका बराबर का अधिकार है. इतिहास ने स्त्री को उसके इस नैसर्गिक अधिकार से वंचित किया है. इस वंचना का प्रतिकार भी इतिहास द्वारा ही सम्भव था. उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध के भारतीय नवजागरणकालीन इतिहास ने स्त्री का यह अधिकार यत्किंचित लौटाया है. एक व्यक्ति के बतौर स्त्री का विकास की प्रक्रिया और परंपरा में पिछड़ना विकास की सैद्धान्तिकी का सबसे बड़ा अंतर्विरोध है. इस इकाई में यही अवधारणा प्रस्थान-बिंदु के रूप में ग्रहण की गई है कि अन्य मानवीय उपलब्धियों और खोजों की तरह शिक्षा पर भी स्त्री-जाति का बराबर का अधिकार है. शिक्षा से वंचित करके इतिहास ने उसके साथ भारी अन्याय किया है. इस अन्याय की विवेचना इतिहास के पुनरवलोकन द्वारा ही की जा सकती है. इतिहास के इस पुनरवलोकन से यह भी स्पष्ट होगा कि वे कौन-सी शक्तियाँ हैं, वे कौन-से सामाजिक समूह हैं, जो पहले भी स्त्रियों को शिक्षा से वंचित करते आए थे और आज भी किसी न किसी रूप में वे यह काम करने से नहीं हिचक रहे हैं.

3.3.3. विषय-विस्तार एक : नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा- एक ऐतिहासिक पुनराकलन

नवजागरण काल में स्त्री-शिक्षा की स्थिति-परिस्थितियों का आकलन इस बिंदु का उपलक्ष्य है. नवजागरण काल उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध का लगभग डेढ़ सौ साल की समयावधि का काल माना जाता है. इस लंबे समयांतराल में समाज-सुधार की एक लंबी परंपरा पूरे देश में रही है. स्त्रीशिक्षा का प्रसार, उसका विकास भी इस सुधार-प्रक्रिया का एक आवश्यक एजेंडा रहा है. लेकिन पूरे देश में स्त्रीशिक्षा का स्वरूप और प्रकृति एक जैसी नहीं रही है. स्थान और सामाजिक समूहों/समुदायों/वर्गों की प्रवृत्तियों, परंपराओं, स्वभाव और संस्कारों के तहत इसमें पर्याप्त अंतर रहा है. यहाँ इसे हम मोटे तौर पर भाषा-क्षेत्रों के आधार पर निम्नलिखित दो प्ररूपों में समाकलित कर सकते हैं- 1. हिंदी प्रदेश तथा, 2. हिंदी-इतर प्रदेश. इन पर थोड़ा विस्तार से विवेचन अपेक्षित है.

3.3.3.1. हिंदी-प्रदेश

हिंदी-प्रदेश समाज-सुधार के अन्य क्षेत्रों की तरह स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में भी अपेक्षाकृत फिसड्डी, दकियानूस व लापरवाह रहा है. स्त्रीशिक्षा को अपने एजेंडे में उसने लिया तो था किंतु उसके प्रति वह ज़्यादा उत्साही नहीं था. हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्त्रीशिक्षा के मामले में भी हिंदूवादी पुनरुत्थान की स्थितियाँ ज्यादातर दिखाई देती हैं. लड़कियों के लिए स्कूल खोलने की प्रक्रिया, स्त्रीशिक्षा का पाठ्यक्रम, सहशिक्षा, ड्राप आउट, स्त्रियों की उच्च शिक्षा; इत्यादि सभी मुद्दों पर हिंदी-प्रदेश के शिक्षा-उन्नायक और सुधारक स्पष्ट नीति के अभाव के चलते कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में असमर्थ रहे. ऐसा नहीं है कि हिंदी प्रदेश में स्त्रीशिक्षा की प्रगति हुई ही नहीं. प्रगति हुई, किंतु उसे नवजागरण के अंतर्गत नहीं माना जा सकता. जैसा कि कहा गया, वह हिंदूवादी पुनरुत्थान ही था.

हिंदी प्रदेश के शिक्षा-उन्नायक लड़कियों के स्कूल खोलने, उनके रखरखाव, उनके बजट इत्यादि के लिए उपनिवेशवादी अंग्रेज़ सरकार पर निर्भर रहने के हिमायती थे. हिंदी-इतर प्रदेशों के शिक्षा-उन्नायकों की तरह स्वयं पहल करने की मानसिकता से कोसों दूर थे. जैसे कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र, जिन्हें नवजागरण काल का बड़ा युगपरिवर्तनकारी लेखक, बुद्धिजीवी, शिक्षाविद्, पत्रकार, समाजसुधारक इत्यादि माना जाता है, की स्त्री-शिक्षा विषयक धारणाएँ अस्पष्ट, दकियानूसी, पुरुष-वर्चस्ववादी तथा धर्मवादी रही हैं. एक तरफ तो भारतेंदु स्त्रीशिक्षा की ज़िम्मेदारी उपनिवेशवादी सरकार पर डालकर चलते हैं दूसरी तरफ उनका यह भी दुराग्रह रहा है कि मिशनरी महिलाएँ, जो घर-घर जाकर स्त्रियों को पढ़ाती हैं, वे अपने धार्मिक सिद्धान्तों और स्वतन्त्र विचारों को दिमाग में बैठाने की कोशिश करती हैं. इस क्रम में उन्होंने यह भी कहा कि इससे देशी स्त्रियों में शिक्षा की चाह पैदा होने के बजाय इससे विरक्ति पैदा होती है. (द्रष्टव्य : तलवार, वीरभारत; रस्साकशी (19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत; दूसरा संशोधित संस्करण: 2006; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; ISBN : 81-7778-007-7: पृष्ठ-35).

स्त्रीशिक्षा के पाठ्यक्रम के मुद्दे पर हिंदी प्रदेश के शिक्षाविदों में भारी पिछड़ापन पाया जाता है. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, मदनमोहन मालवीय, सैयद अहमद आदि के विचारों का आकलन करने पर स्पष्ट होता है कि ये सभी लड़कियों को लड़कों की तरह ज्ञान-विज्ञान, नवोन्मेषी विषयों, आधुनिक ज्ञान-धाराओं; इत्यादि; को विषयों के रूप में पढ़ाने के पक्षधर नहीं थे. इनकी मान्यता थी कि लड़कियों के पाठ्यक्रम में गृहविज्ञान, गृहशिक्षा- जिसमें मुख्यतः धार्मिक क़िस्म की शिक्षा होती है, चरित्र-निर्माण, पत्नी-धर्म इत्यादि से जुड़े विषय होने चाहिए. उसमें लड़कों की तरह के ज्ञान-विज्ञान, पश्चिमी ज्ञान, विभिन्न ज्ञानानुशासन से जुड़े विषय नहीं होने चाहिए. जैसे कि उक्त सभी महानुभावों ने स्त्रीशिक्षा के पाठ्यक्रम को लेकर इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए. भारतेंदु 'प्रेमसागर','विद्यांकुर, 'इतिहासतिमिरनाशक' इत्यादि पुस्तकों को लड़कियों को पढ़ाये जाने का विरोध किया क्योकि उनका तर्क था कि ये उनके नैतिक चरित्र का विकास नहीं कर सकतीं. उनके अनुसार "चरित्र निर्माण (मोरालिटी) और घरेलू प्रबन्ध वगैरह के बारे में बताने वाली अच्छी पाठ्यपुस्तकें उनके पाठ्यक्रम में लगानी चाहिए." (वही; पृष्ठ सं. 34). इसी तरह मदनमोहन मालवीय के काशी हिंदू विश्वविद्यालय के वेद-विभाग में बीसवीं सदी के अनेक वर्षों तक वेदाध्ययन की अनुमति नहीं थी. इसी तरह मुस्लिम भद्र-वर्ग के समाज-सुधारकों, स्त्रीशिक्षा के उन्नायकों का भी लड़कियों को पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम के बारे में लगभग यही रवैया था. वे भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जगह अपनी स्त्रियों को चरित्र-निर्माण, धार्मिक और घरेलू प्रबन्ध के बारे में बताने वाली किताबें ही पढ़वाना चाहते थे. देवबंद दारुल उलूम का रवैया भी ऐसा ही था. इस संबंधमें उमा नेहरू ने तंज़ कसते हुए अपने एक लेख में लिखा था- "भारतीय पुरुष तो पश्चिम का पूरा अनुसरण करते हैं और

उसी के आधार पर विकास का अपना मॉडल बनाते हैं, लेकिन चाहते हैं कि उनकी स्त्रियाँ पूर्वीय ही दिखें." (तलवार, वीरभारत; रस्साकशी (19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत; दूसरा संशोधित संस्करण: 2006; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; ISBN : 81-7778-007-7: पृष्ठ-38 पर उद्धृत).

सहशिक्षा के विषय में भी हिंदी प्रदेश के नवजागरणवादियों का यही सोचना था कि लड़के-लड़कियों के स्कूल अलग-अलग हों. भारतेंदु ने तो सहशिक्षा का विरोध किया ही, अन्य लोगों ने भी किया. लड़कियों के ड्रॉप आउट, स्त्रियों की उच्च शिक्षा के मामले में भी इन महानुभावों की लगभग ऐसी ही राय थी. वीरभारत तलवार ने अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में हंटर आयोग की रिपोर्ट का विस्तृत हवाला देते हुए स्पष्ट लिखा है कि "देश के कुछ दूसरे प्रांतों के मुकाबले यहाँ स्त्रीशिक्षा आगे बढ़ने के बजाय और पीछे जारही थी." (वही; पृष्ठ- 49).

हिंदी-प्रदेश में स्त्रीशिक्षा की इस दुर्गति के पीछे के कारणों पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि स्त्री सम्बन्धी परंपरागत मान्यताएँ व धारणाएँ इसके मूल में थीं, जो स्त्री को घर की चारदीवारी में क़ैद किए रखने की हिमायती थीं. इस संबंध में डॉ. वीरभारत तलवार का यह निष्कर्ष उचित जन पड़ता है कि "वास्तव में 19वीं सदी के पश्चिमी शिक्षाप्राप्त सुधारकों का एक बड़ा हिस्सा स्त्रियों को अपने धर्म का वाहक और अपनी सभ्यता-संस्कृति का मूर्तिमान रूप समझता था जिसे पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव में आकर भ्रष्ट होने से बचाना था. यही वजह है कि वे लड़कियों को आधुनिक शिक्षा देना नहीं चाहते थे या किसी हद तक देने का समर्थन करने के बावजूद उनकी धार्मिक और नैतिक शिक्षा को बहुत जरूरी मानते थे. उनका यह विचार परिवार और समाज में स्त्रियों की परंपरागत भूमिका के समर्थन पर टिका था. हिंदी-उर्दू प्रदेश के सुधारकों की स्थिति थोड़ी और पीछे थी." (वही; पृष्ठ- 39).

3.3.3.2. हिंदी-इतर प्रदेश

नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा के वास्तविक गम्भीर प्रयत्न ग़ैर हिंदी-उर्दू प्रदेश में हुए, जहाँ उपनिवेशवादी सरकार के किसी भी प्रकार के सहयोग के बिना अनेक समाज सुधारकों, संगठनों, संस्थाओं इत्यादि ने लड़कियों के लिए स्कूल-कॉलेज स्थापित किये. इनमें वे समस्याएँ, दकियानूसी, जेंडरगत पूर्वाग्रह/दुराग्रह इत्यादि नहीं देखे जाते, जो हिंदी-उर्दू प्रदेश के लोगों में दिखाई देते थे.

स्त्रीशिक्षा के काम की शुरुआत 19वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में बंगाल और बम्बई में ईसाई मिशनरियों की पत्नियों ने की थी. इन्होंने यह कार्य तीन स्तरों पर शुरू किया- 1. भारतीय लड़कियों के स्कूल खोलकर, 2. अनाथालय स्थापित कर और, 3. भद्रवर्गीय परिवारों के जनाना में जाकर.

भारत में स्त्रीशिक्षा के विकास के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम जे. ई. डी. बेथून का रहा है, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी की शिक्षा परिषद के अध्यक्ष थे. बेथून ने सरकार की मदद के बिना, अपने प्रयत्न और भारतीय लोगों के सहयोग से लड़कियों का एक निजी स्कूल खोला. बेथून ने 1849 में कलकत्ता में हिंदू बालिका विद्यालय की स्थापना की. इस विद्यालय के संचालन और लगातार चलते रहने और विकास करने के मामले में बंगाल के भद्र वर्ग, जमींदारों इत्यादि ने बेथून की भरपूर मदद की. इस विद्यालय का माध्यम बंगला भाषा थी. अंग्रेज़ी की जगह बंगला को माध्यम बनाना एक क्रान्तिकारी कदम था. जिसका हर तरफ स्वागत हुआ. आगे चलकर यह स्कूल अपग्रेड हुआ और हिंदुस्तान के पहले महिला महाविद्यालय के रूप में जाना गया. इसी महाविद्यालय से कादम्बिनी और चन्द्रमुखी बोस नाम की हिंदुस्तन की पहली दो स्नातिकाएँ पैदा हुईं. बेथून के नाम पर आगे बंगाल के शिक्षित वर्ग ने बेथून सोसाइटी बनाई, जिसने बंगाल में स्त्रीशिक्षा के आंदलनों को आगे बढ़ाया. हुगली के जमींदार बाबु जयकृष्ण मुखर्जी ने भी अपने प्रयासों से एक कन्या पाठशाला खोली.

बंगाल में स्त्रीशिक्षा के आंदलनों को आगे बढ़ाने का काम ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने किया. ईश्वरचंद्र विद्यासागर का बड़ा योगदान यह रहा है कि उन्होंने स्त्रीशिक्षा को धर्म की हदबंदियों से निकालकर धर्मनिरपेक्षतावादी स्वरूप प्रदान किया. उनका अभिमत था कि "हिंदुत्व और इस्लाम दोनों ही भारत में स्त्रियों की अवनति के लिए जिम्मेदार थे तथा इन्हें 'निरक्षरता एवं अज्ञानता' के इस कुंड से निकलने के लिए इन्हें 'धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त पर' शिक्षित करने की ज़रूरत है;" (द्रष्टव्य : कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास; अनुवाद एवं सम्पादन – रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि'; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ- 50). स्त्रीशिक्षा में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का एक और बड़ा योगदान यह भी रहा कि उनहोंने इस आंदलनों को बंगाल के ग्रामीण इलाकों तक पहुँचाया- "बंगाल के स्त्रीशिक्षा आंदलनों में विद्यासागर की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका यह थी कि उन्होंने इसे कलकत्ता महानगर की सीमाओं से बाहर ले जाकर देहाती इलाकों में फैलाया जहाँ सदियों से स्त्रियाँ अज्ञान और जड़ता के अँधेरे में जी रही थीं." (तलवार, वीरभारत; रस्साकशी (19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत; दूसरा संशोधित संस्करण: 2006; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; ISBN : 81-7778-007-7: पृष्ठ-44). स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में ईश्वरचंद्र विद्यासागर की अद्वितीय सक्रियता और कार्यक्षमता का प्रमाण देते हुए अरविन्द पोद्दार ने अपनी पुस्तक 'रेनेसाँ इन बंगाल : क्वेस्ट एंड कन्फ्रंटेशन' में लिखा है-"सरकारी सहायता मिलेगी या नहीं, इसकी परवाह किये बिना उन्होंने नवम्बर 1857 से मई 1858 के बीच लड़कियों के लिए कुल 35 स्कूल खोले- सबके सब गाँव में- जिनमें 1300 लड़कियों ने दाखिला लिया, जो उस जमाने के बंगाल में एक नामुमकिन कल्पना थी." (पोद्दार, अरविन्द; रेनेसाँ इन बंगाल : क्वेस्ट एंड कन्फ्रंटेशन- 1800-1860; इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी 1970; शिमला; पृष्ठ- 88-89).

बंगाल के अलावा स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में युगान्तरकारी कार्य महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने किया. ज्योतिबा फुले ने जे. ई. डी. बेथून से एक साल पहले 1848 में पुणे में स्त्रीशिक्षा की मुहिम शुरू की थी. ज्योतिबा फुले का मौलिक और ऐतिहासिक योगदान यह रहा है कि शिक्षा को उन्होंने "भद्रवर्ग के कब्जे से निकालकर, धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त कर, गरीब मेहनतकश जनता तक पहुँचाया." (तलवार, वीरभारत; रस्साकशी (19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत; दूसरा संशोधित संस्करण: 2006; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; ISBN : 81-7778-007-7: पृष्ठ-45). शिक्षा के वर्गीय/जातिवादी स्वरूप को जानने वाले वे पहले शिक्षाविद थे. वीरभारत तलवार ने उनके विषय में यह उचित ही लिखा है- "नवजागरण के दौर में फुले अकेले ऐसे सुधारक थे जिन्होंने सरकारी शिक्षा के वर्गीय चरित्र को समझा और शिक्षा पर ऊँची जातियों के वर्चस्व को तोड़ने का बीड़ा उठाया. xxx वे भारत की गरीब जनता के बीच स्त्रीशिक्षा के प्रवर्तक थे." (वही; पृष्ठ- 45-46). फुले ने ब्राह्मणों के गढ़ पुणे में पहली बार कन्या पाठशाला खोली, जिसमें माँग और महार जैसी दलित जातियों की लड़कियों को भी दाखिला दिया गया. यह पहली बार था कि दलित लड़कियाँ कहीं पढ़ रहीं थीं. इन दलित लड़कियों के दाखिले वाले स्कूल में कोई हिंदू महिला अध्यापिका बनने को तैयार नहीं थी. तब फुले ने अपनी पत्नी सावित्रीबाई को पढ़ाया और फिर उन्हें शिक्षिका बनाया. सावित्रीबाई- एक शूद्र स्त्री- भारतवर्ष की पहली अध्यापिका बनी. यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि फुले के स्कूल में आधुनिक शिक्षा के विषय पढ़ाये जाते थे. (द्रष्टव्य : वही; पृष्ठ- 46).

गैर-हिंदी क्षेत्रों में आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती स्त्रीशिक्षा के बहुत बड़े उन्नायक माने जाते हैं. पंजाब क्षेत्र में आर्यसमाज ने स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया. पंजाब में आर्यसमाज ने कन्या गुरुकुल योजना की शुरुआत की ये बिना सरकारी सहायता के चलते थे. इसके अलावा आर्यसमाज ने 'पुत्री पाठशाला' और 'कन्या विद्यालय' जैसी संस्थाएँ भी खड़ी कीं. पंजाब में आर्यसमाज

का स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में सबसे उलेखनीय कार्य जालन्धर में 1889 में लाला देवराज द्वारा स्थापित कन्या पाठशाला थी, जो अतिशीघ्र कन्या महाविद्यालय में अपग्रेड हो गई. आगे यह संस्था आवासीय बनी. यहाँ उत्तर भारत का पहला लड़कियों का छात्रावास बना. इस संस्था की उन्नति में लाला देवराज के समूचे परिवार के साथ अनगिनत लोग शामिल थे. सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बड़ी संख्या में स्त्रियाँ भी इनमें शामिल थीं. यह आगे चलकर स्त्रीशिक्षा की एक आदर्श संस्था बनकर उभरी. गई. इसमें कन्याओं (अविवाहित लड़कियों) के साथ-साथ विधवाओं को भी प्रवेश की अनुमति थी. आगे चलकर पंजाब के अन्य अनेक भागों में आर्यसमाज ने लड़कियों के स्कूल खोले. आर्यसमाज की प्रसिद्ध डीएवी कालेजों की श्रृंखला पंजाब से ही शुरू हुई थी, जो आगे चलकर देशव्यापी रूप लेती चली गई.

3.3.4. विषय-विस्तार दो : स्त्रीशिक्षा की अंतर्वस्तु

स्त्रीशिक्षा के प्रसार/विस्तार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण ध्यातव्य बात यह है कि स्त्रियों को पाठ्यक्रम के नाम पर जो कुछ पढ़ाया जाता रहा है, वह क्या है? उसकी अंतर्वस्तु क्या है? 18वीं-19वीं सदियों के नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा को लेकर अनेकानेक समाजसुधारकों, शिक्षाविदों, कार्यकर्ताओं इत्यादि में जो सक्रियता दिखाई देती है, उनकी जो भौतिक उपलब्धियाँ रही हैं: उनमें स्त्रियों को दी जाने वाली शिक्षा के पाठ्यक्रम, पढ़ाये जाने वाले विषयों, पढ़ाये जाने के तरीकों, पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओं के स्तर इत्यादि के बारे में ख़ूब लंबी और लगातार बहसें चली हैं. स्कूल खोलने का काम और ये समस्त बहसें एक साथ समानान्तर चली हैं. ये बहसें बहुआयामी और बहुस्तरीय रही हैं. इस पूरे मसले को यहाँ दो उपबिंदुओं में आख्यायित किया जा सकता है-

3.3.4.1. स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु

3.3.4.2. स्त्रीशिक्षा के विविध आयाम और अंतर्सम्बद्धताएँ

3.3.4.1. स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु

लड़कियों को क्या पढ़ाया जाए और क्या नहीं, नवजागरण काल में यह गहन विमर्श का मुद्दा रहा है. ऊपर कुछ संकेत इसके आए हैं. हिंदी-प्रदेश में इसे लेकर भारी असमंजस और अंतर्विरोध की स्थिति देखी जा सकती है. भारतेंदु हरिश्चन्द्र, मदनमोहन मालवीय, सैयद अहमद खान इत्यादि सभी लगभग एकमत से इस बात का समर्थन करते हैं कि लड़के और लड़कियों की पढ़ाई के विषय, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या अलग-अलग होने चाहिए. लड़कियों के बारे में इन सबकी लगभग यही राय है कि उन्हें आगे चलकर चूँकि घर सँभालना है, इसलिए उन्हें वही विषय पढ़ाये जाएँ, उन्हीं की प्रशिक्षा उन्हें दी जाए, जो इस कार्य में उन्हें प्रवीण बना सकें. उदाहरण के लिए हिंदी प्रदेश के नवजागरण के पुरोधा माने जाने वाले भारतेंदु हरिश्चन्द्र का यह स्पष्ट मानना था कि 'चरित्र निर्माण (मोरालिटी) और घरेलू प्रबन्ध वगैरह के बारे में बताने वाली अच्छी पाठ्यपुस्तकें उनके पाठ्यक्रम में लगनी चाहिए, xxx हमारे उहाँ गृहशिक्षा का चलन है. यह गृहशिक्षा अक्सर धार्मिक क़िस्म की होती है और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान से इसका कोई संबंध नहीं होता. धार्मिक किताबों से उन्हें चरित्र सम्बन्धी सिद्धान्तों और घरेलू कर्तव्यों के पाठ पढ़ाये जाते हैं. मुसलमान अपनी लड़कियों को कुरआन पढ़ाते हैं.' (द्रष्टव्य : तलवार, वीरभारत; रस्साकशी (19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत; दूसरा संशोधित संस्करण: 2006; सारांश प्रकाशन, दिल्ली; ISBN : 81-7778-007-7: पृष्ठ-34). भारतेन्दु ने अपने बलिया में दिए भाषण में स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा देने का स्पष्ट विरोध किया था. उनका कहना था- "ऐसी चल से उनको शिक्षा दीजिए कि वे अपना देश और कुल-धर्म सीखें, पति की भक्ति करें " (वही; पृष्ठ 39). लेकिन लड़कों को जो चाहें शिक्षा आप दें, उन्हें

कोई आपत्ति नहीं! लड़कों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जाए, हर तरह की शिक्षा उन्हें दी जाए- "लड़कों को सहज में शिक्षा दें." (वही). 'प्रेमसागर', 'विद्यांकुर', 'इतिहासतिमिरनाशक' जैसी तर्काधारित पुस्तकों को भी; जो कि भारतीय लेखकों द्वारा ही लिखी गई थीं; वे लड़कों को तो पढ़ाये जाने के हिमायती थे, पर लड़कियों को पढ़ाये जाने को नहीं. (वही; पृष्ठ 34).

मुस्लिम समाज की स्थिति भी लगभग यही थी. वह भी लड़कियों को ऐसी ही शिक्षा देने के हक़ में था, जो उन्हें एक योग्य माँ, पत्नी, बहन, बेटी इत्यादि बना सके, और बस! इस संबंधमें नजीर अहमद की लिखी 'मिरातुल उरूस' तथा मौलाना अशरफ अली थानवी की लिखी 'बहिश्ती जेवर' जैसी किताबों का नाम लिया जा सकता है, जो स्त्रियों को पढ़ाने को तैयार की गईं थीं. 'बहिश्ती ज़ेवर' में मुस्लिम स्त्री को धर्म, पारिवारिक कानून, घरेलू संबंधों, इस्लामी दवा-दारू आदि की शिक्षा दी गई है. स्पष्ट है कि इन पुस्तकों को पढ़ने पर कैसी स्त्री को निर्माण होगा!

किंतु जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, ग़ैर-हिंदी क्षेत्रों में स्त्रीशिक्षा के पाठ्यक्रमों में हिंदी-प्रदेश जैसा जेंडर विभेद नहीं था. बंगाल, पजाब, महाराष्ट्र तथा दक्षिण के कई राज्यों इत्यादि में लड़कियों की पाठ्यपुस्तकें लगभग वही थीं, जो लड़कों की थीं. बंगाल में बेथून, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, द्वारिकानाथ गांगुली आदि इस बात के उदाहरण रहे हैं कि लड़कियों को भी वही पढ़ाया जाए जो सामान्यतः स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाया जाता है. यानी कि जो लड़कों को पढ़ाया जाए, वही लड़कियों को भी पढ़ाया जाए. यानी कि विविध प्रकार का ज्ञान-विज्ञान, ज्ञान के विभिन्न अनुशासन इत्यादि. इस संबंधमें 'ब्राह्मोसमाज' के युवा सुधारकों के प्रयास उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने 1870 के दशक में स्त्रियों की आधुनिक शिक्षा का आंदलनों शुरू किया. इन्होंने अपने वरिष्ठ/नेतृत्वकर्ता केशवचन्द्र सेन का भी इस संदर्भ में विरोध किया. केशवचन्द्र सेन लड़कियों की उच्च शिक्षा और उन्हें ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दिए जाने के विरोधी थे. इसके विरोध में द्वारिकानाथ गांगुली ने अपने कुछ साथियों- शिवदास शास्त्री, दुर्गामोहन दास और आनन्दचरण खास्तिगीर आदि- के साथ मिलकर 'समदर्शी' ग्रुप बनाया. हिंदू महिला विद्यालय इसी ग्रुप ने स्थापित किया था. यह विद्यालय लड़कियों को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने में अव्वल रहा. द्वारिकानाथ गांगुली ने इस हेतु स्त्रीशिक्षा के लिए नई किताबें तैयार कीं, जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से संबंद्ध थीं. (द्रष्टव्य : वही; पृष्ठ 45).

उधर महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने स्त्रीशिक्षा के पाठ्यक्रम में ज्ञान-विज्ञान के विषयों को शामिल किया. इस संबंधमें वीरभारत तलवार का यह कथन उद्धरणीय है कि "यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शूद्र परिवार में जन्मे फुले स्त्रियों की आधुनिक शिक्षा के समर्थक थे और उनकी प्राथमिक कन्या पाठशाला में बच्चियों को व्याकरण के साथ अंकगणित भी पढ़ाया जाता था." (वही; पृष्ठ 46).

पंजाब में आर्यसमाज ने अपने स्कूलों- 'पुत्री पाठशाला' तथा 'कन्या विद्यालय'- में सरकारी पाठ्यक्रम चलाकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा लड़कियों को देने का उल्लेखनीय कार्य किया. लाला देवराज ने जिस विद्यालय को चलाया था, उसमें लड़कियों को व्यायाम, खेल इत्यादि भी कराए जाते थे. इसमें आगे शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी चालू हुए. खेल-खेल में तथा व्यावहारिक परिस्थितियों में पढ़ाने की तकनीक यहाँ विकसित की गई थी. लड़कियों के लिए ज्ञान-विज्ञान की नई-नई पुस्तकें तैयार कराना लाला देवराज की अन्यतम उपलब्धि थी.

3.3.4.2. स्त्रीशिक्षा के विविध आयाम और अंतर्सम्बद्धताएँ

स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु का संबंध बहुव्यापकता एवं बहुआयामिता लिए हुए है. यह एक सामान्य स्थिति है कि जैसी हमारी शिक्षा होगी, वैसी हमारी मानसिकता, विचारावधारणाएँ, व्यक्तित्व एवं आचरण होगा. यानी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में शिक्षा का सर्वाधिक योगदान होता है. एक समय ऐसा भी रहा है, जब स्त्रियों को शिक्षा के दरवाज़े एकदम बंद थे. अंग्रेजों का यह आरोप असंगत नहीं था कि हम अपनी स्त्रियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं. उन्नीसवीं सदी में पहली बार स्त्रीशिक्षा की शुरुआत की बात उठी. इसका विवरण पूर्व में दिया गया.

स्त्रीशिक्षा का संबंध केवल स्त्रियों और उनकी शिक्षा से नहीं है, बल्कि स्त्री को शिक्षित करने का अर्थ है, पूरे परिवार को शिक्षित करना. एक शिक्षित स्त्री अपने साथ-साथ अपने से जुड़े सभी सम्बन्धियों का पुनर्संस्कार करती है, विशेषतः बच्चों को. ज्योतिबा फुले का अभिमत इस संबंधमें उद्धरणीय है. डॉ. राधा कुमार ने लिखा है- "उस समय कम प्रभावशाली परंतु कालान्तर में जबर्दस्त महत्वपूर्ण बनकर उभरा एक विचार था—बच्चों के चरित्र निर्माण में माँ के रूप में स्त्रियों की भूमिका—क्योंकि ज्योतिबा फुले जैसे अनेक सुधारकों का मत था कि यदि स्त्री को शिक्षित किया जाए तो वह अपने बच्चों को भी शिक्षित बना सकेगी." (कुमार, राधा; स्त्री संघर्ष का इतिहास; अनुवाद एवं सम्पादन – रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि'; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ- 56).

नवजागरण की महान नेत्री सरोजिनी नायडू स्त्रीशिक्षा को राष्ट्रनिर्माण की भूमिका के बतौर देखती थीं. स्त्रियों के लिए शिक्षा का वही महत्व है, जैसे किसी प्राणी को शुद्ध वायु का. यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है. हमने सदियों स्त्री को उसके इस अधिकार से वंचित रखा है- "शिक्षा एक ऐसा असीम सुन्दर अपरिहार्य वातावरण है जिसमें हम जीते, रहते तथा अन्य कार्य करते हैं. आपके पिताओं ने आपकी माताओं के इस अविस्मरणीय जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करके आपको लूटा है. xxx आप अपनी स्त्रियों को शिक्षित करें और देखें कि राष्ट्र अपनी स्वयं की रक्षा कर लेगा क्योकि यह बात कल भी सत्य थी, आज भी है और रहती दुनिया तक सत्य रहेगी कि 'पालना झुलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं." (वही; पृष्ठ 112). स्त्रीशिक्षा की एक बड़ी पैरोकार मैडम कामा का भी लगभग यही विचार था. (द्रष्टव्य; वही; पृष्ठ- वही). मैडम कामा का मत था कि स्त्रीशिक्षा से राष्ट्रीय आंदलनों को मज़बूती मिलेगी. कालान्तर में यह सत्य सिद्ध हुआ. (द्रष्टव्य; वही; पृष्ठ 111).

एक शिक्षित स्त्री परिवार से लेकर राष्ट्र के निर्माण तक में सर्वाधिक भूमिका निभाती है. एक शिक्षित स्त्री सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि समस्त क्षेत्रों की सच्चाइयों से सुपरिचित होती है. शिक्षा से उसमें तार्किकता का विकास होता है व समस्या की सही पहचान और समझ भी बढ़ती है. इस प्रकार स्त्रीशिक्षा केवल शिक्षा नहीं है, वह एक बहुआयामी और बहुस्तरीय उपक्रम है.

3.3.5. विषय-विस्तार तीन : स्त्रीशिक्षा की उपलब्धि – एक नई स्त्री

नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा को लेकर किये गए प्रयासों और प्रयोगों का परिणाम और सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने स्त्री-व्यक्तित्व का संपूर्ण पुनर्गठन कर डाला. धीरे-धीरे शिक्षा ने स्त्री के व्यक्तित्व का कायापलट करना शुरू किया तथा माँ और पत्नी के अतिरिक्त एक स्वायत्त व्यक्ति-इकाई के रूप में उसका विकास करना शुरू किया. इससे एक 'नई स्त्री' का 'जन्म' हुआ. यह नई स्त्री अपने स्वयं के प्रति. अपने परिवार, समाज, वर्ग, राष्ट्र इत्यादि के प्रति सचेत और तार्किक व्यक्ति का प्रतिरूप थी. इस नई

स्त्री का अविर्भाव लाला देवराज के स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में किये गए प्रयासों और प्रयोगों के परिणामस्वरूप सम्भव हुआ.

लाला देवराज के प्रयासों और प्रयोगों के परिणामस्वरूप जिस नई स्त्री का जन्म हुआ, उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ उभरकर सामने आईं और रेखांकित की गईं-

1. स्त्री एक 'व्यक्ति' है. उसकी अपनी एक अस्मिता है. स्त्री को अपने एक व्यक्ति होने और अपनी अस्मिता की पहचान निरंतर होनी चाहिए.
2. स्त्री की सार्थकता सिर्फ माँ बनने में नहीं है.
3. परिवार एवं समाज में स्त्री की पारम्परिक भूमिका की धारणा अब पुरानी पड़ चुकी है अतः त्याज्य है.
4. स्त्री केवल भावनाओं, आवेगों, आज्ञाकारिता इत्यादि का पुलिंदा नहीं है, बल्कि वह आत्मनिर्णय की क्षमता से भरी एक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यकर्ता भी है. समाज तथा राष्ट्र के कार्यक्रमों में उसकी समान भागीदारी और दायित्व है.
5. स्त्री दोयम दर्ज़े का नागरिक नहीं है. 'स्त्री बनाई जाती है' सम्बन्धी धारणा खारिज़.
6. स्त्री एक स्वतंत्रचेता, विवेकवान व्यक्ति-अस्तित्व; जो पुरुष के साथ समानता के स्तर पर आत्मविश्वासपूर्ण तरीक़े से पेश आ सकती है. वह एक दब्बू क्रियेचर नहीं.
7. पितृसत्ता का अस्वीकार और लैंगिक आधार पर भेदभाव की स्थितियों का अस्वीकार.

जैसा कि कहा गया; इस नई स्त्री के अस्तित्व के अविर्भाव का श्रेय लाला देवराज के स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में अपने स्कूल तथा बाद में कॉलेज के मार्फ़त किए गए प्रयासों और प्रयोगों को जाता है. इस संबंधमें डॉ. मधु किश्वर ने इसकी ठीक-ठीक पहचान करते हुए अपने एक लेख में यह उचित ही लिखा था कि- "यह स्कूल न रहकर एक आंदलनों बन गया था जिसने 19वीं सदी के पश्चिमी शिक्षा प्राप्त तमाम सुधारकों के स्त्री सम्बन्धी आदर्श 'विक्टोरियन वुमेन' की सीमाएँ पर कर लीं. स्त्री का नया आदर्श स्कूल की पत्रिका 'पांचाल पंडिता' में छपने वाली कल्पित स्त्रियों की कहानियों के जरिए पेश किया जाता था जिसमें एक ऐसी स्त्री की छवि उभारी जाती थी जो शरीर से स्वस्थ है, बुद्धिमान है और पुरुषों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक और आत्मविश्वास के साथ बातचीत करती है. xxx स्कूल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी लड़कियों के अन्दर अपने व्यक्ति होने की, अपनी पहचान की, भावना पैदा कर देना. xxx स्कूल की स्त्रीशिक्षा ने परिवार और समाज में स्त्री की परंपरागत भूमिका की धारणा को ठुकरा दिया और स्त्री की एक नई धारणा पेश की कि स्त्री की सार्थकता सिर्फ माँ बनने में नहीं है." (किश्वर, मधु; आर्यसमाज एंड वुमेन्स एजूकेशन : कन्या महाविद्यालय जालन्धर; इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली; बम्बई; वोल्यूम 21; इश्यु नं. 17; 26 अप्रैल, 1986; पृष्ठ).

3.3.6. सारांश

इस इकाई के प्रथम बिंदु में इसके उद्देश्य पर विचार करते हुए कहा गया है कि इसका उद्देश्य यह देखना है कि नवजागरण काल में हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रीशिक्षा को लेकर क्या-क्या कार्य हुए. भारत के विभिन्न प्रांतों में स्त्रियों की शिक्षा की क्या स्थिति थी तथा समाज के विभिन्न वर्गों एवं समूहों में क्या धारणाएँ प्रचलित थीं? इसका आकलन हिंदी तथा हिंदी-इतर क्षेत्रों में देश को वर्गीकृत करके किया गया. तत्पश्चात प्रस्तावना के अंतर्गत कहा गया है कि स्त्रीशिक्षा सभ्यता के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है. स्त्री भी एक व्यक्ति है, एक मनुष्य है, अपने समाज का वह एक स्वाभाविक हिस्सा होती है अतः शिक्षा

पर उसका बराबर का अधिकार है. शिक्षा से वंचित करके इतिहास ने उसके साथ भारी अन्याय किया है. इस अन्याय की विवेचना इतिहास के पुनरवलोकन द्वारा ही की जा सकती है. इतिहास का पुनरवलोकन इस इकाई की एक प्रस्तावना है. इस इकाई के विषय को तीन खंडों में बाँटकर अध्ययित किया गया है. पहले में नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा का ऐतिहासिक पुनराकलन किया गया है. इसे हिंदी-प्रदेश तथा हिंदी-इतर प्रदेश इन दो उपबिंदुओं में विभाजित किया गया है. इस आकलन में पाया गया कि हिंदी-इतर क्षेत्रों में स्त्रीशिक्षा की स्थितियाँ और प्रोत्साहन अपेक्षाकृत बेहतर था. दूसरे विषय-विस्तार में नवजागरण काल की स्त्रीशिक्षा की अंतर्वस्तु को देखा गया है. इसे स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु और स्त्रीशिक्षा के विविध आयाम और अंतर्सम्बद्धताएँ; इन दो उपबिंदुओं में बाँटकर देखा गया है. पूरे नवजागरण काल में इस बात पर गहन विचार-विमर्श और विवाद होता देखा गया है कि स्त्रियों को पढ़ाये जाने पाठ्यक्रमों की रूपरेखा और अंतर्वस्तु क्या हो. यहाँ भी हिंदी-इतर क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील रूप में उभरकर सामने आते हैं. हिंदी-इतर क्षेत्रों में ही 'नई स्त्री' की अवधारणा उभरकर सामने आई. तीसरे विषय-विस्तार में इसी उपबिंदु पर तथ्यात्मक विचार है. 'नई स्त्री' की अवधारणा नवजागरण काल की स्त्रीशिक्षा की कुल उपलब्धि है.

3.3.7. प्रश्न

1. नवजागरण काल में स्त्रीशिक्षा के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए.
2. हिंदी-प्रदेश में स्त्रीशिक्षा के उन्नयन का आकलन कीजिए.
3. ग़ैर-हिंदी क्षेत्रों में स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सुधार और नवोन्मेष हुआ था. इस बिंदु पर प्रकाश डालिए.
4. स्त्रीशिक्षा की पाठ्यवस्तु क्या व कैसी होनी चाहिए? स्त्रीशिक्षा की बहुआयामिता के संदर्भ में इस प्रश्न का उत्तर दीजिए.
5. 'नई स्त्री' की अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए

खंड - 3 आधुनिक काल और स्त्री
इकाई - 4 विभाजन की त्रासदी और स्त्री

इकाई की रूपरेखा

3.4.1. उद्देश्य
3.4.2. प्रस्तावना
3.4.3. भारत-विभाजन की स्थिति-परिस्थितियाँ और परिणाम
3.4.4. भारत विभाजन की अंतहीन और अनवरत त्रासदी
3.4.5. विभाजन की त्रासदी और स्त्री पर उसका प्रभाव
3.4.6. सारांश
3.4.7. प्रश्न

3.4.1. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भारत-विभाजन की ऐतिहासिक घटना का स्त्रियों की जिंदगियों पर क्या प्रभाव पड़ा। वैसे तो किसी भी देश के विभाजन का उस देश के प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है, लेकिन स्त्रियों पर इसके कुछ भिन्न प्रभाव एवं परिणाम देखे जाते हैं। ये प्रभाव व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक सब प्रकार के हो सकते हैं। इन परिणामों और प्रभावों का जेंडरगत अध्ययन इस इकाई का विशिष्ट उद्देश्य है।

इस इकाई में यह अध्ययन करने की कोशिश की जाएगी कि भारत का विभाजन किन विशेष स्थिति-परिस्थितियों के बीच हुआ। ये स्थिति-परिस्थितियाँ कैसे उत्पन्न हुईं और इनके पीछे कौन लोग थे। साथ ही इस इकाई में यह भी देखने की कोशिश की जाएगी कि भारत-विभाजन के क्या परिणाम हुए।

इस इकाई में यह अध्ययन करने का प्रयत्न होगा कि विभाजन की त्रासदी एक त्रासदी कैसे है ? ऐसी ट्रेजेडी दुनिया में दूसरी नहीं है ।

इस इकाई में यह अध्ययन किया जाएगा कि विभाजन की त्रासदी का स्त्रियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा? स्त्रियों के जीवन पर प्रत्येक घटना का एक भिन्न प्रभाव पड़ता है. इसके जेंडरगत कारण हैं, जिन पर यहाँ विचार किया जाएगा.

3.4.2. प्रस्तावना

इस इकाई की प्रस्तावना है कि देश में घटी किसी भी घटना का प्रभाव स्त्रियों पर भिन्न प्रकार से पड़ता है। वह घटना चाहे राजनैतिक, या आर्थिक, या सांस्कृतिक, या धार्मिक हो या किसी और प्रकार की, स्त्रियों पर उसका एक भिन्न ही प्रभाव पड़ता है। सत्तर साल पहले घटी भारत-विभाजन की घटना का भी स्त्रियों पर सबसे अलग प्रभाव पड़ा था। इस प्रभाव के मूल में जेंडर की स्थितियाँ हैं।

भारत जैसे परंपरावादी, रूढ़िवादी, पिछड़े, पौराणिक समाजों में पितृसत्ता की स्थितियाँ अत्यंत दृढ़ और बहुव्यापी हैं। स्त्री के प्रति भारत जैसे देशों में अभी भी देहवादी, सेक्सवादी, लंपट रवैया इत्यादि अधिकतर देखने में आता है। इसके अलावा स्त्री को उसकी जाति, वर्ग, कुटुंब, देश इत्यादि का प्रतीक-प्रतिनिधि मानकर उसे अपमानित, जलील, पददलित कर उसकी पूरी जाति, वर्ग, कुटुंब, देश इत्यादि से 'बदला' लिया जाता है। स्त्री को निशाना बनाकर बदला लेने की यह प्रथा और परंपरा पूरी दुनिया में

बहुत पुरानी और बहुप्रचलित है। आज भी इसके उदाहरण पर्याप्त देखने में आते हैं। विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में एक-दूसरे के देशों की औरतों के साथ बेतरह की गई यौनिक बदसलूकियाँ इसके ज्वलंत उदाहारण हैं। सांप्रदायिक दंगों में भी स्त्रियों के साथ इसी तरह की यौन हिंसा आए दिन देखने में आती है। बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, अपहरण, अगवा कर इधर-उधर कर देना इत्यादि वारदातें स्त्रियों के साथ होती ही रहती हैं। विभाजन के समय ऐसी घटनाएँ काफी बड़ी संख्या में हुईं और स्त्रियाँ इनकी भीषण शिकार हुईं। इस सब पर इस इकाई में विचार होगा। यौनिकता स्त्री की सबसे बड़ी विशेषता है तो पितृसत्ता के मानकों के तहत यही उसकी सबसे बड़ी कमी और कमजोरी बन जाती है।

3.4.3. भारत-विभाजन की स्थिति-परिस्थितियाँ और परिणाम

भारत का विभाजन माउन्टबेटन योजना के आधर पर तैयार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के तहत हुआ था। इस अधिनियम में कहा गया है कि भारत व पाकिस्तान स्वायत्त बना दिए जाएँगे और ब्रिटिश सरकार उन्हें सत्ता सौंप देगी। 14 अगस्त को पाकिस्तान अधिराज्य और 15 अगस्त को भारतीय संघ की स्थापना की गई। इसी के साथ बंगाल प्रांत को पूर्वी पाकिस्तान और भारत के पश्चिम बंगाल राज्य में बाँट दिया गया।

अंग्रेजों ने भारत में प्रारंभ से ही 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाई। उनकी यह नीति धर्म के मामले में सबसे घातक थी। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को इस सीमा तक परस्पर विरोधी बना दिया कि वे एक साथ रहने के विचार के ही दुश्मन हो गए। मुहम्मद अली जिन्ना ने लाहोर में 1940 ई. में मुस्लिम लीग के सम्मेलन में साफ-साफ कहा कि वे दो अलग राष्ट्र चाहते हैं। हिंदूवादी नेताओं और संगठनों ने भी धार्मिक अलगाव को बढ़ाने में भरपूर योगदान किया। कांग्रेस और विशेषतः महात्मा गांधी इसके विरोधी थे, हालाँकि आगे चलकर दोनों को इसे स्वीकार करना पड़ा।

विभाजन के समय पूरे देश में भयंकर दंगे-फसाद हुए। सीमावर्ती प्रांतों और इलाकों में भारी नरसंहार हुआ। इस विभाजन में लाखों की संख्या में आबादियों का स्थानांतरण हुआ। लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष शरणार्थी बने। भारत में तो पाकिस्तान से आए शरणार्थी शीघ्र घुलमिल गए, लेकिन पाकिस्तान गए मुसलमान आज भी वहाँ 'मुहाजिर' कहलाते हैं और उन्हें पराया समझा जाता है।

विभाजन के समय कई लाख लोग मारे गए थे। कुछ तो दंगा-फसादों में तथा कुछ सीमाओं पर स्थानांतरण के समय लाखों औरतें बलात्कार, हत्या, हिंसा की शिकार हुईं, अनगिनत स्त्रियाँ विक्षिप्त हो गईं, बहुत का अपहरण हुआ और गायब कर दी गईं, धर्म और संप्रदाय के नाम पर देश के बँटवारे ने इन दोनों देशों के बीच एक ऐसी राजनैतिक खाई पैदा की कि आज भी संबंधोंमें खटास कायम है। दोनों देशों की आम जनता एक-दूसरे को बहुत चाहती है, दोनों देशों की आम जनता के बीच अनेक प्रकार के पारिवारिक व अन्य संबंधअभी भी जारी हैं, किंतु दोनों देशों की राजनैतिक जमात दोनों देशों के बीच की खाई को पाटने नहीं देना चाहती।

विभाजन की त्रासदी का सबसे अधिक अभिशाप दोनों तरफ़ की स्त्रियों ने झेला, जिसके अंतर्गत स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार, अन्य अनेक प्रकार की यौन-हिंसा और अत्याचार इत्यादि बड़े पैमाने पर अवघटित हुए। विभाजन के समय, जब आबादियों का बड़े पैमाने पर परस्पर स्थानांतरण हुआ, दंगे-बलवे हुए, तो उनमें औरतों को ख़ास तौर से निशाना बनाया गया था।

विभाजन की त्रासदी के परिणामों का लेखन और अंकन इतिहास की किताबों में तो मिलता ही है, हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी के भारतीय एवं पाकिस्तानी साहित्य में भी बराबर मिलता है। इन भाषाओं में भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में प्रभूत संख्या में ऐसे साहित्य की रचना हुई है, जो देश-विभाजन की विषयवस्तु को आत्मसात किए हुए हैं। इनमें उपन्यास, कहानी, कविता, रिपोर्ताज आदि विधाओं में मुख्यतः लिखा गया। इन साहित्यिक कृतियों में बहुविध रूप से विभाजन की त्रासदी पर लिखा गया है। विभाजन के कारण, विभिन्न राजनैतिक पार्टियों की उसमें भूमिका, विभिन्न तबकों की दुरभिसंधियाँ, कूटनीतियाँ, अंग्रेजी हुक्मरानों की चालाकियाँ, बड़े राजनैतिक नेताओं की गतिविधियों इत्यादि का विस्तारपूर्वक वर्णन इन साहित्यिक कृतियों में मिलता है। इन साहित्यिक कृतियों में विभाजन के आस-पास का समय जैसे मूर्तित हो गया है। उक्त विषय-संदर्भों के अतिरिक्त सांप्रदायिक दंगे, दंगों की क्रूरता, लोगों का वहशीपन इत्यादि भी बड़े पैमाने पर इन कृतियों में चित्रित हुआ है। यह भारतीय उपमहाद्वीप के लंबे इतिहास का इन्सानी खून से रंगा पन्ना है, जिसकी याद बार-बार ताज़ा हो जाती है।

3.4.4. भारत विभाजन की अंतहीन और अनवरत अंतहीन और अनवरत त्रासदी

भारत विभाजन की त्रासदी विश्व इतिहास की गंभीरतम घटनाओं में से एक रही है। इस विभाजन से किसे क्या मिला? इस मुद्दे पर विचार करते हैं तो इतिहास की तरफ़ देखकर भारी पीड़ा से मन भर जाता है। प्रसिद्ध पत्रकार और पूर्व राज्यसभा सांसद कुलदीप नैयर, जो स्वयं सियालकोट से विस्थापित होकर भारत आए थे; ने आज से लगभग तीन साल पहले के लिखे अपने एक लेख 'The tragedy of Partition' में लिखा है, जब उन्होंने आज़ादी मिलने (यानी विभाजन) के 32 दिन बाद अपने घर से चलकर सीमा को पार किया तो हालाँकि हिंदू-मुसलमानों के झगड़े और लूटपाट तो बंद हो गए थे, लेकिन मैंने देखा कि अपने छोटे-मोटे सामान को अपने सिर पर लादे इधर-उधर होते अनेक स्त्री-पुरुषों के चेहरों पर अभी भी दर्द की लकीरें थीं। उनके चेहरे तनाव से ग्रस्त थे। उनके पीछे-पीछे उनके डर से सहमे हुए बच्चे चले जा रहे थे! आगे इस लेख में उन्होंने लिखा है, "विभाजन की त्रासदी इतनी गहरी है कि इसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता. (×-×-×) यह ग्रीक ट्रेजेडी की तरह थी" (वही)। इस त्रासदी का सबसे भयावह पक्ष यह था, "हिंदू और मुसलमान दोनों ईश्वर में आस्था के नाम पर, ईश्वर और अल्लाह का नाम- 'हर-हर महादेव' तथा 'या अली'- लेते हुए एक-दूसरे के तलवार और बरछी घोंप रहे थे" (वही)। इस लेख में उन्होंने यह भी लिखा कि विभाजन में हुई हिंसा और क्रूरता के सबसे अधिक शिकार दोनों ही तरफ़ की स्त्रियाँ और बच्चे हुए (वही)।

भारत-विभाजन एक अंतहीन और अनवरत त्रासदी के बतौर सामने आता है। इतिहासकार सलिल मिश्र ने 12 अगस्त 2012 ई. के Deccan Herald (Sunday Herald) में प्रकाशित अपने 'The tregedy of Partition' शीर्षक लेख में लिखा है, भारत का विभाजन एक अंतहीन और निरंतर जारी रहने वाली त्रासदी है। यह दरअसल एक प्रक्रिया है, जो 1947 ई. में तो केवल शुरू हुई थी; वस्तुतः यह आज भी जारी है- "विभाजन कोई अचानक घटी घटना नहीं थी। इसके पीछे और आगे घटनाओं की एक लंबी शृंखला है। इसके नतीज़े आज भी हम भुगत रहे हैं।" हिंदी कथाकार स्वयं प्रकाश की एक कहानी कुछ समय पहले आई थी- 'पार्टीशन'। इस कहानी में अंत में एक वाक्य आता है, जिसका तात्पर्य भी लगभग यही है- "आप क्या खाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं? कह रहे हैं पार्टीशन हुआ था! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है..." (www.hindisamay.com). भारतीय समाज की अंत: संरचना दरअसल कुछ ऐसी है कि वहाँ किसी समुदाय को किसी से अलग नहीं किया जा सकता। यह एक साँझी संस्कृति वाला

समाज है। धर्म के आधार पर किया गया कोई भी विभाजन यहाँ अव्यावहारिक और ट्रेजिक ही होगा। प्रसिद्ध पाकिस्तानी इतिहासकार आयेशा जलाल ने लिखा है, "विभाजन बीसवीं शताब्दी के दक्षिण एशिया की सबसे केंद्रीय ऐतिहासिक घटना है। यह एक ऐसा वाकया हुआ है, जिसकी न शुरुआत का पता चलता है, न अंत का। उत्तर-औपनिवेशिक दक्षिण एशिया जब भी अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर विचार करेगा, विभाजन का उस पर ज़रूर असर दिखेगा।"

विभाजन एक निरंतर त्रासदी की तरह लगातार जारी रहा है। विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान छोटे-बड़े युद्धों में तीन बार आमने-सामने भिड़ चुके हैं। इसी क्रम में 1971 ई. में पाकिस्तान का एक बार फिर विभाजन हुआ और बांग्लादेश बना। बांग्लादेश के निर्माण में भारत की केंद्रीय भूमिका थी। विभाजन के बाद इन दोनों-तीनों देशों के बीच तनाव की स्थितियाँ लगातार बनी हुई हैं। पाकिस्तान और भारत के बीच कश्मीर एक अंतहीन समस्या की तरह बना हुआ है। इसे लेकर कई युद्ध तो हो ही चुके हैं, इसके अलावा पिछले तीस साल से पाकिस्तान सेना तथा ख़ुफ़िया एजेंसी आई. एस. आई. द्वारा भारत के विरुद्ध प्रॉक्सी-वार निरंतर चालू किया हुआ है।

विभाजन की त्रासदी अभी ज़ारी है। आज भी स्थितियाँ बदली नहीं हैं, बल्कि आज तो स्थितियाँ और ज़्यादा बदतर हुई हैं। आज की तारीख में दोनों देशों के बीच बातचीत ही बंद है। विलियम डेलरिम्पल ने अपने उक्त लेख के अंत में लिखा है, "आज की स्थितियाँ भी ज़्यादा उत्साहवर्द्धक नहीं हैं। दिल्ली में इस समय एक ऐसी कट्टर दक्षिणपन्थी सरकार है जिसने इस्लामाबाद से बातचीत बरतरफ़ कर दी है। दोनों देश इस समय धार्मिक अतिवाद से पहले की अपेक्षा कहीं ज़्यादा गिरफ़्त में हैं। एक तरह से 1947 ई. अभी भी ज़ारी है। वह ख़त्म नहीं हुआ है।"

भारत-विभाजन की त्रासदी का सबसे दु:खद पक्ष है, इसमें हुई हिंसा का स्वरूप और चरित्र। यह हिंसा पूर्ववर्ती व आम हिंसा से अलग और विशिष्ट प्रकार की थी। विभाजन की इस हिंसा की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ रहीं, जो इसे अन्य प्रकार की हिंसाओं से अलग करती हैं -

1. यह हिंसा सामूहिक या समूहबद्ध थी। झुंड के झुंड एक-दूसरे पर टूट पड़ते थे और जो भी घरेलू क़िस्म के हथियार हाथ लगा, उसी से 'दुश्मन' पर पिल पड़ते थे; जैसे तलवार, फरसा, कुल्हाड़ी, लाठी, बरछी इत्यादि।
2. इस हिंसा में शामिल लोग पेशेवराना हत्यारे नहीं थे, अपितु साधारण लोग थे, ये अधिकांशतः वे लोग थे, जो अमूमन शांतिप्रिय होते हैं, लेकिन विभाजन के दंगों में ये अचानक वहशी हो उठे।
3. इतिहासकार सलिल मिश्र ने इस हिंसा के एक विशिष्ट चरित्र की ओर इंगित किया है। यह विशिष्ट चरित्र है, विकल्पहीनता। सलिल मिश्र ने अपने लेख 'The tregedy of Partition' में लिखा है, "उन्होंने किसी आवेश या घृणा के चलते सामने वाले को नहीं मारा, बल्कि इस अंदेशे में मारा कि यदि मैंने इसे नहीं मारा तो यह मुझे मार डालेगा। उन्होंने मारे जाने, ख़ुद मरने के स्थान पर सामने वाले को मारना ज़्यादा बेहतर समझा।"
4. इस हिंसा का स्वरूप सांप्रदायिक था। इसमें एक तरफ़ हिंदू और सिख थे, तो दूसरी तरफ़ मुसलमान थे, विशेषतः सीमावर्ती इलाक़ों में हिंसा ज़्यादा हुई। यह हिंसा एक-दूसरे को नेस्तनाबूद करने के मक़सद से की गई थी। यह हिंसा सामने वाले पर केवल हथियारों से हमले के रूप में नहीं थी बल्कि घर, दुकान, या जो कुछ सामने दिखे, उसे आग के हवाले कर देने, जलाकर राख कर देने के रूप में भी थी। यह जाति-संहार (genocide) के रूप में

सामने आई। The New Yorker के 29 जून 2015 के अंक में प्रकाशित अपने 'The Bloody Legacy of Indian Partition' शीर्षक लेख में William Dalrymple ने लिखा है, "यह परस्पर जाति-संहार नितांत अप्रत्याशित था, क्योंकि ऐसा पहले कभी हुआ नहीं था।" आगे उन्होंने यह भी लिखा कि इस हिंसा के कई रूप थे। इसने सारी हदें पार कर दीं- "यह हत्याकांड बहुत ही प्रचंड था। इसमें सामूहिक हत्याएँ, आगजनी, बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन, सामूहिक अपहरण और बर्बर यौनिक हिंसा; यह सब-कुछ हुआ।"

5. विलियम डेलरिम्पल ने अपने इसी लेख में निसिद हजारी द्वारा अपनी पुस्तक 'Midnight's Furies' में दर्ज़ इस तथ्य का उल्लेख किया है कि विभाजन की हिंसा की बर्बरता नाज़ियों के डेथ केम्पों से भी बदतर थी। निसिद हजारी ने लिखा है कि गर्भवती महिलाओं के स्तन काट दिए गए और उनका पेट चीर कर गर्भस्थ शिशु को निकालकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया तथा शिशुओं को सलाखों पर शब्दशः भूना गया। (सन् 2002 के गुजरात दंगों में एक बार फिर ऐसे दृश्य दिखाई दिए थे)।

हिंसा का यह रूप अन्य हिंसाओं से भिन्न है। यह हिंसा यहीं देखने को मिली। जब यह बवाल थम गया और चीजें पटरी पर आईं तो लोगों को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने कैसे इतनी बर्बरता कर दी! भारतीय उपमहाद्वीप के लोग सामान्यतः शांतिप्रिय हैं, किंतु धर्म ने जैसे उन्हें हिंसक पागल बना दिया! विद्वानों का मत है कि दुनिया में कहीं भी अन्यत्र ऐसी विभाजन की हिंसा नहीं हुई।

3.4.5. विभाजन की त्रासदी और स्त्री पर उसका प्रभाव

विभाजन की त्रासदी का सबसे सांघातिक प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा। इतिहास की किसी भी घटना का प्रभाव जेंडर कारणों से स्त्रियों और पुरुषों पर अलग-अलग पड़ता है। पुरुषों पर की जाने वाली और स्त्रियों पर की जाने वाली हिंसा में अंतर होता है। पुरुषों पर जहाँ मारपीट, हत्या, अंग-भंग इत्यादि होती है तो स्त्रियों पर इनके साथ-साथ अपहरण, दासीत्व, एकल/सामूहिक बलात्कार, गर्भवती महिलाओं के भ्रूण की हत्या, पति एवं बच्चों की हत्या कर उन्हें निराश्रित कर देना इत्यादि। किसी भी जातिवादी, सांप्रदायिक, कबीलाई दंगों-फ़सादों में स्त्रियाँ इसी तरह की कुछ अलग क़िस्म की जेंडर हिंसा की शिकार होती हैं। भारत-विभाजन दुनिया की एक बड़ी त्रासदी मानी जाती है। इसे एक भयंकर त्रासदी बनाने में स्त्रियों पर हुई हिंसा का एक बड़ा हाथ है। स्त्रियों पर हिंसा, यौन-हिंसा, के जितने रूप यहाँ मिले, वे आज तक अन्यत्र कहीं नहीं देखे गए। भारत-विभाजन के समय स्त्रियों पर हुई व्यापक क्रूर हिंसा आज भी बहस और विचार का मुद्दा बना हुआ है।

विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुई हिंसा, अत्याचार, यौन-हिंसा, जेंडर के आधार पर हुए अत्याचार-अन्याय इत्यादि को निम्नलिखित बिंदुओं में निबद्ध किया जा सकता है -

1. विभाजन के दौरान ऑनर किलिंग के दृश्य भी दिखाई दिए थे। ये हिंदुस्तान में नए युग के ऑनर किलिंग के उदाहरण माने जा सकते हैं। इसके अंतर्गत इस आशंका के डर से कि हमारे घर की औरतें कहीं किसी विधर्मी के हाथ न पड़ जाएँ, घर वालों ने ख़ुद अपने घर की स्त्रियों को मौत की नींद सुला दिया। सलिल मिश्र ने अपने लेख 'The tregedy of Partition' में लिखा है, "पितृसत्तावादियों ने अपने घर की औरतों को, किसी और के द्वारा बेइज़्ज़त हो जाने से बचाने के लिए स्वयं ही मौत के घाट उतार दिया। उन्हें अपने घर की औरतों को मार देना एक मात्र सम्मानजनक विकल्प लगा होगा!" उर्वशी बुटालिया ने मौखिक इतिहास-पद्धति पर लिखी गई

अपनी किताब 'The Other Side of Silence: Voices from the Partition of India' में अपने घर की स्त्रियों को अपने ही घर के लोगों द्वारा मार दिए जाने का विस्तार से विवेचन किया है। Scroll.In पर प्रकाशित अपने एक लंबे साक्षात्कार 'Men killed their own women and children during Partition, but freedom overshadowed that horror' में उन्होंने लिखा, "पुरुषों को इस बात का डर था कि जब वे बचकर भाग रहे होंगे, घोड़ों पर चढ़ रहे होंगे, हथियार चला रहे होंगे, तेजी से निकल जा रहे होंगे; तब स्त्रियाँ और बच्चे ऐसा नहीं कर सकेंगे।" उर्वशी बुटालिया ने अपनी इसी किताब में इस तथ्य को भी रेखांकित किया कि अपने घर की स्त्रियों को अपने ही घर के लोगों द्वारा मार दिए जाने का एक कारण यह भी रहा कि स्त्रियों को अपनी कौम/समाज/समुदाय की प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता रहा है. यह प्रतिष्ठा बची रहे, इसलिए दूसरी कौम/समुदाय/समाज के लोगों के हाथ वे न पड़ें, इसलिए उन्हें ख़ुद मार देना ही सबसे उचित है। उन्होंने कहा, "स्त्रियाँ अपने समुदाय की प्रतिष्ठा की प्रतीक मानी जाती रही हैं। आज भी मानी जाती हैं। मुसलमानों की अपेक्षा हिंदुओं और सिखों में यह अधिक देखा जाता है। उन लोगों को डर था कि उनकी औरतें अपहृत की जा सकती हैं, उनका बलात्कार हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप वे दूसरे समुदाय के रक्त से संक्रमित हो सकती हैं।" (वही)

2. स्त्रियों को अपनी जाति की अस्मिता या इज्ज़त का प्रतीक माना जाता है। ऐसी वैचारिक मान्यता परंपरागत रूप से प्रायः हर समाज में पाई जाती है कि किसी समाज से बदला लेना है या उसे कोई सबक़ सिखाना है या उसे उसके किए की सज़ा देनी है, तो उस समाज की स्त्रियों को कुचलना, उन पर अत्याचार, हिंसा, उन्हें ठिकाने लगाना शुरू कर दो; वह समाज ख़ुद-ब-ख़ुद तुम्हारे अंकुशतले आ जाएगा! इस आधार पर हिंदू और मुसलमान दोनों समुदायों के धार्मिक और सांप्रदायिक रूप से वहशी हुए पुरुषों ने विधर्मी समुदाय की स्त्रियों पर भरपूर और भयंकर यौन-हिंसा की। इसमें बलात्कार सबसे जघन्य हिंसा थी। यह क्रम दरअसल इस प्रकार हुआ- पहले धर-पकड़ फिर अपहरण, फिर बलात्कार और फिर अंत में हिंसा की झेहा के रूप में कहीं-कहीं उसकी हत्या! इस प्रक्रिया से विधर्मी समुदाय के साथ बदला पूरा हुआ! लगभग 70,000 स्त्रियों के साथ यह सब हुआ। सलिल मिश्र ने अपने उक्त लेख 'The tregedy of Partition' में एक स्थान पर लिखा है, "लगभग 70,000 स्त्रियाँ पकड़ी गईं, उनका अपहरण हुआ और फिर बलात्कार हुआ। दूसरे धर्म की स्त्री का अपहरण, उस धार्मिक समुदाय से बदला, बदला लेने का एक मान्य रास्ता बन गया था।" उर्वशी बुटालिया ने भी अपनी किताब 'The Other Side of Silence: Voices from the Partition of India' में इस तथ्य को रेखांकित किया है। उन्होंने लिखा है कि "स्त्रियाँ अपने समुदाय की प्रतिष्ठा की प्रतीक मानी जाती रही हैं. आज भी मानी जाती हैं।" कुछ लेखक/इतिहासकार ऐसी स्त्रियों की संख्या 1,00,000 तक मानते/ मानती हैं।

3. भारत-विभाजन में जनसंख्याओं के विस्थापन की परिघटना में स्त्रियों के साथ कई अमानवीय और क्रूर मज़ाक हुए। ऊपर जिन अपहृत स्त्रियों की चर्चा हुई, उनके साथ एक के बाद एक कई ज्यादतियाँ हुईं। जिन स्त्रियों का अपहरण किया गया था, उनका उनके अपहर्ताओं के साथ शादी करा दिया गया। धीरे-धीरे जब इन स्त्रियों ने अपने नए घरों और माहौल में स्वयं को किसी भी तरह व्यवस्थित कर लिया; तो इन दोनों देशों की सरकारों ने अपनी-अपनी स्त्रियों को अदला-

बदली करते हुए वापस लेने का निर्णय लिया। सोचा जा सकता है कि यह निर्णय कितना अमानवीय और अपमानजनक रहा होगा। सलिल मिश्र ने स्त्रियों की इस अदला-बदली की तुलना दो देशों के युद्धबंदियों की अदला-बदली से की है। इस सारी कार्रवाई का असर इन स्त्रियों की मानसिकता पर बहुत घातक रूप में पड़ा। ये स्त्रियाँ दो-दो बार अपने स्थानों से विस्थापित हुईं। पहले तो अपने मूल घरों से और फिर उस परिवेश से जिसे उन्होंने (अपहरण और अपहरणकर्ता के साथ विवाह के बाद) अपना लिया था। अपने माथे पर अपहरण और बलात्कार का कलंक ओढ़े इन औरतों को अपने मूल घरों में पुनः खपने में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। अनेक लोगों ने उन्हें स्वीकार ही नहीं किया। अनेक कहाँ बिला गईं, पता ही नहीं चला। विभाजन की त्रासदी का यह वह कहर है, जो केवल औरत पर टूटा।

4. स्त्रियों के इस दुतरफ़ा विस्थापन और अपनी जड़ों से उखड़ने की त्रासदी भारत-विभाजन की एक शर्मनाक परिघटना के रूप में सामने आती है। दोनों देशों की सरकारों द्वारा स्त्रियों की अदला-बदली एक हास्यास्पद कदम तो था ही, यह स्त्रियों के लिए एक नई लाइलाज़ समस्या लेकर उपस्थित हुआ। ऊपर कहा गया कि जब ये स्त्रियाँ अपने स्वदेश मूल घरों पर पहुँचीं तो इनके घरवालों ने इन्हें स्वीकार नहीं किया। सोचने की बात है कि ये स्त्रियाँ फिर कहाँ गई होंगी! हो सकता है, कुछ ने कूएँ में छलाँग लगा ली हो, किसी ने रेल के नीचे कटकर जान दे दी हो, कोई अपना मानसिक संतुलन खो बैठी हो और पागलखाने पहुँच गई हो, या किसी ने कुछ और कर लिया हो! यानी कि यह एक बड़ी भयावह स्थिति थी। उस समय के साहित्य में यह यथार्थ सशक्त रूप से चित्रित हुआ है। इस संबंधमें सआदत हसन मंटो की कहानियाँ देखी जा सकती हैं।

विस्थापित और लौटी हुई स्त्रियों के साथ घरवालों का यह व्यवहार कितना अमानवीय और बर्बर था, इसकी भनक इस बात से भी मिलती है कि उस समय महात्मा गांधी और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू दोनों ने अपने-अपने स्तर पर इस प्रवृत्ति की आलोचना की थी। गांधीजी ने 7 दिसंबर, 1947 ई. की प्रार्थना-सभा में हिंदू और सिख परिवारों और समुदायों द्वारा विभाजन के दंगों में अपहरण/बलात्कार की शिकार हुई स्त्रियों के पाकिस्तान से प्रत्यावर्तन के उपरांत अंगीकार न किए जाने के मुद्दे पर बोलते हुए कहा था- "वह पति बर्बर है और वे माँ-बाप बर्बर हैं, जो अपनी पत्नी/पुत्री को वापस अपना नहीं रहे हैं। इसमें मेरे विचार से उस स्त्री का कोई क़सूर नहीं है। वे तो हिंसा की शिकार हुई हैं। इन स्त्रियों पर कलंक लगाना और इन्हें समाज में स्वीकार-योग्य न मानना अन्यायपूर्ण है।" इसी तरह जवाहरलाल नेहरू ने जनवरी, 1948 को लगभग ऐसी ही एक अपील की, "यह एक बहुत ही आपत्तिजनक और ग़लत रवैया है, जो सामाजिक रीति-रिवाज़ इसका समर्थन करते हैं, वह भर्त्सनीय है। इन स्त्रियों को हमारे कोमल और प्यार-भरे संरक्षण की जरूरत है।" (वही)

असल में अपहृत स्त्रियों के लौटने के मामले में जेंडर के आधार पर दोहरा मापदंड अपनाया गया। तहमीना खान ने The Express Tribune (Blogs) में 13 अगस्त, 2015 ई. को प्रकाशित अपने लेख 'End of silence: A woman's narrative of the 1947 Partition' में भारत के Abducted Person's (Recovery and Restoration) Act 1949 का संदर्भ लेते हुए यह लिखा था, "16 वर्ष से ऊपर के पुरुषों को यह विकल्प दिया गया था कि वे अभी जहाँ हैं, वहाँ चाहें तो रह सकते हैं, लेकिन स्त्रियों पर राज्य द्वारा इसे थोप दिया गया था,

उन्हें, यदि उनके कोई बच्चे हैं तो उन्हें वहीं छोड़कर आने को कहा गया। यदि वे गर्भवती थीं तो बावजूद इसके कि गर्भपात ग़ैर-क़ानूनी था, उनका गर्भपात कराया गया।"

5. विभाजन के समय अपनी स्त्रियाँ विधर्मियों के हाथ न पड़ जाएँ, इसके लिए स्त्रियों द्वारा सामूहिक आत्महत्या की घटनाओं के उदाहरण भी इतिहास में मिलते हैं । इन स्त्रियों के सामूहिक आत्महत्या के इस निर्णय के पीछे कौन थे, इस बारे में मतैक्य नहीं है। विधर्मियों के हाथ में पड़ने के क्या दुष्परिणाम होते हैं, इस पर ऊपर चर्चा की गई। यौन-हिंसा, बलात्कार, जबरन विवाह के अतिरिक्त धर्म-परिवर्तन एक बड़ी परिघटना के रूप में सामने आया। विवाह के लिए स्त्री का धर्म बदलवाना जरूरी था। धर्म-परिवर्तन विधर्मी पर वर्चस्व के प्रतीक की तरह प्रचलित हुआ। विधर्मियों की स्त्रियों का अपहरण करना, फिर उनसे विवाह करने के लिए उनका धर्म-परिवर्तन कराना; यह एक निरंतर चलने वाला सिलसिला था। यह नौबत न आए, इसलिए स्त्रियों द्वारा सामूहिक आत्महत्या के क़दम उठाने के उदाहारण पाए जाते हैं। अन्वेषा सेनगुप्ता ने अपने एक लेख "Looking Back at Partirion and Women: A Factsheet" में इस तथ्य का विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा है कि स्त्रियाँ अपने व्यवहार द्वारा पितृसत्तात्मकता का अंतर्निर्वहन करती देखी जाती हैं। अपने धर्म की पवित्रता और विशुद्धता को बचाए रखने के सिलसिले में स्त्रियों ने सामूहिक आत्महत्याएँ कीं। अन्वेषा सेनगुप्ता ने इसका एक उदहारण देते हुए लिखा है कि रावलपिंडी के पास के थोया खालसा नामक गाँव में कोई 96 स्त्रियों ने इस डर से कि कहीं उनका धर्म परिवर्तन न हो जाए, कूएँ में कूदकर अपनी जान दे दी।
6. विभाजन के परिणामस्वरूप शरणार्थी-समस्या उत्पन्न हुई। इसमें पुरुष शरणार्थी भी थे तथा महिला शरणार्थी भी, लेकिन जेंडर के आधार पर दोनों की समस्याएँ, पीड़ाएँ एक-दूसरे से भिन्न थीं। अन्वेषा सेनगुप्ता ने अपने उक्त लेख में भारत राज्य द्वारा पंजाब और बंगाल के शरणार्थियों के लिए अलग-अलग मानदण्ड अपनाए जाने का हवाला दिया है। उन्होंने लिखा है कि बंगाल की बजाय पंजाब के शरणार्थियों को सरकार ने ज़्यादा महत्व दिया था। इन दोनों क्षेत्रों की महिला शरणार्थियों के बीच भी विभेद किया जाता था। जैसे कि पंजाब की महिला शरणार्थियों को भत्ते के बतौर 20 रुपए मिलते थे, जबकि बंगाल की महिला शरणार्थियों को मात्र 12 रुपए मिलते थे।

3.4.6. सारांश

हमने देखा कि इस इकाई का अध्ययन बहुत ही व्यापक और विशिष्ट रहा है। इस इकाई का अध्ययन अनेक उपशीर्षकों एवं उपबिंदुओं के अंतर्गत किया गया है। सबसे पहले इस इकाई के उद्देश्य के अंतर्गत कहा गया कि इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भारत-विभाजन की ऐतिहासिक घटना का स्त्रियों की जिंदगियों पर क्या प्रभाव पड़ा। स्त्रियों पर इसके कुछ भिन्न प्रभाव एवं परिणाम देखे जाते हैं। ये प्रभाव व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक इत्यादि प्रकार के हो सकते हैं। इन परिणामों और प्रभावों का जेंडरगत अध्ययन इस इकाई का विशिष्ट उद्देश्य रहा। इस इकाई की प्रस्तावना यह रही कि स्त्री के प्रति भारत जैसे देशों में अभी भी देहवादी, सेक्सवादी, लंपट रवैया अधिकतर देखने में आता है। स्त्री को उसकी जाति, वर्ग, कुटुंब, देश इत्यादि का प्रतीक-प्रतिनिधि मानकर उसे अपमानित, जलील, पददलित कर उसकी पूरी जाति, वर्ग, कुटुंब, देश इत्यादि से 'बदला' लिया जाता है। भारत-विभाजन के दौरान यह सर्वत्र देखने में आया। सांप्रदायिक दंगों में स्त्रियों पर जबर्दस्त यौन-हिंसा हुई। बलात्कार, सामूहिक

बलात्कार, अपहरण, अगवा कर इधर-उधर कर देना इत्यादि वारदातें खूब हुईं। इस इकाई की विषयवस्तु को तीन बिंदुओं के अंतर्गत व्याख्यायित किया गया. पहले बिंदु के अंतर्गत यह देखा गया कि भारत-विभाजन की स्थिति-परिस्थितियाँ, कारण, प्रक्रिया और परिणाम क्या थे। दूसरे बिंदु के अंतर्गत यह देखा गया कि भारत विभाजन की त्रासदी कितनी भयावह थी! अनेक इतिहासवेत्ताओं ने इस त्रासदी की तुलना ग्रीक ट्रेजेडी से की है। विभाजन की यह त्रासदी एक अनवरत जारी त्रासदी के रूप में देखी जाती है। तीसरे बिंदु में स्त्रियों पर विभाजन की त्रासदी का क्या प्रभाव पड़ा, यह देखा गया है। इस विस्तार में विभाजन के दौरान स्त्रियों पर की गई हिंसा के विविध रूपों का विवरण दिया गया है।

3.4.7. बोध प्रश्न

1. भारत-विभाजन की स्थिति-परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए।
2. भारत-विभाजन के परिणामों की विवेचना कीजिए।
3. भारत-विभाजन का स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ा? विस्तार से प्रकाश डालिए।
4. भारत-विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुई हिंसा के विविध रूपों का वर्णन कीजिए।
5. स्त्रीवादी दृष्टि से भारत-विभाजन की विवेचना कीजिए।

खंड-4 : समकालीन इतिहास लेखन और स्त्री
इकाई-1 : स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्री

इकाई की रूपरेखा

4.1.1. उद्देश्य
4.1.2. प्रस्तावना
4.1.3. भारत में स्त्री
4.1.4. स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्री
4.1.5. वैश्वीकरण और स्त्री
4.1.6. सारांश
4.1.7. बोध प्रश्न
4.1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची
4.1.9. उपयोगी ग्रंथ सूची

4.1.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित बातों को समझने में समर्थ हो सकेंगे-

1. भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति क्या रही है।
2. स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्रियों की स्थिति में किस तरह के बदलाव आए हैं।
3. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने किस तरह से स्त्रियों को प्रभावित किया है।

4.1.2. प्रस्तावना

15 अगस्त, 1947 ई. को भारत एक आजाद मुल्क था। आजादी की इस लड़ाई में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी बड़े पैमाने पर भागीदारी की थी। आजादी के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था, जिसमें राज्य के नियंत्रण में होने वाले पूँजीवादी विकास के मॉडल को अपनाया। जाहिर तौर पर विकास की इस प्रक्रिया ने समाज के अलग-अलग तबकों पर अलग-अलग तरह से असर डाला। कल्याणकारी राज्य की इस अवधारणा के तहत शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे विषयों को राज्य की जिम्मेदारी के अंतर्गत रखा गया। इसी की चलते स्त्रियों के एक तबके तक शिक्षा की पहुँच को संभव बनाया गया। लेकिन स्त्रियों की एक बड़ी आबादी भी थी, जो शिक्षा से वंचित थी। आजादी के बाद अपनाई गई विकास की प्रक्रिया ने लैंगिक संबंधों की सत्ता संरचना को लगभग यथावत बनाए रखा। 1974 ई. में प्रकाशित 'टुवर्ड्स इक्वलिटी' नामक रिपोर्ट ने आजादी के बाद चली विकास की प्रक्रिया पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया और राज्य से ऐसे समावेशी विकास की अपेक्षा की, जो महिला सशक्तीकरण में सहायक हो। सत्तर और अस्सी के दशक में चले महिला आंदोलन ने भी भारतीय राज्य को स्त्रियों के मुद्दों के प्रति पहले से अधिक संवेदनशील बनाया। 90 के दशक में नई आर्थिक नीतियों के लागू हो जाने के बाद भारतीय समाज में तमाम सारे बदलाव दिखाई पड़ते हैं। नव उदारवाद की इन नीतियों के स्त्रियों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव दिखाई देते हैं।

4.1.3. भारत में स्त्री

भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज रहा है या इसे हम पितृसत्तात्मक समाज भी कह सकते हैं। पितृसत्तात्मक अथवा पुरुष प्रधान समाज से तात्पर्य ऐसे समाज से है, जहाँ पर पुरुषों का स्त्रियों पर प्रभुत्व दिखाई देता है। इस प्रभुत्व की सबसे प्रखर अभिव्यक्ति परिवार में दिखाई पड़ती है। परिवार में निर्णय लेने की ताकत पुरुष के पास ही होती है, वही परिवार का मुखिया भी होता है। आम तौर पर पुरुष बाहर जाकर काम करता है और महिलाएँ घर के अंदर काम करती हैं। बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा, साफ-सफाई, खाना बनाना कुछ ऐसे काम हैं, जिन्हें महिलाएँ घर पर रहकर करती हैं। इन कामों के लिए उन्हें कोई मेहनताना भी नहीं दिया जाता है। यदि कोई महिला बाहर जाकर भी काम करती है तो भी उसे घर के इन कामों से कोई मुक्ति नहीं मिलती है। भारतीय समाज में पुरुषों का यह प्रभुत्व सिर्फ परिवार तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समाज, अर्थव्यवस्था, राज्य, कानून, न्यायपालिका, मीडिया हर जगह दिखाई पड़ता है। देश की अर्थव्यवस्था में स्त्रियों के द्वारा घर में किए जाने वाले काम की कोई गिनती नहीं होती है। यानी सकल घरेलू उत्पाद में स्त्रियों के द्वारा किए जाने वाले घरेलू श्रम को शामिल नहीं किया जाता है। स्त्रियों का अधिकांश हिस्सा आज भी अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने के लिए विवश है, जहाँ पर किसी भी किस्म की सामाजिक सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं होती है। काम के घंटे, न्यूनतम वेतन, साप्ताहिक अवकाश जैसी बुनियादी चीजें भी यहाँ पर तय नहीं होती हैं। अधिकांश क्षेत्रों में स्त्रियों के द्वारा पुरुषों के बराबर काम करने के बावजूद वेतन में समानता नहीं दिखती है। इसी तरह से परिवार के अंदर कानूनन तो पिता की संपत्ति पर पुत्री को पुत्र के बराबर ही हक हासिल हो गया है, लेकिन किसी भी स्त्री के लिए अपने पिता की संपत्ति पर दावा करना आसान नहीं है। एक स्त्री बखूबी इस बात से परिचित है कि ससुराल में किसी भी स्थिति में रिश्ते असामान्य होने के चलते उसका अपना मायका ही एक मात्र ठिकाना है और संपत्ति पर हक माँगकर भाई से भी रिश्ते सामान्य नहीं रह जाएँगे। इसी वजह से अधिकांश महिलाएँ पिता की संपत्ति पर अपना हक नहीं जताती हैं। इसी तरह अगर हम कानून के संदर्भ में बात करें तो हमें दो तरह की विसंगतियाँ नजर आती हैं। संवैधानिक रूप से तो स्त्री और पुरुष सभी बराबर हैं लेकिन ये बराबरी समाज में नहीं दिखाई पड़ती है। एक तरफ तो लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को रोकने के लिए तमाम सारे कानून बने हैं, लेकिन इन कानूनों को अमल में लाने वाली संस्थाएँ भयानक रूप से पुरुषवादी सामंती मानसिकता से ग्रस्त हैं। राजस्थान की एक महिला, जिसके साथ सवर्ण तबके के लोगों ने बलात्कार किया था, उसे न्याय देने के बजाय न्यायधीश यह कहते हैं कि जिनके ऊपर बलात्कार का आरोप लगाया गया है, क्योंकि वे ऊँची जाति से ताल्लुक रखते हैं और आरोप लगाने वाली महिला निचली जाति से आती है। इसलिए यह संभव नहीं है कि ऊँची जाति के लोगों ने किसी निचली जाति की महिला से बलात्कार किया होगा। ठीक इसी तरह हम दहेज का उदाहरण ले सकते हैं। भारत में महिला आंदोलन के दबाव के चलते सख्त कानून तो बना दिए गए हैं, लेकिन नव उदारवादी नीतियों ने जिस तरह से उपभोक्तावाद व लिंग आधारित असमानता को बढ़ावा दिया है, उसने दहेज के खिलाफ बनें कानून को अप्रासंगिक बना दिया है। एक तरफ तो सख्त कानून हैं, लेकिन धड़ल्ले से कानून का मजाक बनाया जा रहा है। आज के समय में दहेज स्टेट्स सिंबल का भी पर्याय हो गया है। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया ने भी स्त्रियों के वस्तुकरण को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। हम लगातार ऐसे विज्ञापनों को देख सकते हैं, जहाँ पर उपभोक्ता वस्तुओं को बेचने के लिए स्त्रियों के शरीर का वस्तुकरण किया जाता है। ऐसा नहीं है कि स्त्रियों की दोयम दर्जे की नागरिक की स्थिति सिर्फ वर्तमान का मसला है। इतिहास और मिथक में भी हमें ऐसे कई उदाहरण मिल जाएँगे, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि प्राचीन भारत में भी भारतीय

समाज एक पुरुष प्रधान समाज ही था। यहाँ पर गार्गी व याज्ञवल्क्य के बीच हुए संवाद से इसे समझा जा सकता है। एक बार ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपने समय के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान लोगों को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया। उनसे मुकाबला करने के लिए छह लोग आए, उसमें से एक अकेली महिला गार्गी भी थी। सारे पुरुष ऋषि याज्ञवल्क्य से पराजित हो गए। अंत में गार्गी की बारी आई। गार्गी लगातार ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रश्न कर रही थी और अंत में हार से बचने के लिए ऋषि याज्ञवल्क्य ने आक्रामक पौरुषत्व का सहारा लेते हुए, उसे धमकी दी कि गार्गी बहस को इतना आगे मत ले जाओ कि तुम्हारा सर ही फट जाए। यहाँ पर यह बात गौर करने लायक है कि जहाँ सारे पुरुष हारकर चुप हुए, वहीं गार्गी को धमकी देकर चुप कराया गया। ऐसे बहुत सारे उदाहरण मिथकों और इतिहास में मिल जाएँगे जो यह बताते हैं कि प्राचीन और मध्यकालीन भारत में सत्ता-संबंध पुरुषों के हक में ही थे। औपनिवेशिक भारत में खास तौर पर 19वीं शताब्दी में आकर कई सारे समाज सुधारकों ने स्त्री प्रश्नों पर बोलना शुरू किया, लेकिन समाज की बुनियादी संरचना में कोई फर्क नहीं आया था। अगले अध्याय में हम विस्तार से स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्री विषय पर विस्तार से बात करेंगे।

4.1.4. स्वतंत्रता उपरांत भारत में स्त्री

आजादी के तकरीबन ढाई दशक के बाद स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए बनाई गई समिति की रिपोर्ट 'समानता की ओर' (टुवर्ड्स इक्वलिटी, 1974) में कहा गया है कि आजादी के बाद अपनाई गई विकास की नीतियों ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं लाया है। उस समय से लेकर अब तक के अनुभव यह बताते हैं कि सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाएँ विकास की मुख्यधारा से पीछे छूट गई हैं। स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक हिंसा व लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव से आज भी प्रभावित हैं। 'समानता की ओर' नामक रिपोर्ट ने इस बात की ओर भी इशारा किया कि स्वंत्रता के लगभग तीन दशकों के बाद स्त्रियों की अधीनस्थ स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। संविधान में लैंगिक समानता के प्रावधान तथा राजनीति तथा रोजगार के क्षेत्र में समान अधिकारों के प्रावधान होने के बाद भी इन क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी कम हुई है। स्त्रियों तथा बच्चियों की मृत्यु दर बढ़ी, लिंगानुपात पहले की तुलना में और ज्यादा खराब हुआ तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं तक गरीब स्त्रियों की पहुँच पुरुषों के मुकाबले घटी।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद भारत ने जिस संविधान को अंगीकार किया, वह सार्वभौमिक मताधिकार के तहत लिंग, नस्ल, जाति, वर्ग से इतर सभी को मताधिकार का अधिकार देता है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों के लिए यह एक रैडिकल कदम था, क्योंकि इससे पहले दुनिया के तमाम सारे देशों में स्त्रियों को मताधिकार के अधिकार के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा था। यूरोप के देशों में स्त्रियों का यह संघर्ष लगभग सवा सौ साल चला और तब कहीं जाकर उन्हें वोट का अधिकार प्राप्त हुआ था। वहीं भारत में आजादी के तुरंत बाद वोट का अधिकार मिलना एक कांतिकारी कदम था, लेकिन इसके साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि आजाद भारत के सामाजिक ताने बाने पर पितृसत्तात्मक विचारधारा के प्रभुत्व की जड़ें काफी मजबूत थीं। पितृसत्तात्मक विचारों की जड़ें अर्थव्यवस्था , राजनीति से जुड़ी तमाम सारी संस्थाओं में देखी जा सकती थीं। इन पितृसत्तात्मक मूल्यों से निपटने के लिए संविधान के अनुच्छेद पंद्रह के द्वारा किसी भी किस्म की असमानता को नकारा गया। इसी प्रकार किसी भी किस्म के शोषण के प्रति अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया। गोपा जोशी लिखती हैं कि "भारतीय संविधान में समानता का अधिकार है। संविधान की धारा 14, 15, 16 समानता के

अधिकार की सीमाएँ निर्धारित करती है, परंतु समानता को परिभाषित नहीं किया गया है। सर्वमान्य परिभाषा के अभाव में इसका क्षेत्र का संकुचित एवं विस्तृत विवेचित हुआ है।'

भारतीय संविधान में छिपी पितृसत्तात्मक प्रवत्तियों का जिक्र करते हुए उपेन्द्र बक्षी लिखते हैं, "पूरे संविधान में स्त्रियों का संदर्भ केवल छह बार ही आया है। इसमें से पाँच बार यह संदर्भ पुरुषों तथा बच्चों के साथ है। धारा 15 (2) लिंग के आधार पर केवल सार्वजनिक स्थानों पर तथा सार्वजनिक सुविधाओं के उपभोग पर किसी प्रकार के भेदभाव को रोकती है। केवल धारा 42 ही राज्य को स्त्रियों को प्रसूति लाभ देने का निर्देश देती है। संविधान में स्त्रियों को अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों या पिछड़ी जातियों की तरह, सामाजिक उपेक्षा का शिकार नहीं माना जाता है। यहाँ तक की इन कमजोर जातियों की स्त्री को भी कमजोर की श्रेणी में नहीं रखा गया है। संविधान में पितृसत्ता को स्त्री समानता की राह में रोड़ा न मानकर एक नैसर्गिक संस्था के रूप में लिया गया है।"

आजादी के बाद भारतीय राज्य पर समाजवादी विचारों के प्रभाव को देखा जा सकता है। इस प्रभाव के चलते ही भारतीय राज्य के द्वारा कल्याणकारी अर्थव्यवस्था को प्रधानता दी गई। जिसके तहत राज्य के नियंत्रण में होने वाले पूँजीवादी विकास के मॉडल को अपनाया गया। राज्य को मुख्यतः सामाजिक बदलाव के एक टूल के बतौर देखा गया, जिसके माध्यम से समतामूलक समाज की स्थापना संपन्न होनी थी। साधना आर्य लिखती हैं कि "अंततः विकास के मॉडल की प्राथमिकता उत्पादन वृद्धि रही न कि वितरण संबंधी न्याय। पूरी विकास नीति और चिंतन इस सोच पर आधारित रहा कि विकास प्रक्रिया स्वमेव वितरण संबंधी न्याय के प्रश्न को हल कर लेगी। यानी कि उत्पादन वृद्धि के लाभ अपने आप लोगों के जीवन स्तर को उठाने में मदद करेंगे। असमानता और सामाजिक आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन वृद्धि के जरिए स्वमेव वितरण संबंधी न्याय करने के विचार में अंतर्निहित समस्याएँ थीं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया।"

इस मुनाफे पर आधारित पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया ने एक अभिजात्य तबके को जन्म दिया। समस्त राजनैतिक नीति निर्माण के कार्यक्रमों में इसी अभिजात्य तबके का दबदबा बढ़ता गया, जिसने सामाजिक न्याय व समाज के लोकतांत्रिकीकरण के सवालों को पीछे छोड़ दिया। विकास की इस प्रक्रिया ने समाज में पहले से मौजूद गैरबराबरी को और मजबूत किया व वंचित तबकों के हाशियाकरण को और मजबूत किया। इसी के चलते इस किस्म की विकास प्रक्रिया का स्त्रियों पर और ज्यादा नकारात्मक असर हुआ। पितृसत्तात्मक सत्तासंबंध कमजोरहोने की बजाय और मजबूत हुए।

साधना आर्य लिखती हैं कि विकास को वृहद रूप में समझना होगा। इसके लिए पहले से व्याप्त सामाजिक ढाँचों और संबंधों को समझना होगा, जोकि वर्गीय, जातीय तथा पुरुष प्रभुता और निम्न वर्गों, जातियों एवं स्त्रियों की हीन स्थिति पर टिके हैं, क्योंकि ये इन नकारात्मक प्रभावों को बढ़ाते हैं। वृहत अर्थों में विकास में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव जीवन के अन्य पहलू शामिल किए जाने जरूरी हैं, जोकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति और हित समूह को अधीनता और निर्भरता की स्थिति से मुक्त कराकर समानता और न्यायपूर्ण सामाजिक संबंधों पर आधारित जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाएँ, लेकिन जैसा कि उपलब्ध आकड़ों से पता चलता है कि महिलाएँ विकास की प्रक्रिया में कहीं पीछे छूट गई हैं। अधिक-से-अधिक महिलाएँ कुशल कारीगरों की श्रेणी से निकलती जा रही हैं और अकुशल मजदूरों की श्रेणी में आती जा रही हैं। रोजगार के अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं। राज्य की नीतियों के फलस्वरूप जीवनयापन की पुरानी सुरक्षाएँ खत्म की जा रही हैं। इससे स्वायत्ता के दायरे सिकुड़ते जा रहे हैं।"

आजाद भारत में कानून के क्षेत्र में जो सुधार किए गए उनके संदर्भ में देखा जाए तो हम देखते हैं कि हिंदू कोड बिल को संसद और उसके बाहर तीखे विरोध का सामना करना पड़ा था। इस विरोध के पीछे जो मुख्य तर्क था कि इन कानूनों के लागू होने से परिवार नामक संस्था के टूटने का खतरा बढ़ जाएगा। हालांकि हिंदू कोड बिल के लागू हो जाने से हिंदू परिवारों में स्त्रियों की स्थिति कुछ बेहतर हुई, लेकिन मोटे तौर पर आजादी के ढाई दशक बाद तक पुरुष प्रधानता के सवाल या स्त्रियों की अधीनता के सवाल राजनैतिक परिदृश्य से लगभग गायब रहे। इसे हम ऐसे भी देख सकते हैं कि श्रम संबंधी कानून संगठित क्षेत्रों में काम करने वाली पाँच से दस फीसदी स्त्रियों पर लागू हो रहे थे, जबकि नब्बे फीसदी से भी अधिक स्त्रियाँ असंगठित क्षेत्रों में काम कर रही थीं, जो इन कानूनों के दायरे से बाहर थीं। साधना आर्य लिखती हैं कि "समान काम के लिए समान वेतन संबंधी कानून भी 1975 के बाद ही बनाया गया। सबसे अधिक महत्व की बात यह थी कि आर्थिक विकास के बारे में बहस समानता प्राप्ति पर न होकर उत्पादन वृद्धि पर ही केंद्रित थी।"

इसी तरह से दहेज की समस्या से निपटने के लिए 1961 में कानून बना। 1984 और 1986 में इस कानून में किए गए संशोधनों के उपरांत कानून को और सख्त बना दिया गया। लेकिन इन कानूनों के बन जाने के बाद भी स्त्रियों का उत्पीड़न नहीं रुका। इस कानून में जो भी सकारात्मक बदलाव हुए उसमें महिला आंदोलन की बड़ी भूमिका रही है। लेकिन आज के समय में दहेज को समाज से मौन सहमति मिल चुकी है। दहेज ने नव उदारवाद के इस दौर में स्टेट्स सिंबल का रूप ले लिया है।

महिला आंदोलन के दबाव में 1980 के दशक में बलात्कार संबंधी कानूनों में भी कई सारे बदलाव किए गए। 1980 में महाराष्ट्र की आदिवासी लड़की मथुरा के साथ थाने में दो पुलिस वालों ने बलात्कार किया था। हाईकोर्ट ने उन्हें मुजरिम माना, लेकिन सर्वोच्च न्यायलय ने हाईकोर्ट के इस निर्णय को पलट दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कारी पुलिस वालों को सिर्फ इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि मथुरा यह साबित नहीं कर पाई कि उसमें उसकी रजामंदी नहीं थी। इस घटना के बाद देश के कुछ जाने माने वकीलों ने सर्वोच्च न्यायलय को पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज किया। इस पत्र की प्रतिक्रियास्वरूप सारे देश में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ विरोध व धरने प्रदर्शन हुए और अंततः बलात्कार कानून में कुछ संशोधन किए गए। मथुरा की घटना के लगभग तीन दशकों के बाद 16 दिसंबर, 2012 ई. को दिल्ली में निर्भया के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना होती है। इस घटना के खिलाफ पूरे देश भर में विरोध प्रदर्शन होते हैं। दबाव में आकर सरकार जस्टिस वर्मा आयोग का गठन करती है। जस्टिस वर्मा के द्वारा भी बलात्कार से संबंधित कानूनों को और सख्त कर दिया जाता है, लेकिन इन कानूनों के लागू हो जाने के बाद भी स्त्रियों के ऊपर बढ़ती यौन हिंसा की घटनाओं में और इजाफा ही हो रहा है। जनवरी 2018 में कश्मीर की एक आठ साल की लड़की आसिफा के बलात्कार की घटना ने एक बार फिर से पूरे मुल्क को शर्मसार कर दिया। इस घटना का सबसे शर्मनाक पहलू यह है कि पहली बार बलात्कार के आरोपियों को बचाने के लिए धरने प्रदर्शन आयोजित किए गए हैं।

हाल ही में जारी सरकारी आँकड़ों के मुताबिक स्त्रियों के खिलाफ होने वाली यौन हिंसा के 94 फीसदी मामलों में आरोपी महिला के परिचित ही होते हैं। इन घटनाओं की बढ़ती संख्या यह भी बताती है कि सिर्फ कानून के सहारे इस हिंसा को नहीं रोका जा सकता है। इस हिंसा के पीछे के सामाजिक, आर्थिक व जातिगत कारकों को जब तक हल नहीं किया जाता, तब तक यह हिंसा नहीं थमेगी।

1990 के बाद भारत में शुरू हुई नव उदारवाद की नीतियों ने समाज के सभी तबकों को अलग-अलग तरह से प्रभावित किया है। स्त्रियों के बड़े तबके पर इस प्रक्रिया का नकारात्मक असर दिखाई

पड़ता है। अगले अध्याय में विस्तार के साथ वैश्वीकरण के स्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव पर बात की जाएगी।

4.1.5. वैश्वीकरण और स्त्री

वैश्वीकरण की नीतियों के संदर्भ में हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि भारत एक विकासशील देश है और काफी समय तक औपनिवेशिक हुकूमत का हिस्सा रहा है। इसके साथ-साथ मानव विकास सूचकांक, जेंडर सूचकांक और ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भी भारत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश में जहाँ आज भी अर्द्धसामंती मूल्यों की जड़ें बहुत मजबूत हैं, वहाँ पर इन नीतियों का क्या असर पड़ेगा यह समझना बहुत मुश्किल नहीं है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत में कल्याणकारी राज्य की भूमिका को काफी सीमित किया है। इन नीतियों की वजह से ही शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजों को भी बाजार के हवाले किया जा रहा है। इन सुविधाओं के निजीकरण ने हाशिएकृत तबकों तक इनकी पहुँच को मुश्किल बना दिया है।

प्रभा खेतान कहती हैं कि "जब मैं 'भारतीय स्त्रियों' जैसे संबोधन को प्रयुक्त करती हूँ तो उसमें लाखों स्त्रियाँ शामिल होते हुए भी कुछ स्त्रियाँ शामिल नहीं हो पाती, क्योंकि वे चुनाव करने में असमर्थ हैं और गरीबी की सीमा रेखा के नीचे हैं। भूमंडलीय समाज में मुक्ति की कामना केवल वही स्त्री करने में समर्थ है, जो गरीबी की सीमा रेखा के ऊपर है।

भारत में पिछले पच्चीस सालों में सरकार की नीतियों ने स्त्रियों के एक तबके को आधुनिक शिक्षा से लैस किया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्त्रियों के एक छोटे से तबके के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों, आईटी कंपनियों व काल सेंटर के दरवाजे खोले हैं। इस प्रक्रिया ने इस तबके की स्त्रियों के लिए बाजार के रास्ते सुगम किए हैं, लेकिन इसके साथ-साथ आज भी स्त्रियों की बड़ी आबादी पर श्रम के लैंगिक विभाजन का असर साफ-साफ दिखाई पड़ता है।

इसके साथ-साथ स्त्रियों की बड़ी आबादी आज भी अनौपचारिक क्षेत्र में ही काम करने के लिए विवश है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली स्त्रियाँ लगभग 96 फीसदी के आस-पास हैं। इनके अधिकतर काम अकुशल श्रेणी में रखे जाते हैं। यहाँ पर काम के घंटे तय नहीं होते, मजदूरी तय नहीं होती व इसके साथ किसी भी तरह के श्रम कानूनों का पालन नहीं किया जाता है। किसी भी समय निकाले जाने का भय और आय का कोई और जरिया न होने की वजह से वह कम वेतन पर भी काम करने के लिए मजबूर होती हैं। अर्थव्यवस्था का यह अनौपचारिकीकरण शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में देखा जा सकता है। निजीकरण की इस प्रक्रिया ने श्रम के अनौपचारिकरण को और अधिक बढ़ाया है। लगातार सार्वजनिक इकाइयों को बेचा जा रहा है या उनका विनिवेश किया जा रहा है। सार्वजनिक इकाइयों के बंद होने से भी रोजगार के अवसर कम हुए हैं। निजीकरण का सबसे नकारात्मक असर शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों पर पड़ रहा है। शिक्षा के निजीकरण ने निम्न मध्यम परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा से दूर कर दिया है। इसी तरह से स्त्रियों का एक बड़ा हिस्सा आज भी उचित स्वास्थ्य सुविधाओं से दूर है। गोपा जोशी लिखती हैं कि ''महिला स्वास्थ्य में एक बहुत बड़ी बाधा अधिकतर स्त्रियों को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार नहीं मिलना भी है। हाल ही में अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान की तरफ से जारी रपट के अनुसार भारत भुखमरी के मामले में पाकिस्तान और श्रीलंका से भी आगे है। यहाँ पर तकरीबन 45 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार हैं''।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उपभोक्तावाद को भी बहुत बढ़ावा दिया है। इस बाजार आधारित उपभोक्तावाद ने समाज के हर हिस्से को अपनी चपेट में ले लिया है। समाज का कोई भी क्षेत्र इससे

अछूता नहीं रह गया है। इस उपभोक्तावाद ने स्त्रियों के खिलाफ होने वाली एक नई तरह की हिंसा को जन्म दिया है, जिसे हम भ्रूण हत्या के नाम से भी जानते हैं। तकनीकों के माध्यम से भ्रूण का लिंग परिक्षण कर महिला भ्रूण की हत्या कर दी जाती है। इस भ्रूण हत्या में वैश्वीकरण से उपजी तकनीक ने भी काफी मदद पहुँचाई है। हालाँकि इस तकनीक से पहले भी नवजात लड़कियों की हत्या का इतिहास काफी भयावह रहा है। यह सुनने में बड़ा ही अजीबो-गरीब लग सकता है कि किस तरह से आज के समय में मध्ययुगीन बर्बरता आधुनिकता का सहारा लेकर आगे बढ़ रही है। इसे इस तरह से भी कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण पर आधारित समाज ने पितृसत्तात्मक मूल्यों को कमजोर करने की बजाय और मजबूत किया है।

4.1.6. सारांश

आजादी के सत्तर साल बाद भी भारत की गिनती तीसरी दुनिया के उन विकासशील देशों में की जाती है, जहाँ बड़े पैमाने पर बेरोजगारी, गरीबी, भूख, जातिगत असमानता व लैंगिक असमानता की समस्याएँ कम नहीं हुई हैं। विकास की मुख्यधारा से आज भी देश की बड़ी आबादी कटी हुई है। उत्पादन वृद्धि पर केंद्रित विकास ने समाज में गहराई से जड़ जमाई पितृसत्तात्मक जड़ों को बहुत नुकसान नहीं पहुँचाया है। इसलिए पितृसत्तात्मक मूल्यों का प्रतिबिंब हमें स्त्रियों पर बढ़ती यौन हिंसा, भ्रूण हत्या, दहेज, सम्मान के नाम पर की जाने वाली हिंसा, घेरलू हिंसा आदि में दिखाई पड़ता है। स्त्रियों के खिलाफ होने वाली इन सभी प्रकार की हिंसाओं के खिलाफ सख्त कानून बन चुके हैं, लेकिन ये रुकने का नाम नहीं ले रही हैं। यह बात इस बात की ओर भी इशारा करती है कि आजादी के इन सत्तर बरसों में समाज का जो लोकतांत्रिकीकरण होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। समाज के रूपांतरण में कानून मददगार हो सकता है, लेकिन सिर्फ कानून बन जाने से समस्या का समाधान संभव नहीं। इसलिए आज के समय की जरूरत है कि समाज को यह एहसास दिलाया जाए कि स्त्री और पुरुष में सिर्फ जैविक अंतर है। इसके अलावा जो भी फर्क हैं वह समाज द्वारा गढ़े गए हैं।

4.1.7. बोध प्रश्न

1. क्या भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है? स्पष्ट कीजिए।
2. आजादी के बाद स्त्रियों की स्थिति पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. स्त्रियों पर बढ़ती हिंसा की रोकथाम के लिए किए गए सरकारी प्रयासों के बारे में बताइए।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्त्रियों को किस तरह से प्रभावित किया है स्पष्ट कीजिए।
5. वैश्वीकरण ने किस तरह से उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया है। स्पष्ट कीजिए।

4.1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

- जोशी, गोपा, भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011
- साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता (संपा), नारीवादी राजनीति- संघर्ष एवं मुद्दे हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
- देसाई निरा, ठक्कर उषा, भारतीय समाज में महिलाएँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2009

- कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
- खेतान, प्रभा, भूमंडलीकरणब्रांड संस्कृति और राष्ट्र सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

4.1.9. उपयोगी ग्रंथ सूची

- के.पी, प्रमिला, स्त्री अध्ययन की बुनियाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
- क्लार्क, एलिस डब्ल्यू, अनमोल बेटियां- पहली पीढ़ी की पेशेवर महिलाएँ, सेज भाषा, नई दिल्ली, 2017
- चक्रवर्ती उमा, जाति समाज में पितृसत्ता, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2011
- मिल, जॉन स्टुअर्ट, स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
- कारात,बृंदा, भारतीय नारी : संघर्ष और मुक्ति, ग्रंथ शिल्पी, 2008
- उपाध्याय रमेश, उपाध्याय संज्ञा (संपा), श्रम काभूमंडलीकरण, शब्द संधान, नई दिल्ली, 2004
- मेहता, जया, भूमंडलीकरण में स्त्रियों का श्रम, संदर्भ दस्तावेजी केंद्र, इंदौर, 2004

खंड – 4 समकालीन इतिहास लेखन एवं स्त्री
इकाई – 2 स्वायत्त महिला आंदोलन

इकाई रूपरेखा

4.2.1. उद्देश्य
4.2.2. प्रस्तावना
4.2.3. स्वायत्त महिला आंदोलन
4.2.3.1. परिचय
4.2.3.2. उद्भव एवं विकास
4.2.3.3. स्त्री अध्ययन एवं महिला आंदोलन में अंतर्संबंध
4.2.4. प्रमुख स्वायत्त महिला आंदोलन एवं उनका प्रभाव
4.2.4.1. 1970 से 1990 ई. तक स्वायत्त महिला आंदोलन
4.2.4.2. 1990 ई. से अब तक स्वायत्त महिला आंदोलन
4.2.5. स्वायत्त महिला आंदोलन की सीमाएँ एवं वर्तमान परिदृश्य
4.2.5.1. दलित स्त्रियों के मुद्दों की अनदेखी और उनकी स्वीकार्यता
4.2.5.2. महिला आंदोलन का संस्थानीकरण व उसका प्रभाव
4.2.5.3. वर्तमान परिदृश्य
4.2.6. सारांश
4.2.7. शब्दावली
4.2.8. बोध प्रश्न
4.2.9. संदर्भ ग्रंथ सूची
4.2.10. उपयोगी ग्रंथ सूची

4.2.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगें-

1. स्वायत्त महिला आंदोलन और इतर महिला आंदोलन में भिन्नता
2. स्वायत्त महिला आंदोलन का उद्भव एवं विकास
3. महत्वपूर्ण स्वायत्त महिला आंदोलन के विभिन्न मुद्दे
4. स्वायत्त महिला आंदोलन द्वारा समाजव्यापी महत्वपूर्ण बदलाव
5. महिला आंदोलन एवं स्त्री अध्ययन विषय के अंतर्संबंध
6. स्वायत्त महिला आंदोलन की सीमाएँ और उनके महत्वपूर्ण विचार
7. वर्तमान में स्वायत्त महिला आंदोलन की स्थिति

4.2.2. प्रस्तावना

महिला आंदोलन का विश्व की महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक सुधार लाने में बहुत अहम योगदान है। महिलाओं की शिक्षा, संपत्ति, कानूनी सुरक्षा से लेकर शरीर पर अधिकार, हिंसा से मुक्ति, महिलाओं के श्रम के प्रति सम्मान, श्रमिक के रूप में स्वीकार्यता, बराबरी का वेतन, पर्यावरण सुरक्षा, युद्धों का विरोध, भूमंडलीकरण का विरोध आदि ऐसे तमाम स्थानीय एवं अंतराष्ट्रीय मुद्दे हैं, जिस पर महिला आंदोलनकारियों ने अपनी आवाज बुलंद की है। अलग-अलग समय में महिलाएँ विभिन्न मुद्दों पर एकत्र हुईं और अपनी माँगों को सामने रखा, लोगों को जोड़ा और नीति निर्माताओं तक अपनी आवाज पहुँचाकर स्थितियों में बेहतर बदलाव को संभव बनाया। भारत में महिला आंदोलन का उद्भव आजादी के आंदोलन से माना जाता है, जब महात्मा गांधी के आह्वान पर देश भर की महिलाएँ अपने घरों से निकल कर आजादी की आंदोलन में शामिल हो गईं थीं। विदेशी कपड़ों की होली जलाना, अंग्रेज सरकार के विरोध में रैलियों में सहभागिता से लेकर आयोजन, भाषण देने आदि में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ महिलाओं द्वारा निभाई गईं। महिलाओं के आंदोलन में सहभागिता को बौद्ध काल से भी जोड़ कर देखा जा रहा है, जब महिलाओं ने प्रजापति गौतमी के मार्गदर्शन में संघ में सहभागिता हेतु गौतम बुद्ध के समक्ष अपनी माँग रखी और संघ में भिक्षुणी का दर्जा प्राप्त किया। हम कह सकते हैं कि पित्रसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ महिलाओं ने अलग-अलग स्तर पर अपना प्रतिरोध दर्ज किया है, पर एक निरंतरता में आंदोलन के रूप में हम उन्हें आजादी की लड़ाई से ही देख पाते हैं। यहाँ हमें यह जानना आवश्यक हैं कि प्रारंभ में महिला आंदोलन अलग-अलग राजनैतिक विचाराधाराओं के भीतर ही सक्रिय रहा। स्वतंत्र रूप से महिलाओं के आंदोलन का प्रारंभ 70 के दशक से हमें देखने को मिलता है, जिसमें तमाम प्रगतिशील विचारधाराओं से संबंध रखते हुए भी महिलाओं ने अलग आंदोलन को विकसित किया और विभिन्न विचारधाराओं में व्याप्त पितृसत्ता को चिह्नित किया।

4.2.3. स्वायत्त महिला आंदोलन

4.2.03.1. परिचय

स्वायत्त महिला आंदोलन महिलाओं के उन आंदोलनों को कहा जाता है, जो किसी भी राजनैतिक पार्टी से स्वायत्त होते हैं और वे महिलाओं के मुद्दों को प्राथमिकता में रखते हुए अपने आंदोलनों की रणनीति तय करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं होती। ये आंदोलन प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक रहे हैं। स्वायत्त महिला आंदोलन के अगुआ मुख्यतः प्रगतिशील, वामपंथी पार्टियों से अलग हुई वे महिलाएँ थीं, जो पार्टी की राजनैतिक गतिविधियों से जुड़ाव रखती थीं, किंतु वे इन पार्टियों के भीतर व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवहार एवं कार्यशैली से बेहद आहत थीं। इन संगठनों में माना जाता था कि महिलाओं की समस्याओं को अलग से उठाने की या चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। वर्गगत असमानता दूर होते ही महिलाओं के साथ होने वाला भेदभावपूर्ण व्यवहार भी स्वयं ही समाप्त हो जाएगा। उनका यह भी मानना था कि महिलाओं के मुद्दे पर संगठन के भीतर बात करना संगठन को कमजोर कर सकता है। इन संगठनों में शामिल महिलाओं ने इस पर सवाल खड़े किए तथा संगठन के कार्यकर्ताओं के व्यवहारों को भी कटघरे में लाया। बहुत से कार्यकर्ता ऐसे भी थे, जो दुनिया में समानता की बातें तो पुरजोर तरीके से करते थे, परंतु अपने घर पहुँचते ही वे अपनी पत्नियों के साथ छोटी बड़ी बातों पर मार-पीट किया करते थे। इसके साथ ही महिलाएँ आंदोलन की पारंपरिक शैली से भी सहमत नहीं थीं, जहाँ एक व्यक्ति ही नेता हो और उसके नेतृत्व में ही सारे कार्यकर्ता

चलें, जहाँ समूह के रूप में मुद्दे निर्धारित करने की संभावनाएँ कम हों। वे ज्यादा विकेंद्रीकृत संगठन पर विचारकर कर रही थीं, जिसमें किसी नेता के बगैर, सामूहिक रूप से फैसले लिए जा सकें और जिम्मेदारियों को बारी-बारी से लोगों को दिया जाए। सामूहिक निर्णय संगठन में महिलाओं की नेतृत्व में भूमिका, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के सवाल, श्रमिक के रूप में महिलाओं के पुरुषों से समान वेतन अधिकार, अन्य सुरक्षाओं आदि पर जब महिला कार्यकर्ताओं को अपने सवालों के जवाब संगठन के भीतर नहीं मिले, तो उन्होंने अपने सवालों के जवाब प्राप्त करने और समस्याओं के समाधान हेतु महिलाओं ने अपने संगठन बनाए। इन संगठनों ने महिलाओं को केंद्र में रखकर उनकी समस्याओं पर विचार किया और अपनी माँगों को लेकर वे सड़कों पर उतरीं। ये आंदोलन किसी राजनैतिक संगठन से सीधे तौर पर नहीं जुड़े थे, अतः इन्हें स्वायत्त महिला संगठन कहा गया। 70 के दशक में इन आंदोलनों ने महिलाओं के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने और स्त्रियों की स्थिति को केंद्र में रखकर उस पर विचार करने की परंपरा को प्रारंभ करने में आधारभूत भूमिका निभाई।

इन संगठनों ने सर्वप्रथम महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का मुद्दा उठाया और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को इसके प्रमुख कारण के रूप में चिह्नित भी किया। इससे पहले के आंदोलनों में महिलाओं के दोयम दर्जे की बात तो की गई, पर उसका समाधान महिलाओं को बेहतर शिक्षा, रोजगार देने और विकास में महिलाओं को शामिल करने तक ही था। यह कभी नहीं महसूस किया गया कि महिलाओं की दोयम दर्जे की स्थिति में संरचनागत भेदभाव एक बड़ा कारण है, जो पितृसता के कारण पैदा और विकसित किया जाता रहा है।

4.2.3.2. उद्भव एवं विकास

स्वायत्त महिला आंदोलन का उद्भव 70 के दशक में महिलाओं द्वारा किया गया। आज़ादी के आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने महिलाओं के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएँ बनाने की शुरुआत की, जो महिलाओं को लाभ दे सकें। 1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड का गठन किया गया, जिसके माध्यम से ऐसे प्रयास प्रारंभ किए गए, जो महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, पोषण, परिवार नियोजन आदि से संबंधित समस्याओं का निदान कर सके। इन योजनाओं हेतु सरकार ने अनुदान की भी व्यवस्था की। इस हेतु ऐसी महिलाओं को भी जोड़ा गया, जो महिलाओं के मुद्दों पर सक्रियता से काम करने में रुचि रखती थीं। नर्सरी स्कूलों के लिए शिक्षिका का प्रशिक्षण एवं भर्ती, लघु उद्योग धंधों में उनकी भागीदारी आदि के माध्यम से उनके आर्थिक विकास की राहें भी सुदृढ करने का प्रयास किया जा रहा था। शहरों में शिक्षा की बेहतर सुविधा और औद्योगिक क्रांति ने शहरी महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के बेहतर अवसर उपलब्ध कराएँ। महिलाएँ घरेलू कामकाज के साथ-साथ अपनी आर्थिक जिम्मेदारियों का भी निर्वहन करने लगीं। महिलाओं के भीतर यह बात उतरने लगी थी कि इन प्रयासों से वे घर और रोजगार दोनों को संभाल सकती हैं और इससे उनकी स्थिति दिनोंदिन बेहतर होती जाएगी। उनके सामने स्त्रियों के साथ होने वाले संरचनात्मक भेदभाव की समझ बहुत स्पष्ट नहीं थी। यह मोहभंग 60 के बाद टूटने लगा। इस दौर में आर्थिक अस्थिरता का दौर प्रारंभ हो गया। किसानों के बीच जमीन के अधिकार, जमींदारों द्वारा किया जाने वाला शोषण, फसल का सही मूल्य न मिलने, कृषि के गिरते हालात, महंगाई में वृद्धि जैसे हालातों के कारण बेचैनी बढने लगी थीं। उनके संघर्ष भी प्रारंभ हो गए थे जिसे कई संगठनों ने समर्थन भी दिया। किसानों के संघर्ष और उन्हें समर्थन देने वाले संगठनों को समाप्त करने के लिए राज्य सरकार ने पुरजोर दमनकारी कोशिशें कीं। इससे कई संगठन भूमिगत भी हो गए। बढ़ी महंगाई से सारी जनता त्रस्त थी। इसी दौरान संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भारत

सरकार को भारतीय स्त्रियों की दशा का अध्ययन करने का कार्य सौंपा। इस हेतु **कमिटी ऑन स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया** का गठन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. फूलरेणू गुहा द्वारा की गई। इस कमेटी ने देश भर की महिलाओं का अध्ययन करके 1974 ई. में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इस रिपोर्ट का नाम **टूवार्ड्स इक्वैलिटी (समानता की ओर)** था। इस रिपोर्ट में महिलाओं की शैक्षिक, सामाजिक, रोजगार, स्वास्थ्यगत आदि स्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। रिपोर्ट में बालिका शिशु दर में बड़ी गिरावट की जानकारी मिली। मातृ मृत्युदर में वृद्धि, विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं की संख्या में गिरावट, संगठित क्षेत्रों के रोजगार में महिलाओं की बेहद कम संख्या और असंगठित क्षेत्रों में कड़ी मेहनत वाले कार्यों में महिलाओं की बढी संख्या महिलाओं के श्रम और प्रजनन के शोषणकारी हालातों को बता रही थी। रिपोर्ट ने सरकारी प्रयासों की वास्तविकता को सामने लाकर रख दिया, जिससे पता चला कि स्त्री पुरुष असमानता कम नहीं हुई है, बल्कि बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। इस रिपोर्ट पर तमाम महिलाओं जिनमें शिक्षक, वकील, पत्रकार, सामाजिक संगठनों की कार्यकर्ता और विद्यार्थी शामिल थे, ने गम्भीर चर्चा प्रारंभ की। जहाँ पितृसत्ता के सामाजिक ढाँचे और संरचना को बहस के केंद्र में लाया गया, जिसके कारण महिलाएँ लगातार हाशियाकरण का शिकार हो रही हैं, वहीं राज्य सत्ता के पितृसत्तात्मक चरित्र पर भी उंगली उठी। वामपंथी महिला कार्यकर्ताओं ने इसे मुद्दे को भी पुरजोर तरीके से उठाया कि उनके अपने राजनैतिक संगठन के भीतर भी महिलाओं के मुद्दों को कभी केंद्रीयता प्रदान नहीं की जाती, बल्कि वे पार्टी की एकता और अखंडता बचाने के नाम पर हमेशा हाशिए पर रखे जाते हैं। अतः महिलाओं के मुद्दों को केंद्र में रखने के लिए महिलाओं के स्वायत्त आंदोलन का उद्भव हुआ। इस दौर में जो स्त्री संगठन बने वे आज़ादी से पहले की तुलना में भिन्न थे। ये संगठन राष्ट्रीय स्तर के नहीं थे, बल्कि स्थानीय स्तर के थे और महिलाओं से संबंधित ठोस मुद्दों को लेकर सक्रिय थे। माओवादी स्त्रियों के संगठन 'प्रगतिशील स्त्री संगठन' के निर्माण के साथ स्त्रियों की स्थिति और उत्पीड़न के विश्लेषण की शुरुआत हो गईं संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1975-1985 ई. तक को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया। 8 मार्च मनाने की शुरुआत के साथ आंदोलन का बिगुल बजा। इस दौरान महिलाओं के मुद्दों पर काम और विचार करने के लिए गैर सरकारी संगठनों को भी अनुदान मिलना प्रारंभ हो गया और उन्होंने भी महिलाओं से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर सक्रियता से काम करना शुरू कर दिया। आपातकाल के बाद स्वायत्त महिला आंदोलनों ने कमान मजबूती से संभाली और बलात्कार, दहेज हत्या, सती प्रथा, समान नागरिक संहिता जैसे मुद्दों पर लामबंदी की। उनके प्रयासों ने सामाजिक और कानूनी स्तर पर महिलाओं के हक में बड़े बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4.2.3.3. स्त्री अध्ययन एवं महिला आंदोलन में अंतर्संबंध

एक विषय के रूप में स्त्री अध्ययन का बहुत गहरा संबंध स्वायत्त महिला आंदोलन से है। स्त्री अध्ययन को महिला आंदोलन की अकादमिक भुजा कहा गया। इसे एक ऐसे औजार के रूप में विकसित करने की कोशिश की गई है, जो स्त्री आंदोलन को अकादमिक संस्थानों में मजबूती दे, साथ ही महिलाओं की अधीनता की सैद्धांतिकी को स्पष्ट कर पाए। हमारी पूर्वजों के जो प्रयास महिलाओं की स्थितियों में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए हुए हैं, उनका इतिहास और उनके प्रयास नई पीढी तक पहुँचे। मारिया मीज ने स्त्रीवादी शोध प्रविधि के लिए कहा था कि यदि कोई स्त्री अध्ययन में शोध या अध्ययन करते हुए महिला आंदोलन से दूर या कट कर रहता है, तो वह मुख्यतः अपने विषय के साथ एक प्रकार की गद्दारी कर रहा है। स्त्री अध्ययन विषय के माध्यम से अकादमिक क्षेत्रों में व्याप्त पितृसत्ता पर निशाना साधा गया था, जो कि सिद्धांतों में गहराई से व्याप्त है और जो संरचनात्मक शोषण को सहज

बना देती है। स्त्री अध्ययन विषय के साथ-साथ स्त्री अध्ययन हेतु शोध संस्थानों का निर्माण भी महिला आंदोलन की ही रणनीति थी, ताकि आंदोलन का प्रभाव व्यापक हो सके।

4.2.4. प्रमुख स्वायत्त महिला आंदोलन एवं उनका प्रभाव

स्वायत्त महिला आंदोलन की शुरुआत 70 के दशक के मध्य से ही हम देख सकते हैं। स्वायत्त महिला आंदोलन के उद्भव और विकास हेतु 70 के दशक के उत्तरार्ध के साथ हमें दो दशकों को समझना होगा। 70 का दशक स्वायत्त महिला आंदोलन की पृष्ठभूमि बनाने में महत्वपूर्ण है। जोशीमठ में 74-75 में हुए पर्यावरण की सुरक्षा हेतु पहाड़ की महिलाओं के एकजुट प्रयास के फलस्वरूप हुए चिपको आंदोलन को स्वायत्त महिला आंदोलन के पहले प्रयास के रूप में देख सकते हैं, जिसके कारण पहाड़ों के वन, व्यापारियों के हाथों से बच सके। इस आंदोलन ने यह भी स्पष्ट किया कि महिलाओं के मुद्दे सिर्फ महिला केंद्रित ही नहीं है, बल्कि उस हर बात से उनका संबंध है, जो महिलाओं के जीवन को प्रभावित करती है। इस आंदोलन ने पर्यावरण सुरक्षा के साथ-साथ पुरुषों की शराब पीने की लत को भी आंदोलन का मुद्दा बनाया और उस इलाके में शराब बंद कराई। 80 के दशक में जहाँ स्वायत्त महिला आंदोलन ने अपनी गति पकड़ी, वहीं 90 के दशक में इन आंदोलनों का सामना नई और बहुत अलग स्थितियों से हुआ। 80 के दशक में स्वायत्त महिला आंदोलन का उद्भव महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा के माध्यम से हुआ। इनमें अधिकांश शिक्षित शहरी कामकाजी या पढने वाली महिलाएँ शामिल थीं। महिलाओं को एक सूत्र में बाँधने वाले मुद्दे हिंसा को उन्होंने केंद्र में रखा, जिसमें बलात्कार, दहेज हत्या, सती प्रथा और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के अतिरिक्त पर्यावरण की सुरक्षा, समान नागरिक संहिता जैसे तमाम मुद्दों को केंद्र में लाकर आंदोलनों की शुरुआत की गई जबकि 90 के दशक में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, पारिवारिक दायरे से निकलकर समाज और राजनीति तक पहुँच गयी थी। निजी क्षेत्र में घरेलू हिंसा के साथ ही सांप्रदायिक हिंसा, धर्मांधता का महिलाओं पर प्रभाव, जातिगत हिंसा, भूमंडलीकरण का विरोध, यौन अधिकारों की सुरक्षा, संपत्ति में बराबरी का अधिकार इत्यादि महत्वपूर्ण मुद्दे रहे। इन आंदोलनों में महिलाओं के एक बड़े वर्ग ने साथ दिया। कुछ आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

4.2.4.1. 1970 से 1990 ई. तक स्वायत्त महिला आंदोलन

80 के दशक में स्वायत्त महिला आंदोलन का मजबूत प्रभाव रहा है। इसका प्रारंभ प्रगतिशील महिला संगठन द्वारा 1975 में हैदराबाद में दहेज उत्पीड़न के विरुद्ध आंदोलन के माध्यम से होता है। आपातकाल के दौरान संगठन और उनके कार्यकर्ता भूमिगत हो गए। आपातकाल के बाद महिला आंदोलन सक्रिय हुआ और पुनः दहेज हत्या के विरोध में आंदोलन तेज हुआ। इस बार उसका केंद्र दिल्ली था। दिल्ली में दहेज हत्या की घटनाओं की बाढ-सी आ गयी थी। ढेरों मासूम लड़कियाँ दहेज की माँग पूरी न करने के कारण स्टोव से जला दी गई। **स्त्री संघर्ष मंच** के अंतर्गत जहाँ, कई कॉलेज के विद्यार्थियों और शिक्षकों ने दहेज हिंसा के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया, वहीं दिल्ली के संगठन **महिला दक्षता समिति** ने दहेज हत्या के खिलाफ लोगों को एकत्र किया और दोषियों का सामाजिक बहिष्कार करने की मुहिम चलाई। इस हेतु कई दोषियों के घर के सामने बड़े धरने दिए गए। विद्यार्थियों और संगठन के कार्यकर्ताओं के सहयोग से नुक्कड़ नाटक सैंकड़ों स्थानों पर खेले गए। इसमें **ओम स्वाहा** और **मुलगी झाली आहे** सबसे प्रसिद्ध हैं। इन सभी के प्रभाव से दहेज हत्या हेतु कानून में भी बदलाव लाया गया। कानूनी बदलाव में बलात्कार विरोधी आंदोलन का भी बड़ा योगदान रहा है। चंद्रपुर की मथुरा, बागपत की माया त्यागी और हैदराबाद की रमीज़ा बी के साथ पुलिस वालों द्वारा किए गए बलात्कार ने

देश भर की महिलाओं को फिर से इकट्ठा किया और पुलिस कस्टडी में हुए बलात्कार के विरोध में आंदोलन तेज हुआ। मथुरा बलात्कार केस में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से महिलाओं के एक बड़े समूह को बहुत आपत्ति हुईं जब मामला कोर्ट में गया तो अपराधियों को यह कहकर छोड़ दिया गया कि चूँकि मथुरा का संबंध विवाह से पहले से ही किसी पुरुष मित्र के साथ बन चुका था, साथ ही उसके शरीर पर चोटों के निशान नहीं थे, अतः यह संबंध बलात्कार नहीं कहा जाएगा, बल्कि सहमति से बना संबंध है। उस समय के जाने माने वकील उपेंद्र बक्शी, लोतिका सरकार आदि ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को एक कड़ा खुला पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी आपत्ति दर्ज करते हुए लिखा कि किसी भी स्त्री के विवाह पूर्व यौन संबंध इस बात की छूट नहीं दे देते कि कोई भी उसके साथ यौन हिंसा करने को आज़ाद है। दूसरी बात शरीर पर चोटों के निशानों का अभाव पीड़िता को डराने-धमकाने, उसके परिवार को हानि पहुँचाने आदि के धमकी के कारण भी हो सकता है। उन्होंने यह भी लिखा कि आधी रात में पुलिस स्टेशन की लाईट बंद करके मथुरा को अंदर क्यों रोके रखा गया?, जबकि उसके परिजनों को पुलिस स्टेशन के बाहर ही रोक दिया गया। यह पत्र 16 सितंबर, 1979 को लिखा गया था। इस पत्र के बाद महिला आंदोलनकारियों ने सक्रिय होकर बलात्कार के विरुद्ध मुहिम छेड़ दी और कानून के ढीले ढाले रवैये को कटघरे में खड़ा किया, जिसके कारण पीड़िता कोर्ट में अपमान सहती है और आरोपी छूट जाते हैं। यह आंदोलन काफी लंबे समय चला। इस आंदोलन के बाद बलात्कार की परिभाषा और कानून और सजा में कई अहम बदलाव किए गए। मुम्बई का फोरम अगेंस्ट रेप ने मथुरा की सहमति लेकर इस आंदोलन को सक्रियता से उठाया यह आंदोलन महिला आंदोलन के इतिहास में प्रमुखता से दर्ज किया गया।

इस प्रकार 80 के दशक में कई बड़े आंदोलन महिलाओं ने चलाए, जिसमें शाहबानो केस और रूपकुंवर केस भी महत्वपूर्ण रहे। ये दोनों आंदोलन दो दृष्टियों से खास थे। एक तो रूढिवादी महिलाएँ इस आंदोलनों के विरोध में भी उतरीं और उन्होंने महिला होने से ज्यादा अपने धर्म और समुदाय के सदस्य के रूप में अपनी भूमिका को ज्यादा तवज्जोह दी। दूसरी इन मुद्दों के माध्यम से महिला आंदोलन को ये समझ में आने लगा कि आगे आने वाले समय में उन्हें धर्मांधता और धार्मिक उन्माद जैसी बातों से लोहा लेना पड़ेगा। 1985 ई. के पर्सनल लॉ के मुद्दे के अंतर्गत 1978 ई. के शाहबानो केस में 75 वर्षीय मुस्लिम महिला शाहबानो को उसके वकील पति द्वारा तलाक दे दिया गया और मेहर के नाम पर न्यूनतम राशि देकर उससे किनारा कर लिया। इस उम्र में शाहबानो के सामने जिंदा रहने का संकट खड़ा हो गया। अतः उसने धारा-125 के तहत अपने पति से गुजारे भत्ते की माँग की। पति का कहना था कि उसने इस्लामिक रीतिरिवाज़ से शादी की है। अतः मेहर देने के बाद वह किसी भी तरह के गुजारे भत्ते की जिम्मेदारी से मुक्त है। शाहबानो की हालत को देखते हुए समान नागरिक संहिता का मुद्दा खड़ा हुआ, क्योंकि महिला आंदोलनकारियों का मानना था कि धर्म महिलाओं को पुरुषों की तुलना में बहुत ही सीमित संसाधन मुहैया कराता हैं, जिससे महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में काफी दयनीय रहती है। समान नागरिक संहिता के मुद्दे को महिला आंदोलन ने 1985 ई. में काफी तेज किया, ताकि देश की हर महिला को समानता और मानवीय अधिकार, संविधान और न्यायिक व्यवस्था द्वारा प्राप्त हो सके, लेकिन इस केस के फैसले के माध्यम से महिला अधिकार को मुस्लिम समुदाय और मुस्लिम पुरुषों पर एक बड़े हमले के एक प्रतीक के रूप में बदल दिया गया। दरअसल उसी समय चल रहे बाबरी मस्जिद मुद्दे के साथ शाहबानो मुकदमे को एक साथ जोड़ कर इसे भारतीय मुसलमानों पर हिंदू सांप्रदायिकता के जबरदस्त हमले के रूप में देखा गया। तमाम मुस्लिम उलेमाओं ने इस पर फतवे जारी किए। इसकी व्याख्या उन्होंने इस्लाम खतरे

में है, कह कर की। मुस्लिम महिलाएँ भी अपने धर्म और उसके अधिकारों की सुरक्षा के लिए बोलना शुरू कर दीं, जो मुस्लिम नेता समान नागरिक संहिता की वकालत कर रहे थे, इस जुड़ाव के बाद उन्होंने भी अपने हाथ पीछे खींच लिए और महिला आंदोलन को भी समान नागरिक संहिता के परिणामों को ठीक से समझने हेतु इससे हाथ वापस लेने पड़े, क्योंकि समान नागरिक संहिता से बहुसंख्यकवाद के प्रभाव और अल्पसंख्यकों के हाशियाकरण से वे सहमत नहीं थीं क्योंकि बाबरी मस्जिद के मुद्दे के माध्यम से वे हिंदुत्व के बढते हुए उन्माद को भी देख रही थीं। वे किसी भी स्तर पर महिला आंदोलन को अल्पसंख्यकों के हाशियाकरण को बढाने वाली किसी भी मुहिम का हिस्सा नहीं बनने देना चाहती थीं। इस तरह समान नागरिक संहिता से हटकर उनका झुकाव निजी कानूनों में सुधार की तरफ हुआ।

इसी प्रकार देवराला की 21 वर्षीय स्नातक रूप कुँवर की केस और उस पर हुआ आंदोलन भी काफी चर्चित रहा। रूप कुँवर को उसके पति की मृत्यु के बाद जबरन सती कर दिया गया था। जब इसका विरोध महिला मंचों द्वारा किया गया और इस विरोध ने आंदोलन की शक्ल ले ली, तब परंपरा की रूढिवादी व्याख्या करने वाली दक्षिणपंथी महिलाओं ने भी इन महिलाओं के विरोध में आंदोलन प्रारंभ कर दिए। उनका कहना था कि एक हिंदू औरत के रूप में हमें अपनी मान्यताओं, परंपराओं और रीति-रिवाज़ मनाने का पूरा अधिकार है। उन्होंने प्रगतिशील महिला आंदोलन के नारे "हम भारत की नारी हैं, फूल नहीं चिंगारी हैं' को अपना कर इसे स्त्री के सती होने के पक्ष में इस्तेमाल किया। इस आंदोलन ने परंपरा और आधुनिकता के नाम पर बड़ी बहस खड़ी की। प्रगतिशील आंदोलनकारियों को पश्चिम के विचारों से प्रभावित महिलाएँ कहा गया, जिन्हें भारतीय संस्कृति की समझ नहीं है। इस प्रकार कई प्रकार के हमले महिला आंदोलनकारियों ने झेले।

हम देखते हैं कि 80 के पूर्वार्द्ध से ही ऐसे मुद्दे उठने लगे थे, जिन्हें महिला आंदोलन ने अपनाया और 80 के दशक में उस पर बड़े आंदोलन और बहसें खड़ी कीं। इन बहसों ने राजनीति, कानून, अकादमिक जगत, फिल्म, मीडिया, साहित्य सभी पर बड़ा प्रभाव डाला। इस पूरे दौर में ऐसे धारावाहिक, फिल्में, साहित्य रचे गए, जिन्होंने महिलाओं की आवाज को मुखर किया। महिलाओं के हित में कई महत्वपूर्ण कानून इसी दौर में बने। यह दौर स्वायत्त महिला आंदोलन वयस्क होने का भी रहा। आंदोलन के अतिरिक्त स्वायत्त संगठनों ने ऐसे केंद्रों की स्थापना की, जहाँ पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता, घर से निकाले जाने पर शरण और कुछ छोटे रोजगारों की मदद मिल पाए, ताकि परिवार से एकदम सड़क पर आ जाने के बाद उनकी स्थिति को थोड़ा संभाला जा सके। इन संगठनों ने लोगों में महिला पुरुष की समानता के लिए जागरुकता लाने के भी काफी प्रयास किए। इन संगठनों के नाम सहेली, सखि, आली, जागोरी जैसे रखे गए थे, जिससे महिलाओं के बीच आपसी मित्रता, बहनापे के साथ संघर्ष का सामना एक साथ करने का भी भाव जागृत हो सके।

4.2.04.2. 1990 ई. से अब तक स्वायत्त महिला आंदोलन

इस दौर में अगर महिला आंदोलन की बात करें, तो हमें एक लंबी फेहरिश्त महिलाओं के संघर्षों की कहानी मिलती है। इस दौर की इन तीनों प्रमुख समस्याओं भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकता और जातिगत उत्पीड़न पर महिला आंदोलन ने ध्यान केंद्रित किया है। भूमंडलीकरण और उसकी नीतियाँ महिला आंदोलन की आलोचना का प्रमुख केंद्र रही हैं। भूमंडलीकरण की नारीवादी आलोचना जहाँ जेंडर और विकास का राजनैतिक अर्थशास्त्र की सैद्धांतिकी के रूप में सामने आयी, वहीं इससे उपजी समस्याओं पर महिलाएँ सड़कों पर भी उतरीं। इस दौर की खासियत रही कि महिला आंदोलन ने अपना

दायरा अत्यंत विकसित करके **सारे मुद्दे महिलाओं के मुद्दे** का नारा दिया। इसके पीछे समस्याओं की संरचना व उसका आधार समझने का प्रयास है। विस्थापन विरोधी आंदोलन, बड़े बांध विरोधी आंदोलन, महिला श्रमिक संगठनों के काम की स्थितियों को लेकर आंदोलन काफी मजबूती से उभरे। जल, जंगल जमीन,पर्यावरण इत्यादि की विदेशी कंपनियों से सुरक्षा के लिए भी महिलाएँ एक जुट होकर सामने आईं।

भूमंडलीकरण से जुड़े हुए अन्य मुद्दों में एक महत्वपूर्ण मुद्दा स्वास्थ्यगत नीतियों को लेकर भी उठा, खासतौर पर स्त्री के शरीर पर स्त्री के अधिकार का। जनसंख्या नियंत्रण के लिए तमाम तरह की दवायें, इंजेक्शन और इंप्लान्ट करने वाले तरीकों को भारत भेजा गया, ये सारे तरीके स्त्रियों के लिए ही थे। इसमें क्विनक्रीन, डेपो प्रोवेरा और नार प्लाण्ट प्रमुख थे। इन सारे ही साधनों का पहले पशुओं पर कोई अध्ययन नहीं किया गया था। सीधे सीधे तृतीय देशों की महिलाओं पर सीधे इसका प्रयोग शुरू कर दिया। महिलाओं के शरीर पर जो खतरनाक प्रभाव पड़ रहे थे, उसकी कोई चर्चा नहीं थी। इनके प्रयोग से स्त्रियों की प्रजनन क्षमता भी खत्म हो रही थी। कैंसर के खतरों का भी भय था। साईड एफेक्ट्स की तो कोई गिनती ही न थी। ऐसी स्थिति में 27 से 30 अक्टूबर, 1998 ई. के बीच जब दिल्ली में 'सातवीं अतंरराष्ट्रीय प्रजनन प्रतिरक्षण विज्ञान कार्यकम' हो रही थी, तो विभिन्न वैज्ञानिक व अन्य लोगों द्वारा महिला विरोधी परियोजनाओं का विरोध करने के लिए महिला कार्यकर्ता वहाँ पहुँचे और उन्होंने स्त्रियों के शरीर पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों से इन लोगों को अवगत कराया। इस अभियान में दिल्ली की सहेली नामक संगठन की भूमिका प्रमुख थी। सहेली समूह ने जनसंख्या नियंत्रण, हानिकारक और खतरनाक गर्भ निरोधन प्रक्रिया के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय मुहिम का गठन किया। खासतौर पर गर्भाधान को एक रोग या बीमारी मानना तथा उसके प्रतिरोध रूप, शरीर में प्रतिरक्षण उत्पन्न करना, इस मूल सिद्धांत की मुखालफत महिला आंदोलन द्वारा की गई।

ये दौर दलित महिला आंदोलन की दृष्टि से भी याद रखा जाएगा। दलित स्त्रीवादियों की महिला आंदोलन से एक शिकायत थी कि उन्होंने जाति के मुद्दे को अपने आंदोलन का हिस्सा नहीं बनाया। इन समूहों ने भारत में जातिगत असमानता और एक दलित महिला के ऊपर जाति, वर्ग और पितृसत्ता द्वारा तिहरे शोषण की बात की। ये समूह जाति के साथ-साथ भूमंडलीकरण के विरोध में भी उतरा, क्योंकि इससे विस्थापन, कृषि का ह्रास जैसी समस्याएँ सामने आईं, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से खेतों में काम करने वाली श्रमिक महिलाओं को प्रभावित किया, जो कि अधिकांश दलित थीं। National federation of Dalit women ने अपनी बहस में जाति, जेंडर और उसके भूमंडलीय पूँजी के साथ संबंधों पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इसी बहस के साथ दलित आंदोलन व महिला आंदोलन के बीच अंतर्संबंधों का भी विकास हुआ। भंवरी देवी केस में महिला आंदोलन का बड़ा जुड़ाव हमें दिखता है।

हिंसा के अन्य रूपों में राज्य के द्वारा की जाने वाली हिंसा का विरोध काफी मुखर रूप से हमें कुछ खास जगहों पर मिलता है। छत्तीसगढ़, मणिपुर, आसाम, गुजरात और भी तमाम जगहों पर राज्य द्वारा की जाने वाली हिंसा में महिलाओं का खास केंद्रित किया गया है। महिलाओं पर होने वाले क्रूर बलात्कारों के विरोध में 2005 ई. में मणिपुरी महिलाओं का नग्न प्रदर्शन हम कभी नहीं भूल सकते हैं। आसाम में **नागा मदर्स एसोसिएशन** और मणिपुर में **मेइरा पेइबिस** दोनों ही संगठनों की महिलाएँ जहाँ राज्य द्वारा महिलाओं को प्रताड़ित करने का विरोध कर रही थीं, वहीं वे अपने ही राज्य के उग्रवादी संगठनों द्वारा राज्य की महिलाओं पर की जाने वाली हिंसा के खिलाफ भी लड़ रहीं थी। नागा मदर्स एसोसिएशन "shed no more blood" की महिलाओं का कहना था कि "हम माँ हैं और हमारे किसी भी बच्चे की तकलीफ हम सहन नहीं करेंगे।" छत्तीसगढ़ महिला मुक्ति मोर्चा की महिला श्रमिकों ने भी

आदिवासी महिलाओं पर राज्य द्वारा होने वाले दमन के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद की। राज्य द्वारा प्रायोजित हिंसा के अंतर्गत सांप्रदायिक दंगों को भी शामिल करना होगा। गोधरा के दंगे इसका बड़ा उदाहरण हैं। भले ही प्रत्यक्ष रूप से राज्य ने महिलाओं पर हिंसा न की हो, पर हिंदूवादी संगठनों को महिलाओं पर बलात्कार की खुली छूट देकर उसने अप्रत्यक्ष रूप से अपनी भूमिका निभाई। तमाम महिला समूहों ने पीड़ित लोगों के साथ बात करके अपनी रिपोर्ट दी, जो बच्चियों और महिलाओं के ऊपर की गई बर्बर यौनिक हिंसा को सामने लेकर आए। महिलाओं के ऊपर की जाने वाली भयानक हिंसा की वास्तविकता आने के बाद ही गुजरात का दंगा, गुजरात का नरसंहार बना, क्योंकि महिलाओं के शरीर पर बलात्कार को एक हथियार बनाकर पूरी नस्ल को खत्म करने का कोशिश की गयी थी। लगभग कुछ ऐसी ही स्थितियाँ हमने मुजफ्फरनगर दंगों में भी देखी, जिसमें कई प्रभावशाली राजनेता शामिल थे। यहाँ भी अल्पसंख्यक महिलाएँ हिंसा की जबर्दस्त शिकार हुईं और बहुसंख्यक महिलाओं ने इस हिंसा को समर्थन दिया और नारा दिया गया "बहु बनाओ बेटी बचाओ"। इन घटनाओं ने महिला आंदोलन को हिंसा में बहु-संख्यक महिलाओं की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिंसा में भागीदारी के सवाल उठाए हैं, जिनके जवाब तलाशने की एक बड़ी कोशिश स्त्री मुद्दों से जुड़े लोगों ने की है। महिला आंदोलन ने यौनिकता के मुद्दे को भी ज़ोर शोर से उठाया। धारा-377 को हटाना, समलैंगिक संबंधों को मान्यता और उन्हें एक सुरक्षित व गरिमामय जीवन के लिए महिला आंदोलन ने अनवरत प्रयास किए हैं। खासतौर पर यौनिकता पर बातचीत करने का तात्पर्य "फ्री सेक्स" लगाया जाता था, उसे और स्पष्ट किया कि यौनिकता से तात्पर्य असल में यौन संबंधों के बीच सत्ता संबंध और मानवीय गरिमा है। जिस समय फायर फिल्म के प्रदर्शन को लेकर शिवसेना उग्र विरोध कर रहा था, उस समय यौनिकता के तमाम मुद्दों को लेकर महिला आंदोलन के कार्यकर्ता सामने आए। इसके बाद मुंबई की बार डांसर्स को ये कहकर निकाला जाना कि वे युवा पीढ़ी के लिए नैतिक खतरा उत्पन करेंगी, पर यौन कर्म पर किसी तरह की पाबंदी न होना, एक तरह से बार बालाओं को देह व्यापार की ओर धकेलने का प्रयास था, जो उनकी विवशता और हाशिए की स्थिति को और अधिक बढ़ा देता है। इस मुद्दे पर भी महिलाओं ने आंदोलन करके बार बालाओं को काम करने का अधिकार व सुरक्षित कार्यस्थल उपलब्ध कराने की माँगे रखीं। वेश्यावृति को यौन कर्म कहने की बहस भी इस दौर की उपज है। ऐसे ही और भी कई आंदोलन प्रभावशाली रहे, जैसे:- महिला आरक्षण, संपत्ति के अधिकार, खाप पंचायत की हिंसा के विरुद्ध आंदोलन आदि। इस प्रकार 80 के दशक के आंदोलन 90 में परिपक्व रणनीतियों के साथ उपस्थित थे।

4.2.5. स्वायत्त महिला आंदोलन की सीमाएँ एवं वर्तमान परिदृश्य

स्वायत्त महिला आंदोलन के संदर्भ में एक समय यह कहा जाता रहा कि इस आंदोलन से जुड़ी महिलाएँ पुरुष विरोधी हैं, पश्चिमी विचारों से प्रभावी हैं। तमाम प्रगतिशील संगठनों का यह भी मानना था कि यह आंदोलन अस्मितावादी विमर्श की सीमा में ही रहेगा, क्योंकि ये महिलाओं को एक सीमित परिप्रेक्ष्य में देख रहे हैं, जबकि महिलाएँ जाति, धर्म, वर्ग में बँटी हुई हैं। महिलाओं के मुद्दे वर्गगत और जातिगत असमानता को संबोधित किए बगैर अधूरे रहेंगे, पर महिला आंदोलन ने समय-समय पर अपने रणनीतिक बदलाव से स्वयं को अस्मितावादी विमर्श से मुक्त रखने का प्रयास किया व अन्य ढाँचागत असमानताओं के खिलाफ भी अपना मोर्चा जारी रखा। कुछ प्रमुख महिला आंदोलन की सीमाओं पर चर्चा जा रही है-

4.2.5.1. दलित स्त्रियों के मुद्दों की अनदेखी और उनकी स्वीकार्यता

1990 ई. में इस संदर्भ में बात प्रारंभ हुई जब दलित महिलाओं ने महिला आंदोलन में अपने मुद्दों का अभाव देखा और वर्गगत राजनीति में संलग्न प्रगतिशील संगठनों मे इनके सीमित होते दायरे पर चर्चा प्रारंभ की। कहा गया कि यह तो उच्च जातीय, शिक्षित, शहरी मध्य वर्गीय महिलाओं का आंदोलन है। इसमें दलित और मजदूर महिलाओं के मुद्दों और संघर्षों को शामिल नहीं किया गया। इसी विचार के साथ भारत में दलित स्त्रीवाद का जन्म हुआ। गोपाल गुरु, शर्मिला रेगे इसके महत्वपूर्ण विचारक रहे हैं। महिला आंदोलन ने इन मुदों को गंभीरता से लिया। महिला आंदोलन के अगुआ विद्वानों ने जाति,वर्ग और जेंडर के मध्य अंतर्संबंधों को स्पष्ट किया और यह बात प्रस्तुत की कि संरचना की हर असमानता दूसरी असमानता से जुड़ी हुई है और एक साथ में ही हमें अन्य दूसरी असमानताओं को भी संबोधित करना होगा, उन्हें दूर करने के उपाय करने होंगे, अन्यथा सिर्फ एक ही असमानता पर बात करने में ही सीमित होने पर हम अस्मितावादी विमर्श में फँस जाएँगे और किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाएँगे। इस हेतु स्त्रीवादी अकादमिक ज्ञान ने इस सैद्धांतिकी को विकसित कर महिला आंदोलन का दायरा बढ़ा दिया। 90 के दशक में दलित और मजदूर महिलाओं के मुद्दे महिला आंदोलन का महत्वपूर्ण हिस्सा बने।

4.2.5.2. महिला आंदोलन का संस्थानीकरण व उसका प्रभाव

महिला आंदोलन के ऊपर उसके संस्थानीकरण होने के भी कई आरोप लगे। 80 के दशक के बाद कहा गया कि स्त्री अध्ययन विषय के विश्वविद्यालयों में आने, गैर सरकारी संगठनों के उद्भव, आंदोलनकारियों द्वारा प्रकाशन संस्थाएँ आदि बना लेने से सड़क पर होने वाले आंदोलन कम हो गए हैं। अब सारी क्रांति की बातें ए.सी. कमरों तक सीमित हो गई हैं, लेकिन धीरे-धीरे स्थितियाँ स्पष्ट हुईं कि महिला आंदोलन समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि वह कई स्थितियों के साथ खुद में आवश्यक बदलाव लाकर सक्रिय है। महिला आंदोलन के कुछ हिस्सों का संस्थानीकरण उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी ताकत बनकर उभरा है। जिस तरह से आज महिला आंदोलन का अकादमिक भुजा स्त्री अध्ययन को बंद करने के प्रयास किए गए हैं, वह बताते हैं कि संस्थानों में भी स्त्री अध्ययन विषय स्वयं में एक आंदोलन ही रहा है, जिसमे अकादमिक जगत की पितृसत्ता को बेनकाब किया है। इस पूरे दौर का यदि इन आंदोलनों के संदर्भ में हम विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि देश भर में अलग-अलग स्तर पर छोटे-बड़े रूप में महिला आंदोलन लगातार चल रहे हैं। शायद ही कोई जगह ऐसी हो, जहाँ किसी-न-किसी रूप में महिला आंदोलन सक्रिय न हों। मुझे लगता है कि जब हम यह कहते हैं कि महिला आंदोलन का संस्थानीकरण हो गया है, सडकों पर महिलाओं की भागीदारी नहीं दिख रही है, तो कहीं-न-कहीं हम आंदोलन में एक मध्यम वर्गीय महिला का चेहरा तलाश रहे होते हैं और जब हम उसे नहीं देखते, तो पूरे आंदोलन को ही खारिज करने की मानसिकता में आ जाते हैं, जबकि इसी दौर में दलित, आदिवासी, श्रमिक महिलाओं इत्यादि के आंदोलन किसी पार्टी के भीतर या स्वायत्त रूप से भी काफी सक्रिय रहे हैं। अतः संस्थानीकरण पर बात करते हुए हम एक खास वर्ग की महिलाओं पर ही बात केंद्रित करते हैं। मध्य वर्गीय महिलाओं ने भी अलग-अलग स्तरों पर अपनी सहभागिता दर्ज की है। खासतौर पर केंद्र में बनने वाले नीतिगत नियमों में जेंडर दृष्टिकोण को जोडे जाने पर उनका बहुत बड़ा योगदान है। आज तमाम योजनाओं में महिलाओं के दृष्टिकोण को शामिल करने का प्रयास किया जाता है। आंदोलन की यह एक बड़ी जीत है।

4.2.5.3. वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान में महिला आंदोलन विभिन्न प्रगतिशील संगठनों के साथ मंच साझा करने का प्रयास कर रहा है, ताकि संरचना से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर काम किया जा सके। आर्थिक नीतियाँ, बढ़ती सांप्रदायिकता, असहिष्णुता, जातिगत हिंसा में वृद्धि, राज्य की हिंसा, खाप पंचायतें, महिला आरक्षण, आदि विभिन्न मुद्दों पर यह आंदोलन नई रणनीतियों के साथ प्रयास कर रहा है। इस समय अकादमिक जगत में स्त्री अध्ययन विषय को बचाए रखने का बड़ा संकट भी महिला आंदोलन के सामने है, क्योंकि राज्य की नीतियों के कारण स्त्री अध्ययन विषय बंद होने के कगार पर आ गया है। महिला आंदोलन इस मुद्दे पर लगातार सक्रिय है। एक तबका जहाँ स्त्री अध्ययन के रूप में संस्थानीकरण की जरूरत पर बल दे रहा है, वहीं दूसरा तबका ऐसा भी है, जो मानता है कि स्त्री अध्ययन एक विषय के रूप में रहे या न रहे। महिला आंदोलन हमेशा संपन्न अस्तित्व बना कर और बचा कर रखेगा।

4.2.06. सारांश

सार स्वरूप हम स्वायत्त महिला आंदोलन को समझते हैं कि स्वायत्त महिला आंदोलन कोई सीधी रेखा में चलने वाला आंदोलन नहीं है, बल्कि भारत में संस्कृतियों की विविधता और महिलाओं के बीच जाति एवं वर्ग संबंधी जटिलताओं को देखते हुए विभिन्न मुद्दों को साथ लेकर चलने वाला आंदोलन है। इसके प्रारंभ में **समानता की ओर** रिपोर्ट की बड़ी भूमिका है, जिसके कारण महिलाओं की वास्तविक स्थिति सभी के समक्ष आ पाई। इस रिपोर्ट ने संरचना में व्याप्त पितृसत्ता की ओर इंगित किया और तमाम प्रगतिशील आंदोलनों की महिला मुद्दों को लेकर सीमाओं को दर्शाया। महिलाओं के मुद्दों की उपेक्षा के कारण स्वायत्त महिला आंदोलनों का जन्म हुआ। शुरुआत महिलाओं के विरुद्ध हिंसा से हुई थी, लेकिन उसमें जाति, वर्ग, धार्मिक कट्टरपन, राज्य की भूमिका, स्वास्थ्यगत मुद्दे, यौनिक अधिकार आदि अनेक मुद्दे जुड़े, जिन्होंने व्यवस्था के संरचनात्मक ढाँचे पर सवाल खड़े किए और महिलाओं के जीवन में गुणात्मक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी दौर में महिला आंदोलन ने जाति, वर्ग और जेंडर की साझा समझ विकसित की, जिसने जहाँ इस पूरे आंदोलन को विकसित किया, वहीं अन्य महत्वपूर्ण आंदोलन के साथ रिश्ते की भी मजबूत जमीन तैयार की। इस विश्लेषण ने बताया कि एक स्त्री की यौनिकता, गतिशीलता नियंत्रण से ही जातिगत पवित्रता और जातिगत पवित्रता से वर्गगत श्रेष्ठता की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। अत: हमें इन तीनों ही असमानताओं पर एक साथ आक्रमण करना होगा। इस रणनीति के साथ महिला आंदोलन ने ढाँचागत असमानता से जुड़े सारे मुद्दों को अपना लिया, क्योंकि वे सभी किसी-न-किसी रूप में महिलाओं के जीवन को प्रभावित करते हैं।

4.2.07. शब्दावली

4.2.08. बोध प्रश्न

1. स्वायत्त महिला आंदोलन से आप क्या समझते है?
2. स्वायत्त महिला आंदोलन का उद्भव और विकास कैसे हुआ?
3. महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा के खिलाफ होने वाले आंदोलनों पर चर्चा कीजिए?
4. समान नागरिक संहिता के संदर्भ में महिला आंदोलन का रुख स्पष्ट कीजिए?
5. महिला आंदोलन व स्त्री अध्ययन में क्या अंतर्संबंध है?
6. स्वायत्त महिला आंदोलन की सीमाएँ क्या रहीं?

4.2.09. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Chako, S. (2001). *Changing the stream.* Mumbai: Centre for Education & Documentation.
2. Desai, A. R. (1985). Women's Movement in India: An Assessment . *EPW*, 992-995.
3. Indu Agnihotri, V. M. (1995). Changing Terms of Political Discourse: Women's Movement in India,1970-1990. *EPW*, 1869-78.
4. John, M. (2008). *Women studies in India.* New Delhi: Penguin Books.
5. Klapana Kannabiran, R. M. (2007). *From Mathura To Manorama.* New Delhi: Women Unlimited.
6. Patel, V. (2010). Dynamics of Women's Studies and Women's Movement. *EPW*, 35-37.
7. Sen, I. (1994). *A Space within the struggles:Women's Participation in People's Movement.* New Delhi: Kali for Women.
8. Urmila Pawar, M. M. (2008). *We also made History.* New Delhi: Zubaan.
9. उपाध्याय, र., & उपाध्याय, स. (2004). *आज का स्त्री आंदोलन.* नई दिल्ली: शब्द संधान.
10. कुमार, र. (2014). *स्त्री संघर्ष का इतिहास.* दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
11. शुक्ला, अ. (2016). महिला आंदोलन 1990 के बाद. *समयांतर*, 69-74.

4.2.10. उपयोगी ग्रंथ सूची

1. Menon Nivedita, (1999).*Gender and Politics in India.*New Delhi:Oxford
2. Poonacha, V. (2017). Gendered Step: Review of Two Decades of Women's mOvement and Women's Studies. *EPW*, 725-728.
3. MAPPING THE WOMEN'S MOVEMENT IN INDIA
4. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/2722/13/13_chapter%204.pdf;
5. Bakshi Upendra & others (1979). *AN OPEN LETTER TO THE CHIEF JUSTICE OF INDIA*
6. http://www.pldindia.org/wp-content/uploads/2013/03/Open-Letter-to-CJI-in-the-Mathura-Rape-Case.pdf
7. आर्य साधना एवं अन्य, (2004). *नारीवादी राजनीति*. नई दिल्ली : केंद्रीय हिंदी निदेशालय

खंड-4 : समकालीन इतिहास लेखन और स्त्री
इकाई-3 : वैश्वीकरण और स्त्री

इकाई की रूपरेखा

4.3.1. उद्देश्य
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. वैश्वीकरण एक परिचय
4.3.4. भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव
4.3.5. वैश्वीकरण और स्त्री
4.3.6. सारांश
4.3.7. बोध प्रश्न
4.3.8. संदर्भ ग्रंथ सूची
4.3.9. उपयोगी ग्रंथ सूची

4.3.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित बातों को समझने में समर्थ हो सकेंगे-

1. वैश्वीकरण क्या है।
2. भारत में वैश्वीकरण का क्या प्रभाव पड़ा।
3. वैश्वीकरण का स्त्री पर किस तरह से प्रभाव पड़ा है।

4.3.2. प्रस्तावना

वैश्वीकरण आज के समय की अत्यंत प्रभावशाली प्रक्रिया है। इसे ग्लोबलाइजेशन, भूमंडलीकरण, ग्लोबीकरण, जगतीकरण या विश्वयान के नाम से भी जाना जाता है। वैश्वीकरण के कारण सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वैश्वीकरण के कारण 'पूरा विश्व एक परिवार' की भावना का भी उदय हुआ है, जिसके कारण 'ग्लोबल विलेज' वैश्विक गाँव या 'ग्लोबल इकॉनामी' जैसी अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल होने लगा है, लेकिन आधुनिकता की इस नई परिघटना ने सभी बदलावों के साथ क्या सत्ता सबंधों पर भी प्रभाव डाला है? क्या स्त्री-पुरुष के सत्ता संबंधों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है? एक सामान्य अवधारणा बनी है कि वैश्वीकरण ने स्त्रियों का सशक्तीकरण किया है। स्त्रियों के एक तबके ने व्यवसाय व जीवन के हर क्षेत्र में उपलब्धि पाई है, परंतु सवाल यह है कि परिवार, विवाह, धर्म, और परंपरा (जिसने स्त्रियों को मानसिक गुलाम भी बनाया है) पर कोई चोट की है? क्या स्त्रियों को प्रजनन का अधिकार मिला? क्या स्त्रियाँ स्वयं की यौनिकता और शरीर संबंधी निर्णय लेनेकी लिए स्वतंत्र हुईं? जब वैश्वीकरण को हम इन सवालों के साथ देखते हैं तो हम पाते हैं कि कैसे वैश्वीकरण ने खासकर भारत में अपनी जड़ों को तो मजबूत किया, लेकिन पितृसत्ता के साथ भी गठजोड़ बनाया, जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों का पितृसत्ता के सभी आयामों में शोषण के साथ उनके श्रम की भी शोषणकारी प्रवृति ने बाजार में अपनी जगह बना ली। इस इकाई में वैश्वीकरण की अवधारणा को गहराई से समझते हुए भारत के संदर्भ में वैश्वीकरण और उसके साथ पितृसत्ता के सबंधों पर भी विस्तार से चर्चा होगी जिससे विषय की समझ विद्यार्थियों में बन सके।

4.3.3. वैश्वीकरण : एक परिचय

वैश्वीकरण हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण परिघटना है। निजी जीवन से लेकर सामाजिक जीवन के हर पहलू में इसके प्रभाव को देखा जा सकता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के बहुआयामी होने के चलते इसकी कोई एक सटीक परिभाषा करना मुश्किल है। इसी के चलते आम जनमानस में और बौद्धिक समुदाय में इसको लेकर संशय बना हुआ है। वैश्वीकरण अंग्रेज़ी शब्द Globalization का पर्यायवाची है। सन् 1960 में इसका प्रयोग दुनिया से संबंधित (Belonging to the world) या पूरे संसार (Worldwide) के अर्थ में किया गया था। प्रसिद्ध संचारशास्त्री मार्शल मैकलुहान (Marshall McLuhan) ने 1964 में विश्व ग्राम (Global Village) शब्द का इस्तेमाल किया था। उन्होंने यह कल्पना की थी कि आने वाले समय में सूचना और संचार माध्यमों के विकास के परिणाम स्वरुप दुनिया एक गाँव में तब्दील हो जाएगी।

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया से है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनैतिक ताकतों का एक संयोजन है।वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के संदर्भ में किया जाता है, अर्थात व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण।

टॉम जी. पामर 'वैश्वीकरण' को निम्न रूप में परिभाषित करते हैं 'सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्रास या विलोपन और इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्वस्तरीय तंत्र'। यह अर्थशास्त्रियों के द्वारा दी गई सामान्य परिभाषा है, इसे अक्सर श्रम विभाजन (division of labor) के विश्वस्तरीय विस्तार के रूप में अधिक साधारण रूप से परिभाषित किया जाता है।

थामस एल फ्राइडमैन (Thomas L. Friedman) " दुनिया के 'सपाट' होने के प्रभाव की जाँच करते हैं " और तर्क देते हैं कि वैश्वीकृत व्यापार (Globalized trade), आउटसोर्सिंग (Outsourcing), आपूर्ति के शृंखलन (Supply-chaining) और राजनैतिक बलों ने दुनिया को बेहतर और बदतर, दोनों रूपों में स्थायी रूप से बदल दिया है। वे यह तर्क भी देते हैं कि वैश्वीकरण की गति बढ़ रही है और व्यापार संगठन तथा कार्यप्रणाली पर इसका प्रभाव बढ़ता ही जाएगा।

नोम चोम्स्की का तर्क है कि सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण शब्द का उपयोग आर्थिक वैश्वीकरण (economic globalization) के नवउदार रूप का वर्णन करने में किया जाता है। हर्मन ई. डेली (Herman E. Daly) का तर्क है कि कभी-कभी अंतरराष्ट्रीयकरण और वैश्वीकरण शब्दों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है लेकिन औपचारिक रूप से इनमें मामूली अंतर है। 'अंतरराष्ट्रीय करण' शब्द का उपयोग अंतरराष्ट्रीय व्यापार, संबंध और संधियों आदि के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय का अर्थ है राष्ट्रों के बीच, वैश्वीकरण का अर्थ है आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन। अंतरराष्ट्रीय व्यापार तुलनात्मक लाभ (Comparative advantage) द्वारा शासित, अंतर क्षेत्रीय व्यापार पूर्णलाभ (Absolute advantage) द्वारा शासित बन जाता है।

वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण पहलू है - राज्य केंद्रित एवं नियोजित आर्थिक विकास के स्थान पर बाजार आधारित उदारीकृत एवं वैश्वीकृत आर्थिक विकास। राज्य के प्रति लोगों में एक अविश्वास पैदा होता है और उसे सभी समस्याओं के मूल में देखा जाता है। दूसरी तरफ बाजार को सभी समस्याओं के हल के रूप में देखा जाता है। राज्य ने अपनी भूमिका को काफी सीमित किया है। अब भारत में भी राज्य के नियंत्रण में होने वाले विकास की तीखी आलोचना होने लगी है। राज्य और उसकी संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार ने इसके लिए पर्याप्त जगह उपलब्ध कराई है। सूचनाओं के मुक्त प्रवाह और इसके विस्तार के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के मुक्त प्रवाह ने राष्ट्र राज्य की सीमाओं को अप्रसांगिक बनाने में बड़ी भूमिका अदा की है।

प्रभा खेतान के शब्दों में "भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जो वित्त-पूँजी के निवेश, उत्पाद और बाजार द्वारा राष्ट्रीय सीमा में ही वर्चस्वी नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा से परे भूमंडलीय आधार पर निरंतर अपना प्रसार करना चाहती है। इसका निर्णय-क्षेत्र सारी दुनिया है। यह अपनी मुद्रा के कार्य-क्षेत्र को निरंतर पुनः-पुनः समायोजित करती रहती है। किसी भी कंपनी की फैक्ट्री, ऑफिस और उसके कर्मचारी लाभ कमाने के लिए राष्ट्रीय सीमा के बाहर कहीं भी जाने को तैयार रहते हैं। इन भूमंडलीय निगमों के प्रबंधकों ने अपनी तकनीकी क्षमता के आधार पर नए अंतरराष्ट्रीय संबंधों का निर्माण किया है, जिससे उत्पादन एवं उपभोग की क्षमता बढ़ी है। आज पूँजी और सूचना के राष्ट्रीय सीमाओं के सहजता से आरपार आना-जाना संभव होने से जो नए नेटवर्क बने हैं, उन्होंने पूँजी, सेवा और वस्तु की अंतरराष्ट्रीयता को बढ़ावा दिया है।'

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का गहरा रिश्ता पूँजीवादी उत्पादन के साथ है। पूँजीवाद की व्याख्या किए बगैर भूमंडलीकरण को समझना मुमकिन नहीं होगा। पूँजीवाद 1970 के दशक से गंभीर आर्थिक संकट का सामना कर रहा है। इस संकट के बीज पूँजीवाद के गर्भ में ही छुपे हैं। वर्तमान भूमंडलीकरण में दो विशेषताएँ निहित हैं- उत्पादन का भूमंडलीकरण और वित्त (फाइनेंस) का भूमंडलीकरण। सत्तर के दशक से भूमंडलीकरण की दोनों विशेषताएँ ज्यादा प्रभावी हो गई हैं।

भूमंडलीकरण बहुराष्ट्रीय पूँजी और राष्ट्र राज्य के जटिल एवं बहुआयामी अंतर्संबंधों का परिणाम है। जिस तरह से बहुत सारे देश अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्तीय पूँजी के प्रवाह से प्रतिबंध हटा रहे हैं, उसी तरह से भूमंडलीकरण बहुराष्ट्रीय अमीरों (Elites), बहुराष्ट्रीय कारपोरेशन्स को दुनिया के बाजार पर कब्ज़ा करने के नए-नए अवसर प्रदान कर रहें हैं। इसके साथ-साथ हम देखते हैं कि इस प्रक्रिया के समांतर कामगारों व मेहनतकश आबादी से जुड़े मुद्दों पर होने वाले आंदोलनों की गति तीव्र रूप से आगे बढ़ रही है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के चलते समाज में हाशिये पर पड़े लोगों की आजीविका नष्ट होती जा रही है। पूँजी के इस वैश्वीकरण ने समाज के कमजोर तबको की स्थिति को पहले से ज्यादा संकट में डाल दिया है। वैश्वीकरण के साथ जुड़ी नीतियों ने दुनिया के अधिकांश हिस्सों में स्वास्थ्य व शिक्षा की स्थिति को और गंभीर बना दिया है।

आर्थिक वैश्वीकरण के नाम पर होने वाली विकास की यह प्रक्रिया संसाधनों, सस्ते श्रम और हर नए बाजार को आत्मसात करती जा रही है। उत्पादन और पुनः उत्पादन ही इसका उद्देश्य है। दुनिया के अनेक देशों में सस्ते श्रम के लालच में बहुराष्ट्रीय निगम इन देशों में प्रवेश करते हैं। तीसरी दुनिया के देशों में जनसंख्या के अधिक होने के कारण वहाँ बाजार की भी संभावना अधिक है। इसी के चलते इन देशों में ऐसे कानून जो इन संस्थाओं की गतिविधियों में बाधा उत्पन्न करते हैं, उनमें सुधार किए जा रहे हैं। मसलन

श्रम कानून, स्वास्थ्य संबंधी कानून, सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं पर्यावरण संबंधी कानूनों में बदलाव किए जा रहे हैं। वैश्वीकरण के समर्थक विद्वानों का तर्क है कि जब तक उन्हें पर्याप्त सुविधाएँ नहीं मिलेगी या कानून नहीं बदले जाएँगे तब तक उत्पादन कैसे संभव होगा?

वैश्वीकरण की एक और ख़ासियत यह है कि बाजार आधारित व्यवस्था में जीवन के हर रूप का वस्तुतीकरण कर दिया जाता है। कल तक जो भी संसाधन समाज के कमजोर व्यक्ति तक उपलब्ध थे उन्हें उनसे छीना जा रहा है। निजीकरण की इस प्रक्रिया ने मूलभूत सुविधाओं तक से आम जन को वंचित कर दिया है।

4.3.4. भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव

भारत ने औपचारिक रूप से वैश्वीकरण की प्रक्रिया के लिए 1991 में अपने दरवाजे खोले। उस समय केंद्र में कांग्रेस की सरकार थी। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संरचनात्मक समायोजन के कार्यक्रम को लागू किया गया। इसी के बाद उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों को अमल में लाया जाने लगा। भारत सरकार ने अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, वर्ल्ड बैंक और डब्लू.टी.ओ से कर्ज लिया। इस कर्ज के बदले में देश को कई तरह की शर्तों का अनुपालन करना था। इन शर्तों में यह भी था कि भारत अपना वित्तीय घाटा कम करे, सार्वजनिक पूँजी निवेश न करे, सब्सिडी कम करे तथा आर्थिक विषमता कम करने वाले कार्यक्रमों पर खर्च कम करे। कर्ज लेने के बाद नीतिगत मामले काफी हद तक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से संचालित होने लगे, जिसका मतलब था कल्याणकारी राज्य की संरचना को बदल कर आयात की जगह निर्यात की नीति को बाजार आधारित बनाना, निजीकरण को बढ़ावा देना, विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित करना तथा व्यापार की नीतियों में बड़े बदलाव करना आदि।

अभय कुमार दुबे के अनुसार "भारत के वैश्वीकरण की यह कहानी अधूरी ही रह जाएगी अगर इसमें यह न जोड़ा जाए कि इसकी अघोषित भूमिका अस्सी के दशक से ही बनने लगी थी। यही वह दशक था जब अनिवासी भारतीय (एन.आर.आई.) नामक एक समुदाय का जिक्र शुरू हुआ और उनके भारतीय अर्थतंत्र में योगदान से उम्मीद की जाने लगीं। यह राष्ट्रवाद की पारंपरिक धारणा में तबदीली का संकेत था। इसके अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद के हित भौगोलिक सीमाओं से परे भी स्थित हो सकते थे। इसी दशक में भारत ने इंटरनेट की दुनिया में कदम रखा। उपग्रहीय चैनलों ने भी इसी दशक में शहरी मध्यवर्ग के ड्राइंग रूम में प्रवेश किया था। नेहरु युग में अपनाई गई विकास नीति आयात प्रतिस्थापन पर आधारित जरूर थी पर अस्सी के दशक में राजीव गांधी के नेतृत्व में अर्थतंत्र ने निर्यातोन्मुख विकास के रास्ते पर कदम बढ़ा दिए थे। निर्यात योग्य जिंसों के उत्पादन के लिए आयात बढ़ाना जरूरी हो गया था'।

वैश्वीकरण की नीतियों के संदर्भ में हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा की भारत एक विकासशील देश है और काफी समय तक औपनिवेशिक हुकूमत का हिस्सा रहा है। इसके साथ-साथ मानव विकास सूचकांक, जेंडर सूचकांक और ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भी भारत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश में जहाँ आज भी अर्द्धसामंती मूल्यों की जड़ें बहुत मजबूत हैं वहाँ पर इन नीतियों का क्या असर पड़ेगा यह समझना बहुत मुश्किल नहीं है।

भारत में वैश्वीकरण को अपनाने के बाद उसकी भव्यता की जो तस्वीर दिखाई जा रही थी, उस पर बहुत से प्रश्न चिह्न भी लग रहे हैं। ग्लोबल दुनिया का सपना केवल सपना ही रहा या मध्यमवर्गीय आकांक्षाओं को साकार करने का जरिया बन रहा है। वैश्वीकरण की नीतियों के तुरंत बाद ही गाँव और

शहर के गरीबों की जिंदगी और तकलीफदेह हो गई है। मिशेल चोसुदोव्स्की ने आरोप लगाया कि इस तारीख के बाद भारत का वित्तमंत्री संसद और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को धता बता कर सीधे विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के वाशिंगटन डीसी स्थित दफ्तर की हिदायतों का पालन करने लगा है।

वैश्वीकरण के बारे में कुमार मंगलम विड़ला की राय कुछ इस प्रकार है "मोटे तौर से भारत के भूमंडलीकरण पर होने वाली बहस दो खानों में बँटी रहती है। एक ओर भूमंडलीकरण के समर्थक हैं और दूसरी ओर विरोधी. दोनों की बहस का आधार बुनियादी तौर पर अर्थतंत्र है, लेकिन इन दोनों के बीच एक ऐसी जगह भी है जहाँ दोनों खेमों के असंतुष्ट आपस में मिलते हैं। इस बीच के इलाके में संस्कृति और राजनीती के प्रश्न उठते हैं, पर उसके ऊपर पर्याप्त गहराई से ध्यान नहीं दिया जाता है। भारत का भूमंडलीकरण इसी गुंजाइश की देन और इसी कमी को पूरा करने का एक यत्न है।"

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत में कल्याणकारी राज्य की भूमिका को काफी सीमित किया है। इन नीतियों की वजह से ही शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजों को भी बाजार के हवाले किया जा रहा है। इन सुविधाओं के निजीकरण ने हाशियाकृत तबकों तक इनकी पहुँच को मुश्किल बना दिया है। खास तौर पर उच्च शिक्षा में तो निम्न-मध्यम-वर्ग के लिए दरवाजे लगभग बंद हो चुके हैं। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में तो स्थिति और भी ज्यादा खराब है। लगभग यही हाल स्वास्थ्य सेवाओं का भी है। एक गरीब व्यक्ति महँगी स्वास्थ्य सेवाओं का वहन नहीं कर सकता है। वह उन महँगे प्राइवेट नर्सिंग होम का दरवाजा खटखटाने का साहस नहीं कर सकता है और न ही महँगी जाँच और दवाईयों का ही वहन कर सकता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सबसे ज्यादा कृषि व्यवस्था को प्रभावित किया है। पिछले कुछ वर्षों में देश के अलग-अलग प्रांतों में बड़े पैमाने पर किसानों ने आत्महत्या की हैं। पिछले पच्चीस वर्षों में किसानों की खुदकुशी का यह आंकड़ा एक लाख की संख्या को पार कर चुका है। कृषि संकट का सबसे ज्यादा प्रभाव वर्चस्वशाली जातियों (Dominant Caste) पर पड़ा है। ये वर्चस्वशाली जातियाँ विभिन्न राज्यों में अन्य पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में आती हैं। इसे हम इस तरह से भी समझ सकते हैं कि मराठा (कुनबी) एक खेतिहर जाति है। पिछले पच्चीस सालों में नवउदारवादी नीतियों के चलते कृषि पर जो संकट आया है उसका नकारात्मक प्रभाव महाराष्ट्र में मराठा (कुनबी) समाज के लोगों पर पड़ा है। खेती पर आए इस संकट की वजह से ही यह समुदाय आज सरकारी नौकरियों में आरक्षण के लिए संघर्षरत है। लगभग इसी परिघटना को गुजरात में भी घटित होते हुए देखा जा सकता है जहाँ पर पाटीदार (पटेल) जाति के लोग आरक्षण के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यही तस्वीर गुर्जर (राजस्थान), जाट (हरियाणा) और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की भी है।

वैश्वीकरण ने संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में भयानक कटौती की है। अनौपचारिक क्षेत्र का बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ है, जहाँ पर श्रम कानूनों का खुलेआम उल्लंघन किया जाता है। महिलाओं की बड़ी आबादी इसी अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने के लिए विवश है। अगले अध्याय में हम विस्तार से इन बातों को समझने का प्रयास करेंगे।

4.3.5. वैश्वीकरण और स्त्री

प्रभा खेतान कहती हैं कि "जब मैं 'भारतीय स्त्रियों' जैसे संबोधन को प्रयुक्त करती हूँ तो उसमें लाखों स्त्रियाँ शामिल होते हुए भी कुछ स्त्रियाँ शामिल नहीं हो पाती, क्योंकि वे चुनाव करने में असमर्थ हैं

और गरीबी की सीमा रेखा के नीचे हैं। भूमंडलीय समाज में मुक्ति की कामना केवल वही स्त्री करने में समर्थ है, जो गरीबी की सीमा रेखा के ऊपर है।

भारत में पिछले पच्चीस सालों में सरकार की नीतियों ने महिलाओं के एक तबके को आधुनिक शिक्षा से लैस किया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं के एक छोटे से तबके के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों, आईटी कंपनियों व काल सेंटर के दरवाजे खोले हैं। इस प्रक्रिया ने इस तबके की महिलाओं के लिए बाजार के रास्ते सुगम किए हैं, लेकिन इसके साथ-साथ आज भी महिलाओं की बड़ी आबादी पर श्रम के लैंगिक विभाजन का असर साफ साफ दिखाई पड़ता है। महिलाओं का बड़ा हिस्सा आज भी घर में रहकर घरेलू काम को ही करता है जिसे अनुत्पादक श्रम माना जाता है। इस श्रम के एवज में उसे कोई मजदूरी नहीं दी जाती है। महिलाएँ आज भी घर में रहकर 12 से 14 घंटे तक काम करती हैं। बच्चों को पालना, साफ सफाई, खाना पकाना, बुजुर्गों की देखभाल के एवज में उन्हे कोई तनख्वा नहीं मिलती है। इन कामों की सकल घरेलू उत्पाद (Gdp) में भी कोई गणना नहीं होती है। इन सभी कामों को पूँजीवादी व्यवस्था उनसे मुफ्त में कराती है।

इसके साथ साथ महिलाओं की बड़ी आबादी आज भी अनौपचारिक क्षेत्र में ही काम करने के लिए विवश है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ लगभग 96 फीसदी के आस-पास हैं। इनके अधिकतर काम अकुशल श्रेणी में रखे जाते हैं. यहाँ पर काम के घंटे तय नहीं होते, मजदूरी तय नहीं होती व इसके साथ किसी भी तरह के श्रम कानूनों का पालन नहीं किया जाता है। किसी भी समय निकाले जाने का भय और आय का कोई और जरिया न होने की वजह से वह कम वेतन पर भी काम करने के लिए मजबूर होती हैं। अर्थव्यवस्था का यह अनौपचारिकीकरण शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों दोनों में देखा जा सकता है। निजीकरण की इस प्रक्रिया ने श्रम के अनौपचारिकीकरण को और अधिक बढ़ाया है। लगातार सार्वजनिक इकाइयों को बेचा जा रहा है या उनका विनिवेश किया जा रहा है। एनडीए की पहली सरकार ने तो बाकायदा विनिवेश मंत्रलाय ही बना दिया था। सार्वजनिक इकाइयों के बंद होने से भी रोजगार के अवसर कम हुए हैं। निजीकरण का सबसे नकारात्मक असर शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों पर पड़ रहा है। शिक्षा के निजीकरण ने निम्न मध्यम परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा से दूर कर दिया है। इसी तरह से महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा आज भी उचित स्वास्थ्य सुविधाओं से दूर है। गोपा जोशी लिखती हैं कि "महिला स्वास्थ्य में एक बहुत बड़ी बाधा अधिकतर महिलाओं को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार नहीं मिलना भी है। हाल ही में अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान की तरफ से जारी रपट के अनुसार भारत भुखमरी के मामले में पाकिस्तान और श्रीलंका से भी आगे है। यहाँ पर तकरीबन 45 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार हैं'। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक भारत में हर साल एक करोड़ तीस लाख महिलाएँ कैंसर की बीमारी का शिकार होती हैं, जिनमें से पचहत्तर हजार की मौत गर्भाशय के कैंसर से होती है। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति तो शहरी महिलाओं से और ज्यादा खराब है, गाँव की इस उपेक्षा का मूल कारण सरकारों की शहर केंद्रित नीतियाँ हैं। गाँव को उनकी आबादी के हिसाब से धन नहीं आवंटित किया जाता है। इसलिए धन के अभाव में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में आवश्यक उपकरणों का भी अभाव होता है। जिसके चलते छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए भी उन्हें शहर की तरफ ही भागकर आना पड़ता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उपभोक्तावाद को भी बहुत बढ़ावा दिया है। इस बाजार आधारित उपभोक्तावाद ने समाज के हर हिस्से को अपनी चपेट में ले लिया है। समाज का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं रह गया है। इसे हम समाज में होने वाले विवाह के अवसरों पर भी देख सकते हैं। अस्सी के

दशक में महिला आंदोलन के प्रयासों से दहेज को लेकर सख्त कानून बनाए गए थे, लेकिन आज उन कानूनों का कोई अर्थ नहीं रह गया है क्योंकि विवाह के अवसरों पर कीमती से कीमती उपभोक्ता वस्तुओं का लेन देन अब स्टेटस सिंबल की शक्ल अख्तियार कर चुका है। बड़े बड़े गेस्ट हाउस से शादी करना, महँगी-महँगी गाड़िया देना यह सब कुछ आज के जीवन में सामान्य हो चुका है। हाल ही में आए बहुत सारे विज्ञापन भी इन्ही मूल्यों को बढ़ावा देते हैं। इन सबकी मार सबसे ज्यादा वधु पक्ष पर ही पड़ती है। लड़की के पैदा होने के बाद से ही लड़की का परिवार उसकी शादी के लिए पैसे रुपये जोड़ने लगता है। इस उपभोक्तावाद ने महिलाओं के खिलाफ होने वाली एक नई तरह की हिंसा को जन्म दिया है, जिसे हम भ्रूण हत्या के नाम से भी जानते हैं। जन्म लेने से पहले ही लड़कियों की हत्या कर दी जाती है। इस भ्रूण हत्या में वैश्वीकरण से उपजी तकनीक ने भी काफी मदद पहुँचाई है। यह सुनने में बड़ा ही अजीबोगरीब लग सकता है कि किस तरह से आज के समय में मध्य युगीन बर्बरता आधुनिकता का सहारा लेकर आगे बढ़ रही है। इसे इस तरह से भी कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण पर आधारित समाज ने पितृसत्तात्मक मूल्यों को कमजोर करने की बजाय और मजबूत किया है। इसके साथ-साथ वैश्वीकरण की उपभोक्तावादी संस्कृति ने महिलाओं के शरीर के वस्तुकरण को और बढ़ावा दिया है। पश्चिम के सिनेमा में इन प्रवत्तियों को आसानी से तलाशा जा सकता है।

4.3.6. सारांश

वैश्वीकरण की परियोजना के माध्यम से विकसित देशों के द्वारा तीसरी दुनिया के देशों के बाजार और वहाँ की अर्थव्यवस्था को अपने नियंत्रण में लेने का काम किया जा रहा है। वैश्वीकरण की नीतियों ने उत्तर-दक्षिण के मध्य विभाजन को और भी पुख्ता किया है। दुनिया के संसाधनों को कब्जे में लेने को लेकर चल रही होड़ को वैश्वीकरण ने और मजबूती प्रदान की है। आज भी दुनिया की पूँजी का बड़ा हिस्सा चंद विकसित देशों के पास है। इसी तरह से दुनिया के 99 फीसदी संसाधनों पर पुरुषों का ही नियंत्रण है।

किसी भी देश में अपनाई जाने वाली आर्थिक नीतियों का प्रभाव समाज के अलग-अलग तबकों में अलग-अलग तरह से दिखाई देता है। भारतीय समाज बहुलतावादी होने के साथ ही वर्गीय, जातिगत, लैंगिक व क्षेत्रीय आधार पर तमाम तरह की विषमताओं से युक्त है। उदारीकरण की नीतियों ने समाज के हाशियाकृत तबकों के हाशियाकरण को और बढ़ाया है। भारतीय समाज पितृसत्ता अथवा पुरुषप्रधान समाज रहा है. पितृसत्ता के मूल में वर्ग व जाति की श्रेणियाँ हैं। वैश्वीकरण की नीतियों ने वर्गीय आधार पर पहले से मौजूद विषमता को और बढ़ाया है, जिसे हम सार्वजनिक उपक्रमों में रोजगार के अवसरों के रूप में देख सकते हैं। इसी के साथ-साथ अनौपचारिक क्षेत्र के विस्तार ने जहाँ पर महिलाओं का अधिकांश हिस्सा कार्यरत है, इस अनौपचारिक क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा का भी पूरी तरह से अभाव है। भारतीय समाज में मौजूद जाति संरचना का जेंडर से एक मजबूत रिश्ता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने जाति पर आधारित श्रेणीबद्धता को कमजोर करने की बजाय और मजबूत किया है। इंटरनेट पर मौजूद शादी.कॉम, भारत मैट्रीमोनी आदि वेबसाइटों के माध्यम से शहरों में रहने वाले लोग भी सजातीय विवाह कर सकते हैं। खाप पंचायत जैसी संस्थाओं के कमजोर होने की बजाय देश की चुनावी राजनीति ने इसके साथ एक तरह का अघोषित समझौता कायम कर लिया है। देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग जातियों के नाम से सैकड़ों की संख्या में छोटे-छोटे संगठन अपना विस्तार कर रहे हैं। इन संगठनों का रिश्ता देश की संसदीय राजनीति के साथ है। जाति के आधार पर पैदा हो रहे संगठनों ने पितृसत्ता को

और मजबूत किया है। 1990 के बाद से ही देश में धर्म पर आधारित पहचान की राजनीति को समाज में व्यापक स्वीकृति मिली है। सांप्रदायिक राजनीति के प्रभाव ने अल्पसंख्यक महिलाओं पर समाज के नियंत्रण को और ज्यादा पुख्ता किया है। उनके लिए शिक्षा के अवसर व आवाजाही के रास्ते काफी सीमित हुए हैं। पिछले पच्चीस वर्षों से जारी वैश्वीकरण की नीतियों ने महिलाओं के बीच में से एक मध्यम वर्ग को जन्म दिया है। महिलाओं का यह तबका अपने नागरिक अधिकारों को लेकर काफी सचेत है। एक तरफ तो महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा की घटनाओं में लगातार इजाफा हो रहा है तो वहीं 16 दिसंबर, 2012 के बाद जिस तरह से महिलाओं का एक बड़ा तबका इस घटना के खिलाफ सामने आया वह यह बता रहा है कि महिलाएँ अपने अधिकारों को लेकर अब पहले से ज्यादा जागरूक हुई हैं.

4.3.7. बोध प्रश्न

1. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. तीसरी दुनिया के देशों पर वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
3. वैश्वीकरण की नीतियों ने भारत को किस तरह से प्रभावित किया है, स्पष्ट कीजिए।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पितृसत्तात्मक ढाँचे को मजबूत किया है, तथ्यों के आधार पर उत्तर दीजिए।
5. बाजार और पुरुष प्रभुत्व के बीच के अंतरसंबंधों को स्पष्ट कीजिए।
6. जाति व्यवस्था और जेंडर के अंतरसंबंधों पर टिप्पणी लिखिए और यह बताइए कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने किन तरीकों से इन श्रेणियों को बनाए रखा है।

4.3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, कंवल जीत, वैश्वीकरण? : वैश्वीकरण समर्थक बौद्धिक छल का खुलासा, संवाद प्रकाशन, 2008
2. पंडित, सुरेश, भूमंडलीकरण के दौर में समाज और संस्कृति, शिल्पायन प्रकाशन, 2010
3. खेतान, प्रभा, भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
4. दुबे, अभय कुमार (संपा), भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
5. अमीन, समीर, भूमंडलीकरण के युग में पूँजीवाद, ग्रंथ शिल्पी, 2003
6. जोशी, गोपा, भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011
7. खेतान, प्रभा, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

4.3.9. उपयोगी ग्रंथ सूची

1. कारात, बृन्दा , भारतीय नारी : संघर्ष और मुक्ति, ग्रंथ शिल्पी, 2008
2. उपाध्याय रमेश, उपाध्याय संज्ञा (संपा), श्रम का भूमंडलीकरण, शब्द संधान, नई दिल्ली, 2004
3. मेहता, जया, भूमंडलीकरण में महिलाओं का श्रम, संदर्भ दस्तावेजी केंद्र, इंदौर, 2004
4. Hawthorne, susan, Wild politics : feminism globalization bio/diversity, aakar books, 2008

5. Bhuimali anil, malakar bipul, women globalization and development, serials publications, 2008
6. Mooji jos, (edit), the politics of economic reforms in india, sage publications, 2005
7. Iyer, padma, women in developing countries, aavishkar publishers, distributors, jaipur, 2006